शहतूतोंवाला कुआं

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

शहतूतोंवाला कुआं

सोहन सिंह 'सीतल'

अनुवादक

सुदीप

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1841-1

पहला संस्करण : 1996 (शक 1918)

Original Title : Tootanwala Khooh *(Punjabi)*
Translation: Shahtootonwala Kuan *(Hindi)*

रु. **42.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

भूमिका

सोहन सिंह 'सीतल' के *'तूतांवाला खूह'* (शहतूतोंवाला कुआं) जैसे वृहद् और महान उपन्यास के बारे में मेरे जैसे छोटे और अदना लेखक का कुछ भी कहना उसी तरह है जैसे कोई आदमी चिराग लेकर सूर्य के तेज और प्रकाश के बारे में बात करने लगे।

असली पंजाब तो गांवों में ही बसता है। शहतूतोंवाला कुआं और इसके आसपास निर्मित हुई कहानी, दोनों एक छोटे-से गांव पीरूवाला में पनपती और पल्लवित होती जिंदगी की दास्तान है। पीरूवाला कसूर के निकट बसा एक गांव है, जिसमें शहतूतवाला कुआं वहां पर पनपते-फैलते भाईचारे और हमसाएपन का प्रतीक है। इस कुएं का पानी ठंडा और मीठा है, और शहतूतों के पत्ते आसमान की तरफ मुंह उठाए नज्में पढ़ते लगते हैं।

शहतूतोंवाले कुएं के दोनों तरफ जो खेत हैं, वे सज्जन सिंह और इलमदीन के हैं। दोनों उसी कुएं का पानी पीते हैं, उसी कुएं की हौदी में नहाते हैं, यही कुआं उनके खेतों को पानी देता है, दोनों इसी शहतूतवाले कुएं के नीचे खटिया डालकर बैठते हैं और दुख-सुख की बातें करते हैं। छह-सात पीढ़ियों पहले एक 'बाबा यात्री' हुआ करता था, जो एक सौ तीस बरस तक जिया। यात्री के दो बेटे थे—सुद्धू और बुद्धू। बड़े बेटे सुद्धू का वंशज था सज्जन सिंह और छोटे बेटे बुद्धू का अंश था इलमदीन। एक ही पूर्वज़ यानी बाबा यात्री की औलादें। परस्पर प्यार कैसे न होता।

प्यार के अलावा इस गांव के हिंदुओं, सिखों, मुसलमानों की रीतियां-रस्में भी साझा थीं। बाबा यात्री की समाधि को गांव के सभी परिवार किसी बड़े, पहुंचे हुए पीर-फकीर की तरह पूजते थे।

इस खुली-निर्बाध और आत्मीय फिजा में जहर घोलनेवाले का नाम है धन्ना शाह, जो हर साहूकार की तरह ब्याज पर रुपए देता है और दोगुने-चौगुने पर अंगूठा लगवा लेता है—और फिर अभावग्रस्त किसानों की लाचारी से फायदा उठाकर उनकी जमीनें हड़प लेता है।

एक दिन वह प्यास से तड़पकर मरने को ही था कि शहतूतोंवाले कुएं के पानी ने उसे आब-ए-हयात की तरह बचा लिया। सज्जन सिंह और इलमदीन ने उसे आदरसहित पानी पिलाया, हंसते-खेलते उसके साथ छोटी-छोटी मसखरियां कीं, और शाह की नजर उस शहतूतोंवाले कुएं में उलझ गई। उसे हथियाने के लिए वह उसी दिन से दांव-पेंच बरतने

लगा—और अंत में उसकी चालबाजियों ने एक दिन भाइयों की तरह बस रहे दोनों परिवारों के बीच संशय और नफरत की दीवार खड़ी कर दी। फूट की दरार डालकर उसने दोनों को अपने कर्ज के शिकंजे में कसा और आखिर में वह सब कुछ का मालिक बन बैठा।

इस केंद्रीय कथा के साथ-साथ चलती है, पंजाब ही नहीं, पूरे हिंदुस्तान की त्रासदी की गाथा, जिसमें सज्जन सिंह और इलमदीन वे मासूम और भोले-भाले लोग हैं, जो हाड़तोड़ मेहनत करते थे, अपने कुनबों की छोटी-छोटी जरूरतें पूरी करते थे, अपने छोटे-छोटे दुखों से दुखी हो लेते थे और सुखों से खुश हो लेते थे—और आराम से रहते थे। धन्ना शाह प्रतीक है अपना स्वार्थ साधने के लिए फूट डालनेवाले चालाक और चालबाज अंगरेज का, जो अपने फायदे के लिए भाई को भाई से और दोस्त को दोस्त से लड़ा देता है।

पीरूवाला के इन भोले-भाले लोगों में एक बुद्धिमान और समझदार व्यक्ति भी है, जिसे सब लोग 'बाबा अकाली' के नाम से पुकारते हैं। सयाना और सूझवान सूरमा है बाबा अकाली, जिसने मुल्क की आजादी के लिए हर संघर्ष में पूरी सूझ-बूझ से हिस्सा लिया है—वह चाहे असहयोग आंदोलन रहा हो, चाहे जैतो का मोरचा, चाहे नमक-सत्याग्रह हो या फिर गदर की लहर। कई बार वह जेल गया। एकाकी इन्सान, बुजुर्ग, जिगरवाला। सबको वह आजादी के संग्राम की दास्तानें सुनाता है। भाईचारे, हमसाएपन और इत्तफाक की सलाहें देता है। करतार सिंह सराभा, लाला लाजपत राय, रासबिहारी बोस, भगत सिंह, बाबा गुरदित्त सिंह, रहमत अली शाह, माई गुलाब कौर, जगत सिंह सुरसिंघिया, सोहन सिंह भकना, राजगुरु और सुखदेव, ऊधम सिंह जिसने 'राम मोहम्मद सिंह' के नाम का पासपोर्ट बनवाया और इंग्लैंड जाकर डायर का वध किया—इन तमाम देशभक्त सूरमाओं की गाथा बाबा अकाली सुनाता है। मार्शल लॉ, जलियांवाला बाग का नर-संहार, रॉलेट एक्ट, असहयोग आंदोलन, गुरुद्वारा आंदोलन, जैतो का मोरचा, गुरु के बाग का मोरचा, कूका आंदोलन, बब्बर आंदोलन, गदर पार्टी, गांधी-इर्विन समझौता, खिलाफत आंदोलन, साइमन कमीशन, लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन, जिसमें पूर्ण स्वाधीनता की मांग की गई, नमक-सत्याग्रह, गोलमेज कॉन्फरेंस, आजाद हिंद फौज—इन सबके लंबे-लंबे किस्से सुनाकर वह अपने गांव के लोगों को उद्वेलित करता रहता है।

वास्तव में *'तूतांवाला खूह'* पंजाब की सरजमीं से उठे उन संघर्षों, संग्रामों और भूचालों की दास्तान है—उन सूरमाओं की कथा, जो सिर हथेली पर रखकर आजादी की राह जाती गली में गरदनें ऊंची करके चले थे, जिनके बलिदानों के सदके यह देश आजाद हुआ।

इन दास्तानों की धार दोतरफा है, और तीखी भी। एक तरफ वह बाकी के मुल्क को स्मरण कराती है कि पंजाब और पंजाबियों की कुरबानियां याद रखो और अपनी लीडरी और वोटों की हवस में आन-बान वाले सूरमाओं की इस धरती को अकारण ही मिट्टी में मत मिलाओ। दूसरी तरफ वह मजहबी जुनूनियों को भी याद करवाती है कि धरती किसी की जागीर नहीं होती। वास्तविक वस्तु है उस धरती पर रहनेवाले लोग—और उन लोगों की गैरत और हिम्मत। धरती क्या है ? आखिर मिट्टी ही न ! प्यार से हल चलाओ,

बीज डालो, तो अन्न देती है। गहरे खोदो तो आब-ए-हयात जैसा पानी देती है। और वह बसती है उन लोगों के सदके, जो इसे बसाते हैं और जो इस पर बसते हैं।

तूतांवाला खूह की भाषा सशक्त, विशुद्ध और संश्लिष्ट है। उसमें कठोर श्रम करने वाले जाट का पुरजोर और खंघूरा भी है और मुहब्बतों की पुरकशिश लटबावरी सादगी और पवित्रता भी—सोंधी, नरम मिट्टी की तरह। जरा मिसालों का मुलाहिजा कीजिए—

"इलमदीन की दो औरतें थीं और दस बच्चे। इसलिए घर में खट-पट भी रहती और कमियां-अभाव भी। उसकी घरवाली ज़ैना अचार के साथ रोटियां लेकर आई तो इलमदीन का मुंह उतर आया। ज़ैना सज्जन सिंह से शिकायत करती है, 'अब अचार देखकर त्योरियां चढ़ाता है, तो मैं इसके लिए बकरा भून लाती ?'

'बकरा नहीं, तो अरी, गई-गुजरी, तू हीर की तरह चूरमा ही बना लाती,' देवर के नाते सज्जन सिंह ने हंसकर कहा।

'अरे, मैं तो हीर से किसी तरह कम नहीं हूं, तेरा भाई ही रांझे के चूल्हे का पत्थर निकला'।"

यह बात कोई जिगरवाली पंजाबिन ही कह सकती है—और बात भी कितनी वजनदार! आज तक रांझे को 'चूल्हे का पत्थर' कहनेवाली कोई नहीं मिली होगी।

और जब धन्ना शाह की चालों के सदके पीरूवाला की सांसों में जहर घुलने लगा, तो बाहर से आए मुसलमान कहने लगे, "हमारे पीर के मजार पर (यानी बाबा यात्री की समाधि पर—वही बाबा यात्री जिसकी साझा आल-औलाद सज्जन सिंह और इलमदीन के कुनबों और रिश्तेदारों के रूप में पीरूवाला में बसती थी—सबका साझा नगड़दादा)ये सिख बकरे झटकाते हैं। अगर दम है तो इन्हें सबक सिखाओ !' और बाहर से आए सिख जत्थेदार कहने लगे, "अंगरेजों ने महाराजा दिलीप सूंह से अमानत के तौर पर पंजाब लिया था। अब हमारी मांग है कि जाते वक्त वो हमारा पंजाब हमें दे जाएं।"

आग में घी डालने के लिए धन्ना शाह ने सूअर मरवाकर कुएं पर फिंकवा दिया। आग भड़क उठी।

तब सुनाई देती है बाबा अकाली की ललकार-भरी आवाज : "लड़ते किस बात पर हो ? पशुओं से चिढ़कर ? कभी गउओं और सूअरों को आपस में लड़ते देखा है ?… पशु आपस में कभी नहीं लड़े। तब पशुओं से चिढ़कर लड़नेवाले तुम क्या हुए ? हट जाओ पीछे !'

और उठी हुई बरछियां शर्मिंदा होकर झुक गईं। आग की लपटें छोड़ती नजरें शर्म से नीची हो गईं।

और फिर देश के बंटवारे का हृदय-विदारक माहौल। तब भी बाबा अकाली की आवाज गूंजती है, "ये दरारें हमेशा नहीं रहेंगी। तुम एक ही लहू हो, एक ही कौम हो। देख लेना, तुम फिर मिलोगे।… अभी तो तुम्हें एक और लड़ाई लड़नी है… बहुत बड़ी लड़ाई। भूख के खिलाफ, बेरोजगारी के खिलाफ, फिरकापरस्ती के खिलाफ छुआछूत के खिलाफ…"

काश, बाबा अकाली की यह बात आज सभी याद रखते : हुकूमत के नशे में अंधे हुए लोग भी, और जहालत के अंधेरे में फंसे अपने ही भाइयों के लहू के प्यासे लोग भी। वैसे कसूर लोगों का नहीं होता—वे तो सज्जन सिंह और इलमदीन की तरह सीधे-सादे, भोले और जज्बाती होते हैं—प्यार और मुहब्बत के भूखे। कसूर धन्ना शाहों का होता है, जो उनके घने शहतूतों के छांवों पर कब्जा करने के लिए और उनके कुआं के ठंडे पानी को सिर्फ अपने ही घड़ों में भर लेने के लिए आग लगाते रहते हैं।

तूतांवाला खूह एक 'एपिक' (महागाथा) उपन्यास है। काश, इसका अनुवाद देश की तमाम भाषाओं में हो पाता—और कोई श्याम बेनेगल इसे फिल्मा भी सकते।

— **अजीत कौर**

एक

"मर गए आज तो !...मार डाला सरदार लक्खा सिंह ने।...वो...कहते हैं न—लालच बुरी बला !वही बात हुई मेरे साथ। बस, स्वाद-स्वाद में ही फूट मरे !पाजी ने बनाया भी बहुत बढ़िया था। खाना-पीना भी यही लोग जानते हैं। हम तो—हफ्ते के सातों दिन और चौदहों जून मूंग की दाल। वो भी बिना तड़के-छोंक के। लहसुन, प्याज रसोई में आया नहीं कि धरम भ्रष्ट !और सरदार लक्खा सिंह ? जब भी जाएं, दाल-सब्जी उसने कभी दिखाई ही नहीं। सामने आते ही बेटे को आवाज लगाएगा, 'ओए न्हामे !शाह जी आए हैं, भई !और जानता है न, हमारी शाहनी पक्की वैष्णो है। हमारे यार धन्ने शाह को घर में बारहों महीने पालक और मूंग की दाल से ही ओझरी भरनी पड़ती है। आज भई, शाह के मुंह का जरा स्वाद बदल दे।' हरनामा आगे से झट जवाब देगा, 'बापू !आज शाह जी को चलती-फिरती सब्जी खिलाते हैं।' भई वाह !क्या नाम रखा है—चलती-फिरती सब्जी !बाहरवाली हवेली भरी पड़ी है मुर्गों से। और आज तो लगता है मुर्गा भी नहीं था। तीतर होंगे ? पर तीतर तो इतने बड़े नहीं होते। शायद मुरगाबियां हों। सूखा, घी में भुना हुआ कबाब।... बेचारे धन्ने शाह का क्या बस !कोई भी होता, तो इस तरह के पदारथ के पीछे मरने तक जाता। और मैं कौन-सा मरने से कम रह गया हूं। अब कोई कसर है ? ओह !सांस लेना भी दूभर हो रहा है। अभी तो मैंने समझदारी की। समझदारी नहीं, सबर। नहीं तो जैसे उसने बोतल भी पास ला रखी थी...हे राम ! रास्ते में ही राम नाम सत्त हो जाती।...पर अब पानी—पानी कहां मिलेगा ? आज पीरूवाला ही परदेस बन गया ? बस, आज भगवान बचा ले, फिर कभी नहीं आएंगे सरदार लक्खा सिंह के नीचे...ओह !...हैं... हैं...'

सूखे होंठों पर जीभ फेरता धन्ने शाह टांगें घसीटता चला जा रहा था। चढ़ते भादो की दुपहर और रेतीला रास्ता। सावन सूखा गुजर जाने की वजह से आस-पास के टीले-टीबे आग लगाते नजर आते थे। छोटे-छोटे सरकंडों के अलावा उस वीरान इलाके में कहीं हरियाली नहीं दीखती थी। झींगुरों की टीं-टीं के सिवा कोई आवाज भी कान में नहीं पड़ती थी। इस चुप्पी से घबराकर ही धन्ने शाह खुद बड़बड़ाए चला जा रहा था।

जिंदा गले की आवाज ही जिंदगी की निशानी है। संपूर्ण सन्नाटा तो मौत से भी ज्यादा भयानक होता है। इन्सानी गले की न सही, किसी पशु-पंछी की आवाज ही कान में पड़ती

रहे। कोयल या बुलबुल की रसीली आवाज की जगह कई बार आदमी काले कौवे की कर्कश आवाज तक के लिए तरसने लगता है। उस समय वह भी चुप्पी को तोड़ने का साधन बन जाती है।

झींगुर की अप्रिय टीं-टीं भी उस समय धन्ने शाह को भली लग रही थी। झींगुर टहनियों से खाली, रुंड-मुंड कीकर पर बैठा राग अलाप रहा था। पर धन्ने शाह चला जा रहा था। झींगुर की आवाज पीछे, दूर रह गई, तो धन्ने शाह अपने-आपसे ही बातें करने लगा। वह एकाध वाक्य मुंह से निकालता और फिर तीन-चार सांसें जल्दी से खींच लेता। कई अधूरे वाक्य उसके गले में ही फंसे रह जाते।

सामर्थ्य से अधिक खाई हुई खुराक ने धन्ने शाह को बड़ी मुश्किल में डाल दिया था। तेज मसालेदार गोश्त ने अंदर इतनी भड़की लगा दी थी कि धन्ने शाह पानी के लिए मछली की तरह तड़पने लगा। उसे ऐसा लग रहा था जैसे खाया हुआ गोश्त अंदर फूलकर तीन-चार गुना बन गया हो जिसके बोझ से पेट फट जाएगा। हर सांस के साथ उसे अपने अंदर 'पानी-पानी' की दुहाई मची सुनाई दे रही थी। सूखे होंठों को तर करने के लिए वह उन पर जीभ फेरता, लेकिन जीभ खुद काठ की तरह खुश्क हुई पड़ी थी।

वरना से पीरूवाला बहुत दूर नहीं था—मुश्किल से दो कोस। उन दो कोसों में दम लेने के लिए एक भी हरा पेड़ नहीं था। दो-एक जगह पर एक-एक फर्लांग बंजर भूमि को छोड़कर बाकी सारा रास्ता रेतीला था। रेत में, थके हुए राही की प्यास और भी तीखी हो जाती है। धन्ने शाह बड़ी हिम्मत से कदम आगे बढ़ाता, लेकिन नीचे से सूखी रेत के खिसक जाने से पांव पीछे की ओर ही जाता। बड़ी मुश्किल आ खड़ी हुई थी। मुश्किल के वक्त कोई भी सहाई नजर नहीं आता। उसका जी कर रहा था कि सरकंडों के किसी झुंड के सहारे बैठकर ही वह सांस ले ले। लेकिन छोटे-छोटे सरकंडों के झुंड भी तो छांह देने लायक नहीं थे। फिर भी अगर वह बैठ ही जाए, तो पानी के बगैर बात कैसे बनेगी! पानी...पानी...। उस वक्त उसकी जान सिर्फ पानी में थी। इसीलिए वह गिरता-पड़ता चला जा रहा था। अपने-आपको हौसला देने के लिए उसने बड़े दृढ़ स्वर में कहा, "धन्ने शाह ! जैसे भी हो, हिम्मत करके पीरूवाले पहुंच जा। वरना इस मरुथल में तो सिरहाने धाड़ मारने के लिए पार्वती की मां भी नहीं आ पाएगी।"

इन्सान का लालची मन। मरने के बाद भी यह चाहता है कि कोई अपना रोने के लिए पास हो।

जिंदगी बड़ी हिम्मतवाली है। यह मौत के सामने जल्दी हार नहीं मानती। आखिरी दम तक जिजीविषा बनाए रखती और उद्यम करती रहती है। धन्ने शाह ने भी हौसला नहीं हारा। वह गिरता-पड़ता पानी के किनारे जा ही पहुंचा।

वरना विर्क जाटों का गांव था। कसूर नगर से चार कोस दूर वह उत्तर-पूरब के कोने में है। कसूर और वरना के अधबीच है छोटा-सा गांव पीरूवाला। पीरूवाले की दीवारों से एक खेत की दूरी पर पहाड़ की बांह-तले शहतूतोंवाला कुआं है। कुएं के दो बराबर

के मालिक थे। सरदार चंदा सिंह और चौधरी चिराग़दीन। इसीलिए वह कुआं न तो सरदार चंदा सिंह का कहलाता था, न चौधरी चिराग़दीन का। उसके पतनाले के चारों तरफ घनी छांहवाले शहतूत खड़े थे। गरमियों में शहतूत के उन पेड़ों के नीचे सारा दिन रौनक लगी रहती थी। लोग उसे तूतोंवाला कुआं कहते थे।

शहतूतों की छांह में एक बड़ा-सा तख्तपोश और तीन-चार चारपाइयां बिछी हुई थीं। चार गभरू जवान तख्तपोश पर बैठे ताश खेल रहे थे। दो-चार दूसरे लोग आसपास बैठे उनके कंधों पर से उझक-उझककर उनका खेल देख रहे थे। पूरा समूह बड़े जोश में आया लग रहा था।

"अरे आ, धन्ने शाह ! इस वक्त कहां से ?" सज्जन सिंह ने ताश का पत्ता जोर से नीचे पटकते हुए आगंतुक से रस्मी तौर पर पूछा।

धन्ने शाह ने सज्जन सिंह की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उस समय उसमें हुंकारा भरने की शक्ति भी नहीं थी। वह ढीली-सी जूती उतारकर धीरे-धीरे चहबच्चे में घुस गया।

"उठ ओए बश्के ! दौड़कर बरतन ला। शाह को पानी पिलाएं।" सज्जन सिंह ने धन्ने शाह की हालत देखकर, पास बैठे अपने बेटे को हुक्म दिया।

धन्ने शाह ने 'न' में सिर हिलाकर आगे बढ़कर 'नसार' के नीचे ओक लगा दी। मुंह से कहना भी चाहता, तो उसके गले से आवाज न निकल पाती।

"फत्ते ! रहट चला ओए ! शाह तो अकुलाया पड़ा है। कहीं हमारे जिम्मे ही न आ पड़े," कहते हुए सज्जन सिंह खुद भी तख्तपोश से उठ खड़ा हुआ।

फत्ते और पाले ने भागकर रहट चलाया। भरी हुई टिंडरें परनाले में पड़ीं और जिंदगी का संदेसा लेकर पानी नसार से होता हुआ निचाई की ओर भागा। धन्ने शाह ने भुक्खड़ों की तरह बड़े-बड़े घूंटों के साथ पानी को अंदर फेंका। उसे ऐसा महसूस हुआ, जैसे पानी अंदर जलती हुई आग पर पड़ रहा हो।

"धीरज रख। सांस लेकर पीना अब और।" सज्जन सिंह ने बांह पकड़कर जबरदस्ती शाह को पानी पीने से रोक लिया।

बांह खींचते हुए सज्जन सिंह ने धन्ने शाह को चारपाई पर ला बिठाया। लेकिन धन्ने शाह का ध्यान अब भी नसार से नीचे गिर रहे पानी की तरफ ही था।

"ओ शाह ! हुआ क्या ? क्या हाल हुआ पड़ा है तेरा ! इस वक्त, इस तिक्खड़ दोपहर में आ कहां से रहा है ?" सज्जन सिंह ने शाह के पैताने बैठते हुए कई सवाल एक साथ कर डाले।

धन्ने शाह ने दाहिना हाथ हिलाकर उसे चुप रहने का इशारा किया।

"गरीब को होश तो आ लेने दे। फिर हाल-चाल भी पूछ लेना," पास बैठे इलमदीन ने तरस से सिर हिलाते हुए कहा।

"पानी ।•मर गया आज तो !" धन्ने शाह ने कुएं की तरफ हाथ करके कहा। उसकी प्यास अभी शांत नहीं हुई थी।

"कोई बात नहीं। अब पानी की कमी से तो नहीं मरने देंगे तुझे !" सज्जन सिंह ने शाह की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा। "भाग के जा रे, बश्के ! लेके आ कटोरा" ! नहीं तो शाह तो चला !"

आसपास बैठे लोगों में हंसी फूट पड़ी। लेकिन वे शाह का लिहाज करके पूरी तरह खुलकर न हंस सके।

पिता के हुक्म का पालन करता हुआ बश्का भाग उठा, हालांकि वह पहले भी काफी तेज चाल से आ रहा था।

शाह ने बश्के के हाथ में बरतन देखकर खाली कटोरे की तरफ ही हाथ बढ़ा दिया। उसकी यह हरकत देखकर देखनेवाले फिर हंस पड़े।

"जल्दी से ला ओए गंगाजल ! शाह तो आखिरी दमों पर है !" सज्जन सिंह ने कुएं की तरफ इशारा करते हुए बेटे से कहा।

फत्ते वगैरह ने रहट चलाया और बश्के ने कटोरा भरकर शाह को ला थमाया। दोनों हाथों से कटोरे को संभालकर शाह ने मुंह को लगा लिया। एक ही सांस में कटोरे को खाली करके शाह ने लंबी सांस ली। "हा-आ-अ ! रख लिया बचा लिया आज सरदार सज्जन सिंह ने। एक कटोरा और।" उसने बश्के के हाथ में कटोरा देते हुए नसार की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"जरा सांस ले ले, धन्ने शाह ! एक ही सांस में ज्यादा पानी पीना ठीक नहीं है। लेट ले जरा-सा"—सज्जन सिंह ने पैताने की तरफ सरकते हुए कहा।

"पहले मुझे नहा लेने दो। झुलस गया हूं मैं तो।" धन्ने शाह ने बच्चों की तरह मिन्नत-सी करते हुए कहा।

"अरे, इतनी तपिश में आया है—अभी नहाके मरेगा ? घड़ी भर दम ले पहले। ठंडा हो जरा। फिर नहाना तो छोड़, पानी में डुबो देंगे तुझे।"

सज्जन सिंह की यह बात सुनकर सब खुलकर हंस पड़े। अब सबको तसल्ली हो गई थी कि शाह मरने से बच गया है।

धन्ने शाह ने एक बार आसपास बैठे लोगों की तरफ देखा और फिर चारपाई पर टेढ़ा हो गया। उसकी निगाह ऊपर हरे-भरे शहतूतों की तरफ गई तो रास्ते में आग लगाने वाले झाड़ों की याद आ गई 'हरियाली में कितनी जिंदगी है'—उसके अवचेतन में से मद्धिम-सी आवाज आई। अब कोई डर नहीं है। एक बार तो यमराज छोड़ गया।' वह लेटे-लेटे सोचे जा रहा था। 'अगर मैं बेहोश होकर गिर पड़ता तो ? अगर... अगर... अगर...।' न चाहते हुए भी वह इस 'अगर... अगर... के चक्कर में पड़ा गोते खा रहा था।

इस तरह कोई आधेक घंटा बीत गया। उसे अब भी ऐसा आभास हो रहा था जैसे उसका शरीर ताप के रोगी की तरह तप रहा हो। वह हिम्मत करके उठ बैठा।

"क्यों, और पानी पीना है ?" सज्जन सिंह ने हंसी-ठट्ठेवाले स्वर में कहा।

"कटोरे से कुछ नहीं होगा, शाह को बटलोई से पिलाओ," पास बैठे उमरदीन ने सलाह दी।

"पिलाओ नहीं, कहो, डहाओ*," एक तरफ से चंदा सिंह ने चोट की।

'पिलाओ' और 'डहाओ' के भेद को समझकर सबके सब हंस दिए।

"अरे भाइयो, जो जी में आए, कह लो—और बेशक खुलके हंसो। तुम लोगों ने धन्ने शाह की जान बचा ली है।" धन्ने शाह ने बड़े खुल दिल से सबको हंसने की प्रेरणा दी। "लेकिन पहले मुझे नहाकर ठंडा हो लेने दो।"

"तो उठ फिर। बली बन। लत्ते उतार लेगा कि मैं उतार दूं ?" सज्जन सिंह ने अपने आपको सेवा के लिए पेश करते हुए कहा।

"शाह लोगों के उतार लेता है, तो क्या उससे अपने नहीं उतरेंगे !" जमालदीन ने अपने तजुर्बे के आधार पर कहा। पीरूवाला में वह धन्ने शाह का सबसे पुराना आसामी था।

"यह तो जमाले ने आपबीती कही है !" चंदा सिंह ने जमालदीन का समर्थन करते हुए कहा।

"ओ सरदार चंदा सिंह ! न तो कोई किसी के उतारता है और न उतरवाता है। ये तो जरूरतों के सौदे हैं," धन्ने शाह ने मैला-सा कुरता उतारते हुए उत्तर दिया। "बता तेरे कितने-से उतारे हैं ?"

"वो तो मैंने नहीं उतरवाए...वैसे तेरी तरफ से तो कोई कसर नहीं !" चंदा सिंह की आवाज कुछ रूखी हो गई।

"अच्छा सरदारा, मुझसे नहीं उतरवाए तो मेरे किसी और भाई से उतरवाए होंगे। सयानों ने कहा है : शाह बिना जाट की गति नहीं।"

"अरे, पहले ठंडा हो ले, शाह ! चोंच-चरचा बाद में कर लैना...कुआं चलाओ ओए छोकरो !...ओ शाह, कुएं के अंदर उतरकर नहाने का बड़ा आनंद है," सज्जन सिंह ने फीके पड़ रहे वार्तालाप को रसमय बनाने के इरादे से बात को दूसरी तरफ मोड़ दिया।

"हां। फिर तो हरद्वार जाने की भी जरूरत नहीं है !" जो बात किसी और को कहनी थी, वह शाह ने खुद ही कह दी।

पंद्रह-बीस मिनट तक नसार के नीचे बैठकर शाह नहाता रहा। बाहर से शरीर ठंडा हुआ, तो उसने एक बार फिर नसार के आगे चुल्लू बिछाकर पानी पिया। "हा-अ-अ !" लंबी-सी सांस लेकर उसने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए कहना शुरू किया, "सरदार सज्जन सिंह ! हमारे पंडित कथा सुनाया करते हैं कि कई बार लोग धर्मराज की कचहरी में से भी लौट आते हैं।"

"दहलीज से तो तू भी लौटा होगा ?" शाह की बात को रास्ते में ही टोककर सज्जन सिंह ने सवाल कर दिया।

---

* हिंदुओं में दसवें दिन किया जानेवाला मृतक कर्म।

"दहलीज किसकी अम्मा की ! यह तो तुम लोगों ने टांगों से पकड़कर पीछे घसीट लिया, नहीं तो लक्खा सिंह ने तो गाड़ी पर चढ़ा ही दिया था !' धन्ने शाह ने गीले बदन पर चादर लपेटते हुए उत्तर दिया।

"क्यों, अब आने लगी टके-टके की याद !' गभरू दीपे की बात ने एक बार फिर हंसी छनका दी।

"भई, गुरु महाराज ने फरमाया है : जल मिलया परमेशर मिलया। सो, पानी में ही प्राण हैं। मुझे जरा खटिया पर बैठ लेने दो। फिर सुनाता हूं, जो मेरे साथ बीती है।...काका, जरा जूती देना इधर।" शाह ने अपनी जूती की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"पकड़ाना रे घसीटे, शाह की चमकीली जूती !' सज्जन सिंह की टिप्पणी सुनकर सबकी नजरें शाह की घिसी हुई जूतियों पर जा टिकीं।

"ओ सरदारा ! चमकीली जूतियां भी तुम्हीं को सुहाती हैं। बनिया तो पैसे का पूत होता है। खाना-पहनना हमारे भाग्य में कहां !' नहा-धोकर शाह खूब टहक उठा था।

"अच्छा, अब सुना, भई शाह ! इतनी धूप में तू काबू कैसे आ गया ?' गहने लुहार ने कहानी की जड़ बांधने के इरादे से सवाल किया।

"सरदार लक्खा सिंह वरनावाले से कुछ काम था," धन्ने शाह ने खंखारकर गला साफ करते हुए बताना शुरू किया। "मैं सबेरे-सबेरे ही घर से चल पड़ा। सूरज निकलने से पहले ही मैं तुम लोगों के गांव से गुजर गया था। मेरा खयाल था कि मैं नौ-दस बजे तक वापस शहर लौट जाऊंगा। वहां सरदार का लड़का न्हामा तड़के-तड़के शिकार खेलकर लौटा था। उसने डेगची चढ़ा दी। मैंने ठंडे-ठंडे लौटने के लिए बहुतेरा जोर लगाया, पर वो बाप-बेटा क्यों छोड़ते ! पता नहीं तीतर थे या मुरगाबियां—लड़के ने बनाया बहुत बढ़िया था।"

"चाहे कौवे और बगुले ही रहे हों," पास बैठे इलमदीन ने शक प्रकट किया।

"ओ चौधरी ! मांस तो था न। साथ ही जो कुछ वो साथ बैठकर छक रहे थे, हमने भी उसे पवित्र समझकर भोग लगाना शुरू कर दिया। स्वाद-स्वाद में कुछ ज्यादा खाया गया। मेरे 'न-न' करते रहने पर भी सरदार लक्खा सिंह ने चार कलछुलें और परस दीं। बस, पेट गले को आ गया !'

"शाह ! कहावत तो यह है कि भूखे जाट को कटोरा मिल गया तो उसने पानी पी-पीकर अपने पेट को अफरा लिया। पर खत्री-पूत तो सयाने समझे जाते हैं !' दीपे ने मेंढक-निगले सांप की तरह शाह की फूली हुई तोंद की तरफ इशारा करके कहा, जो सूखे हुए पंजर के नीचे बिल्कुल अलग-थलग दिखाई देती थी।

"अरे मल्ल ! यही हमारी समझदारी है कि बेगाने घर से तो चार दिनों का एक जून में ही खा आया हूं, और अब घर में चार दिन व्रत रख लूंगा।"

"वाह भई, शाह है तो बड़ा हंसमुख !' गहने लुहार ने शाह की स्तुति में सिर हिलाते हुए कहा।

"बस, रास्ते में गरम मसालों ने भड़की लगा दी, और पानी न मिलने की वजह से

यह हाल हो गया। मील-एक भर और जाना होता, तो ढोल-मंजीरे बजने लग जाते !'

"तो भला कोई तेरे पीछे पड़ा हुआ था ? या कसूर कहीं दूर चला जाने वाला था ? जरा ठंडा हो जाने पर चलता," इलमदीन ने उसकी हालत पर तरस खाते हुए कहा। उसे शाह के पहले दर्शन अभी भूले नहीं थे।

"सरदार लक्खा सिंह तो जोर लगा रहा था, पर मैं ही बस हठ करके चल पड़ा। खारेवाले धन्ना स्यूं का इकरार था बारह बजे का। मैंने सोचा, यार-बेली है, यों ही इंतजार करके लौट न जाए।"

"ब्याजड़िए का भी कोई यार-बेली होता है ? साहूकार तो सगों की भी खाल उतार लेते हैं।" चंदा सिंह की बात भले ही सच्ची थी, पर बोली रूखी थी।

"सरदार चंदा सिंहा ! पांचों उंगलियां एक-सी नहीं होतीं। पता नहीं, तेरा वास्ता किस तरह के साहूकारों से पड़ा है। तू तो, लगता है, आग का जला टिटहरी से भी डरता है !" धन्ने शाह ने जरा छाती फुलाकर कहा, जैसे वह यह असर डालना चाहता हो कि वह एक अच्छा साहूकार है।

"ठीक है शाह ! सयानों ने कहा है—करो, तब भी डरो, न करो, तब भी डरो। बड़े लोगों से डरते ही रहना चाहिए।" चंदा सिंह ने मानो लाल झंडा झुका लिया। वह ताड़ गया था कि शाह को उसके व्यंग्य से नाराजगी हुई है।

"नहीं, कई बार इन्सान पर अनबूझ विपदा भी आ पड़ती है। उस मुश्किल की बेला में कोई दिलेर शाह ही काम आता है। तब हम लोग औरतों के गहने उतारकर भी आसामी को दे देते हैं—हां।"

"अच्छा, धन्ने शाह। दो घड़ी झपकी ले ले। वरना यों ही फिर दिमाग को गरमी चढ़ जाएगी," सज्जन सिंह ने अप्रिय किस्म की इस बहस को बंद करने के इरादे से कहा।

धन्ने शाह ने भी उस चर्चा को बंद कर देने में ही भला समझा। वह टांगें पसारकर खटिया पर लेट गया—पांच-सात मिनटों में ही उसे नींद आ गई।

चार बजे उसकी आंख खुली, तब तक गरमी का जोर काफी घट चुका था।

"उठ, धन्ने शाह। चैतन्य हो। सुना, अब क्या खाए-पिएगा ?" सज्जन सिंह ने रस्मी तौर पर पूछा।

"राम-राम कह, सरदार सज्जन सिंहा। अब तो तीन दिनों तक व्रत रखेंगे, तब काम रास आएगा।" कहते हुए धन्ने शाह उठकर बैठ गया।

"तीन दिन घर में व्रत रखके चौथे दिन फिर लक्खा सिंह से मिलने चले जाना !" दीपे की इस बात ने सबकी आंखों के सामने फिर पहलेवाला दृश्य ला दिया।

कुछ देर तक हंसी-ठट्ठे की और बातें होती रहीं। धन्ने शाह ने ललचाई-सी आंखों से आसपास देखते हुए कहा, "भई, सरदार सज्जन सिंहा ! तुम लोगों का यह तूतोंवाला कुआं तो धरती पर स्वर्ग है—सचमुच का स्वर्ग। मेरी मानो तो उसके आसपास पांच-सात खेतों में बाग लगा दो।"

"गेहूं तो, शाह, डेढ़ रुपया मन बिक रहा है ! जाट बाग कहां से लगा लेंगे ! अल्लाह से सुख मांगो, ये शहतूत ही बचे रहें।" इलमदीन की आवाज में निराशा छिपी हुई थी।

"हां चौधरी, जिंसों के भाव तो बहुत गिर गए हैं। राम ही राखा है !" धन्ने शाह ने भी हमदर्दी प्रकट करते हुए उसी लहजे में कहा।

"भावों के बारे में तो हलवारों ने दोहे बना लिए हैं। कहते हैं : बहुतियां जमीनावाले, मांबले नूं देखे जाणगे"—कहते हुए दीपा साफा झाड़कर तख्तपोश से उठ खड़ा हुआ। उसका चारा काटने के लिए जाने का समय हो गया था।

कामवाले लोग धीरे-धीरे खिसकने लगे। धन्ने शाह भी शहर जाने के लिए तैयार हो गया। उसने धन्यवाद के लिए इलमदीन, सज्जन सिंह तथा दो-चार अन्य लोगों से हाथ मिलाते हुए सामूहिक-से संबोधन के साथ कहा, "अच्छा भई सरदार सज्जन सिंहा ! और बाकी भाइयो ! आज तो भई तुम लोगों ने मेरी जान बचाई है। कभी मेरे लायक कोई सेवा हो, तो अपना घर समझकर आ जाना। मैं जितने के लायक भी हूं, तुम लोगों से कंधा नहीं मोड़ूंगा।"

अपनी राह चलते हुए भी धन्ने शाह यही बात सोचता जा रहा था—यह शहतूतोंवाला कुआं सचमुच धरती का स्वर्ग है—स्वर्ग !

दो

सज्जन सिंह अपनी छत पर लेटा तारों की तरफ देख रहा था। पास ही आड़ी बिछी हुई खटिया उसकी जीवन-साथिन भजन कौर की थी। पंद्रह दिनों से मायके गई वह अभी तक वापस नहीं आई थी। सज्जन सिंह उसी के बारे में सोच रहा था : 'वह तो इतने दिनों तक कभी रही नहीं थी। सुख हो सही। आठ दिनों का इकरार करके गई थी—और आज हो गए बुध-बुध-आठ—और आज दूसरा बुधवार है—पूरे पंद्रह दिन। फिर छोटे पप्पू का दिल कैसे लगा होगा ? वह तो मेरे बगैर रह ही नहीं पाता। बच्चे को बीमार कर लाएगी। खूब दौड़ना सीख गया था। फिर से घुटनों चलनेवाला बना लाएगी उसे। एक तो उनका पड़ोस भी अच्छा नहीं है। वह हरकौर और बचनी—दोनों ननद-भौजाई—बड़ी चुड़ैलें हैं। बेगाने बच्चे को रुलाने में उन्हें बड़ा मजा आता है। देखो न, राजो के अच्छे-भले लड़के को उन्होंने भैंगा बना दिया है। उसे बेचारे को ननिहाल में रहने का अच्छा फल मिला ! मामी उठी तो—मारूं एक थप्पड़ ! मौसी बोली तो—फिर ऊपर देखता है ! भैंगा कहीं का !...बस, उसे चोर-आंख से देखने की लत-सी लग गई। छोटी उमर में आदत पक गई तो वह हमेशा के लिए भैंगा हो गया। ठीक ही कहते हैं, ननिहाल में पलनेवाले बच्चे बिगड़ जाते हैं, स्वभाव से भी, शक्ल से भी।... पर वह अब तक लौटी क्यों

नहीं ? कल गुरुवार को वह पगली वैसे नहीं आएगी। कहते हैं न : एक वीर (भाई) वाली वीरवार (गुरुवार) को सफर नहीं करती। अब बात शुक्रवार पर जा पड़ी। वह भी अगर उसका रब कराए तो। सो जा, रे मन।' और वह करवट बदलकर सोने का यत्न करने लगा।

करवट बदलने पर उसकी निगाह शहतूतोंवाले कुएं पर जा पड़ी। चांदनी रात में शहतूत के सघन पेड़ों का झुरमुट घर की छत से साफ दिखाई दे रहा था। कोई आदमी पानी पीकर, या शायद नहाकर, छांह के अंधेरे में से निकलकर गांव की तरफ चल पड़ा था। उसकी घिसी हुई जूती की मद्धिम-सी आवाज सज्जन सिंह के कानों तक आ पहुंची। सज्जन सिंह हंस दिया। उसे धन्ने शाह का खयाल आ गया। शाह की हूबहू वही शक्ल सज्जन सिंह की आंखों के सामने आ गई। चिड़िया के बच्चे की तरह खुला हुआ मुंह लिए हांफता हुआ शाह पानी से खाली नसार के आगे ओक लगाए खड़ा था। 'एक मील और जाना होता, तो शोहदा पानी के बिना ही मर जाता। अरे लोभी, तू सोच—भई, घर बेगाना है, पर पेट तो अपना है। सुना है, श्राद्धों में हंदे खानेवाले पंडित पेट फटने से मर जाया करते थे। और धन्ने शाह के मरने में कौन-सी कसर रह गई थी !...कोई पूछे, तू खुशहाल है, किसी बात की कमी नहीं है, अपना तांगा रख ! पर जो आदमी जूती-लत्ता तक ढंग का नहीं पहनता, वह बग्घी-तांगा कहां से रखेगा ? पैसे का पूत ! ऐसे लोग तो बैंक के चपरासियों जैसे होते हैं। पेटियां भरी रहती हैं नोटों से, मगर खाने, इस्तेमाल करने का हुक्म नहीं होता। मक्खीचूस ! जिस पेड़ के नीचे यह एक बार बैठ जाए, वह पेड़ ही सूख जाए। छाल ही छील लेता है यह। कहीं हमारे कुएं पर भी आंख न रोप ली हो ! कुलच्छने की नजर ही पत्थरफाड़ है ! कहने लगा—तुम्हारा शहतूतोंवाला कुआं धरती का स्वर्ग है स्वर्ग !' उसे क्या पता कि बंजर भुईं में यह स्वर्ग कैसे बना है ! कहते हैं, यहां घास का तिनका तक नहीं उगता था। मरुथल का एक छोर था यह। पच्छिम की तरफ से ऊंचा, पूरब की तरफ ढलवां। मेंह पड़ता और पानी रेत में समा जाता। ऊपर से बंजर धरती— मुश्किल से पोर भर गीली होती। घास उगती और उगते ही सूख जाती। हमारी तीसरी पीढ़ी जा रही है इस जगह की काया पलटते। पहले मेरे बाबा ने यहां कुआं खोदने की योजना बनाई थी। उन्होंने थोड़ी-सी खुदाई भी की थी। अब भी वह छोटा-सा गड्ढा मौजूद है—इस झाड़ियों के झुंड के बीच। लोग मजाक में उस जगह को 'बाबा आला सूंह का कुआं' कहते हैं। मेरे बापू ने अपने बापू के सपने को सच कर दिया। उसने अपने लंगोटिए यार चिराएदीन को साथ मिला लिया। झूठ नहीं कहता, दोनों ने सारी उमर अच्छी निभायी है। लोग कहते हैं, दोस्ती हो तो इस तरह की हो। दोनों इकट्ठे गाड़ियां चलाते—लाहौर से परोजपुर और परोजपुर से लाहौर। एक बार मैं और इलमा भी जिद करके साथ गए थे। पहले लाहौर देखा और फिर परोजपुर। लौटते वक्त नदी के पुल पर अच्छे फंसे। कुछ गोरों ने गाड़ियों को आ घेरा। कहने लगे, छावनी ले जाएंगे। चाचा चिराग़दीन और मेरा बापू दोनों भाग

गए। पीछे पड़ गए मैं और इलमा। इलमा मुझसे बरस-डेढ़ बरस बड़ा है। पर वह साहब की तरफ देखकर रोने लगा। निकम्मा डरपोक ही रहा सारी उमर। हमने गाड़ियों को हांककर एक तरफ खड़ा कर दिया। बारह बज गए। भूख से हमारी आंतें दुहाई देने लगीं, पर न बापू कहीं से लौटकर आया, न चाचा चिरागदीन ही। साहब पल-पल बाद शिकारी कुत्ते की तरह गुर्राता हुआ आकर पूछता—'तुम्हारा गाड़ीवान कहां है ? कहां है बदमाश ?' मैंने मन-ही-मन साहब को पचास गालियां दीं। इलमा तो उसे देखते ही रोने लगता था। 'तुम दोनों बदमाश है !' साहब बार-बार घुड़कता। लो हम दोनों बदमाश थे और वह सूअर-मुंहां भलामानस !संझा बेला में जाकर कहीं उसने हमारा पीछा छोड़ा। फिर झट से चाचा चिराग़दीन बीहड़ में से निकल आया। 'क्यों ? सुनाओ बच्चू !देख लिया शहर ? अब भी जिद करोगे कभी साथ आने की ?'

उसे देखकर हमारी जान में जान आई। 'और मेरा बापू कहां है ?' मैंने रुआंसा-सा होकर पूछा था। 'उसे तो साहब पकड़कर ले गया है।' मुझे छेड़ने के लिए चाचा ने जवाब दिया था। सुनकर मैं रोने को हो आया था, लेकिन मैं बखेड़ों से डरता तगड़ा बना रहा। मैंने सोचा, इलमा पहले ही रो रहा है, अगर मैं भी रो पड़ा, तो दोनों का मजाक उड़ता रहेगा। कई बार लोगों के हंसी-ठट्ठे से डरता हुआ आदमी भी खूब सिर उठाए डटा रहता है।...और फिर जब रोहेवाल के आवे से कुएं के लिए ईंटें ढोते थे—मैं और इलमा तब छोटे थे ; फिर भी हम जिद में आकर गाड़ी के साथ जाया करते थे। इलमा तो एक दिन गाड़ी के नीचे ही आने को था। पिछली तरफ ईंटों पर बैठा उछलकर लीहों* में गिर पड़ा वह। बैलों की नाथें जल्दी से खींचकर बापू ने गाड़ी रोक ली। चाचा चिरागदीन ने इलमे की खूब धुनाई की। उस दिन से हमारा गाड़ी के साथ जाना बंद हो गया।...ईंटें आ गईं, तो कुएं का पाट खोदने की बारी आई। हम कुछ करने लायक तो थे नहीं, बल्कि गड्ढे में छलांगें लगा-लगाकर बाहर निकली हुई मिट्टी चार टोकरियों में गिरा देते। किसी दिन इस हरकत की वजह से दो-चार पड़ भी जातीं। लेकिन वह उमर पड़ने-वड़ने को कहां याद रखती है !हम इल्लतों से बाज न आते। और फिर जब कुएं की मुंडेर बनने के बाद पहले दिन कुएं की खुदाई शुरू हुई, तो हम दोनों कुआं खोदनेवालों के साथ अंदर उतर गए। घुटने-घुटने पानी हो गया। हम दोनों अंदर छपाकियां मारते हुए खेलने लगे। हमें अंदर ही छोड़कर खुदाई करने वाला रोटी खाने के लिए बाहर निकल आया। तब हमारी बुरी गत बनी। हमें ऐसा मालूम हो जैसे ऊपर से कुएं की मुंडेर बंद होती जा रही है। हम डरे तो बहुत, लेकिन शर्म के मारे रो नहीं पाए। फिर हमने डर को दूर भगाने के लिए हंसना और किलकारियां मारना शुरू कर दिया।...खैर, खैर से कुआं बन गया। सारे गांव ने पीकर देखा, पानी मीठा निकला। लोगों ने मेरे बापू और चाचा चिराग़दीन को बधाइयां दीं, 'लो भई चंदा सिंहा !खारे माझे में आस तो कोई नहीं थी, पर तुम्हारे कुएं का पानी मीठा निकला है। यह शायद रेती के किनारे पर होने की वजह से है। उम्मीद है, फसलें भी इस पानी

---

* बैलगाड़ी से चलने से बनने वाली खड्ढेनुमा लकीरें

को अच्छा मानेंगी।' और फिर पिछले साल जो दो-चार कनाल अनाज बोया, वह हुआ भी अच्छा। तब ज्यादा बोते भी कहां ? कुएं के आसपास तो खड्ढे ही खड्ढे थे। सारी ऊबड़-खाबड़ जमीन पर कुश और सरकंडे खड़े थे। चाचा चिराग़दीन और बापू ने खून-पसीना एक करके इस खेत को समतल किया था। दोनों चौघड़े का कराह जोत लेते और सांझ होने तक खेत में शहीद होते रहते। कराह के लिए उन्होंने बड़े बलिष्ठ बैल खरीदे थे—सांड़ों जैसे। और, कमजोर पशु कराह खींचता भी तो कैसे ! न कमजोर पशु टिक पाता है, न कमजोर आदमी। वे परले नरमे (कपास) वाले तीन किल्ले खेत—बापू के बाद—मैंने ही कराह से समतल किए हैं। यह काम कितना मुश्किल है, यह तो बस वही जान सकता है, जिसने अपने हाथों करके देखा हो। उड़ती मिट्टी में आदमी भूत बन जाता है। सिर से पैरों तक पसीना। पसीना क्या, शरीर का लहू पानी बनकर बहता है। उस वक्त मांएं पूतों को नहीं संभालतीं। सयानों ने ठीक ही कहा है, मिट्टी के साथ मिट्टी होना पड़ता है, तब जाकर धरती कुछ देती है। आज राही नरमा देखकर नजर लगाते गुजरते हैं। और कभी वहां सरकंडों के बीच से सांप तक नहीं गुजर पाता था। जब मैंने वे झाड़-झंखाड़ शुरू किए थे, तो देखनेवाले मजाक उड़ाया करते थे। और काम भी तो पहाड़ों को सर करने वाला था ! एक दिन मैंने वहां से झाड़ उखाड़ते हुए पांच सांप मारे—लाठी जितने लंबे। पगडंडी के किनारे मैंने उनकी पांत लगा दी। जो भी गुजरता, दो-चार पल उनकी तरफ देखकर ही आगे बढ़ता। सब मेरा हौसला तोड़ते—सज्जन ! हट जा, जिद छोड़ दे। यों ही कहीं सांप के काटे से झाड़ियों में पड़ा रहेगा।' एक बाबा अकाली ने ही हौसला बढ़ाया। 'शाबाश, बेटे, शाबाश। हिम्मत न हारना। देख लेना, यहां गेहूं और कपास भी घुड़सवार के सिर के बराबर ऊंची हुआ करेगी।' और आज नरमे में घूमता आदमी दूर से नजर नहीं आता। धन्ने शाह को अपना होश होता, तो जब वह पास से गुजरा था, नरमे को नजर लगाकर ही गुजरता। लेकिन उसमें तो जान पड़ी यहां चार कटोरे पानी पीकर। और जाते-जाते तूतोंवाले कुएं को स्वर्ग कह गया। काली जुबानवाला !..और ये शहतूत भी जिस दिन हम लाए थे, बल्लेवालों के कमाद में से उखाड़कर... एक दिन तो उस खागड़ जैसे खड़क सूंह ने खड़काई भी थी। बोला, तुम दोनों रोज गन्ने तोड़ ले जाते हो। हमने बड़ी कसमें खाईं, लेकिन छोकरों की कसमों पर कौन एतबार करता है ?...पहले दिन हम आठ या नौ शहतूत उखाड़कर लाए।... 'ठीक है। पच्छिम की तरफ इलमे का खेत है। इधर यह लगा ले। और पूरब की तरफ, सज्जन, तू लगा ले। कल को बंटवारे को लेकर झगड़ा नहीं होगा।' बाबे पीर ने मुझसे कहा था। पास खड़े बापू ने उसी वक्त उसे झिड़का था, 'पीर मियां, इनके बीच अभी से फूट मत डालो। यह सारा कुआं इनका साझा है। मेरी और चिराग़दीन की सारी उमर इकट्ठे ही निभ गई है। हम चाहते हैं, इनकी भी आगे हमारी तरह निभ जाए।' फिर बापू ने कुएं की चारों तरफ खुद निशान लगा दिए। 'लो, एक खड्ढे में इलमा शहतूत लगाए और एक में सज्जन। और ये सारे तुम दोनों के साझा हुए।' हमने इसी तरह ये दोनों पांतें लगाईं थीं। फिर झाड़ियों की शाखें

काटकर हमने इनकी बाड़ लगाई। इन्हें पशुओं से बचाने के लिए हमने कई बार कांटों से हाथ फड़वाए। ये छोटे-छोटे ही थे कि इनकी छांह में हम चारपाइयां डाल लेते। आधी छांह में, आधी धूप में—हम सारी-सारी दोपहर उबलते रहते। और अब इनके बीच से सारा दिन सूरज दिखाई ही नहीं देता। है तो वैसे स्वर्ग ही। गरमियों में सारा दिन रौनक लगी रहती है। और अगर कहीं—जैसे धन्ने शाह कहता है—यहां दो-चार घुमांव बाग भी लग जाए, तो यह स्वर्ग से भी बेहतर लगने लगे। अच्छा, इलमे के साथ सलाह करते हैं।

और बाकी बची रात वह सोते-सोते भी बाग लगाने की तजबीजें सोचता रहा।

तीन

"मेरी रात-भर की बकबक का कोई असर हुआ या नहीं ?" धन्ने शाह ने बड़े रूखे स्वर में पूछा।

"झूठी बात। कहते हैं न : सखी से तो सूम भला, तो तुरत दे जवाब।" ज्वालादेई ने जवाब देते हुए मुंह दूसरी तरफ घुमा लिया।

"ठीक कहते हैं : औरत की मति खुत्ती के पीछे होती है।" धन्ने शाह ने लाल रंग की बड़ी-सी बही के पन्ने उलटते हुए बड़ी हिकारत से कहा।

"खुत्ती के पीछे भी कहां ! होती ही नहीं। मति होती तो सारा नाक-कान उतार के तुम्हारे हवाले क्यों कर देती ? तुम्हारा तो कहीं भराव ही नहीं !" ज्वालादेई की आवाज में भी तेजी आ गई थी।

"मैं कहीं जूआ खेल आया होऊंगा !"

"हमें क्या पता, जूआ खेलते हो या पतुरिया नचवाते हो ! हमारे पास तो एक छल्ला तक नहीं छोड़ा। ले-देकर ये बंद रह गए हैं—और अब इन पर भी आंख गड़ी हुई है !"

"पर मैं इनकी कहीं शराब तो नहीं पीने जा रहा हूं !"

"शराब पीओ, चाहे रखैलें रखो। हमने किसी को रोका है !"

"तुम्हें वैसा कोई मिला नहीं। मिल जाता तब देखतीं ! देखती हो न दौलतराम के घर का हाल !" धन्ने शाह ने उस पड़ोसी की मिसाल दी, जिसने दो पत्नियों के होते हुए भी तीसरी रखैल रखी हुई थी।

"तुम्हें भी कोई उस जैसी टकर जाती, तो घर का द्वार दूसरी तरफ लगवा देती। सयानों ने कहा है : औरत उजाड़ने पर आए, तो सूई की नोक से भी घर ढहा देती है।"

"तो पहले कम उजाड़ रखा है ? लड़की और लड़के के ब्याह पर कोई कसर रहने दी ? उससे आधे से ही काम चल सकता था। पर इस रायजादी की तो नाक ही न रहती।

मैं तेरे कहे में आनेवाला होता, तो ये चार ईंटें भी बिक जातीं।"

"मेरे किसी भाई-भतीजे के ब्याह पर तो लगा नहीं आए हो ! मुझे चाहे जितना खुशी-खुशी मारो। किसी ने लगाया होगा, तो अपनी नाक-नमूज को ! हमारे सिर किस बात का एहसान ? हमने तो सारी उमर इस घर में मजूरी की है—पूरबनियों की तरह भांडे मांजे हैं—हां !"

"मैके में तो यह पालने में झूलती आई थी और इस घर में भांडे मांजने पड़ गए ! हैं न ?" धन्ने शाह ने मुंह बिचकाते हुए कहा, जैसे बच्चे एक-दूसरे को चिढ़ाते हैं।

"हमारे मायकेवाले किसी नादू खां के घर खाने नहीं आते—भले ही कोई हमें ताने देता रहे।"

"मांजी, चुप करो। कोई पराया सुनेगा तो क्या कहेगा ?" पास बैठी सुमित्रा ने धीरे से सास को समझाया।

"इसे कोई लाज-शरम है किसी सुननेवाले की ! अकल की बात भी कहो, तो भी सिर के बालों को आती है ! मैं कोई छाती पर रखकर तो ले नहीं जाऊंगा। तुम्हारे ही बेटों-पोतों के लिए सब बन रहा है। मैंने तो सारी उमर गांधी की मलमल में गुजार ली है।" धन्ने शाह ने अपनी सादगी या कंजूसी को भी घर के जीवों पर एहसान की तरह जताया।

"तो हम कौन-सा रेशम पहनते बुढ़ाए हैं। जबसे इस घर में आए हैं, न जी भर के खाया, न मन-माफिक पहना !" ज्वालादेई ने उलटा हाथ देते हुए बड़ी घृणा से कहा।

"देखो तो ! भूखी रह-रहके सूखकर पापड़ हुई पड़ी है !" धन्ने शाह ने भरपूर व्यंग्य किया।

दूसरे बच्चे के जन्म के समय ज्वालादेई को सूतक में हवा लग गई थी। पैसों के अभाव के कारण नहीं, पैसा बचाने के चक्कर में उसका पूरा इलाज नहीं कराया गया था, जिसका नतीजा यह हुआ कि वात रोग के बढ़ जाने से वह फूलकर ढोल-सी बन गई। इस वक्त तो वह अपने-आपको संभालने में भी कठिनाई महसूस करती थी।

"मिठाइयां और बकरे खा-खाकर फूल गई हूं—है न ?" मूंग की दाल और पालक के पत्तों पर जून गुजारनेवाली ज्वालादेई ने बकरे का नाम लेकर ही मन-बहलाव कर लिया। भटकते दिल की हसरत शब्दों के जरिए बाहर आ गई।

"तेरे भाग्य में बकरा कहां ! गोलगप्पे खाते-खाते खुद भी गोलगप्पा बन गई ! बेफिक्रे आदमी पर मांस ही तो चढ़ेगा !"

"अच्छा, मैं तो गोलगप्पा हूं—तुम कोई अच्छी-सी ले आओ। पीछा छोड़ो मेरा !" ज्वाला देई की आवाज जरूरत से ज्यादा ऊंची हो गई।

"पर मांजी ! आप लोग लड़ किस बात पर रहे हैं ?" सुमित्रा ने एक बार फिर सास का पैर दबाते हुए धीरे से कहा। वह चौके में सास के पास बैठी आलू छील रही थी।

"इन बंदों का स्यापा है। यह मरनेवाली की आखिरी निशानी रह गई है मेरे पास। कहते हैं इन्हें भी उतार दे और नंगी बंदरिया बनके बैठ जा। कहा भी है न : नक्क न

कन्न ते मोई मत्था भन्न !* मरने पर कोई बहू-बेटी नहलाएगी भी नहीं।" ज्वालादेई ने पति को सुनाते हुए बहू की बात का उत्तर दिया।

"मरी हुई को नहलाने की जिनकी जिम्मेदारी है, वो जानें। भला तुझ इस बात की क्या चिंता ?"

"हां ! तू मरनेवाली बन।—यही कहना चाहते हो न ? पर मैं इस तरह पीछा नहीं छोड़नेवाली !" ज्वालादेई की आंखों से क्रोध की लपटें निकल रही थीं।

"वह तो मैं जानता हूं, भई मेरे ऐसे भाग कहां ? पर तू आज की···"

"ए धन्ने शाहजी !" बाहर से लक्खा सिंह की आवाज आई। आढ़त पर सुबह से बैठा इंतजार करते रहने के बाद वह घर आ धमका था।

"कौन, सरदार लक्खा सिंह !" धन्ने शाह ने बाहर की तरफ मुंह करके कहा। "आ जा, अंदर आ जा। और अपनी शाहनी का असली रूप भी देख ले।"

बैठक के गली की तरफ के दरवाजे की चिक हटाकर लक्खा सिंह अंदर आ गया।

"ज्वालादेई तो किसी ने भूल से इसका नाम रख दिया है । सही अर्थों में तो यह ज्वालामुखी है। तीन-चार दिनों से फुंके बैठे धन्ने शाह ने मित्र के सामने शिकायत पेश कर दी"।

"क्यों शाहनी, क्या बात है ? सत् श्री अकाल" कहते हुए लक्खा सिंह शाह के सामने बिछी हुई चारपाई पर बैठ गया।

"सत्श्री अकाल जी। आप अपने शाह से ही पूछ लीजिए, मुझे क्या बताना है ! औरत की भी कभी चली है !" ज्वालादेई ने यथाशक्ति विनम्र शब्दों में उत्तर दिया। तीसरे आदमी के पास आ बैठने की वजह से उसने अपने गुस्से पर काबू पा लिया था।

धन्ने शाह कसूर के पहुंचे हुए साहूकारों में से एक था। आढ़तवाले अच्छे खुले अहाते से अलग शहर में उसके पांच मकान थे। उनमें से तीन तो रेलवे रोड पर अच्छे शानदार थे। उनका अच्छा खासा किराया आता था। और खुद वह सबसे छोटे मकान में रहता था।

लक्खा सिंह का उसके घर में काफी आना-जाना था। दोनों ब्याजिये और मित्र थे। कई बार लक्खा सिंह कहता, "अरे नालायक धन्ने शाह ! यहां कहां गंदे-से मोहल्ले में जमा बैठा है ! यह भी कोई मकान है ? निरा चूहों का बिल। वही बुल्ले शाह के सामने रेलवे रोड वाला मकान खाली करवा ले··· अव्वल तो बाहर कहीं कोठी बना।"

'चाचाजी ! कोई किराएदार इस मकान में रहने को तैयार ही नहीं होता, वरना भाइयाजी तो कब्रों से पास बांस-सरकंडों की झुग्गियों में भी रहने को तैयार हैं !" पास से मदन लाल व्यंग्य से हंसते-हंसते कह उठता।

लक्खा सिंह और धन्ने शाह दोनों भाई बने हुए थे। धन्ने शाह ने अपने बेटी-बेटे को उनके छुटपन में ही सिखाया था कि वे लक्खा सिंह को 'चाचाजी' कहा करें। धन्ने

---

* न नाक में कुछ, न कान में—मरी का माथा फोड़ो

शाह जानता था कि जाट जितना 'चाचा' के संबोधन से खुश होता है, उतना और किसी तरह नहीं होता। जाट लड़के आपस में लड़ पड़ते, तो एक-दूसरे के सामने यही बड़ी शर्त रखते कि चाचा बोलोगे, तभी छोड़ूंगा।

"बच्चू, जिस दिन अपने हाथों से कमाओगे, उस दिन पता चलेगा। जितनी देर बेगाने सिर पर रहो, इसी तरह कहा जाता है। इस मकान में रहने से हमारी शान नहीं मारी जाएगी। धन्ने शाह आखिर धन्ने शाह ही है।"

मां-बाप ने उसका नाम धन्नामल रखा था। पर वहुत-सी आसामियों का साहूकार होने की वजह से सब लोग उसे धन्ने शाह कहते थे, जैसे उसके पिता पिरथी चंद को पिरथी शाह। धन्ने शाह के इकलौते बेटे मदनलाल को भी गांव की आसामियां मदन शाह ही कहती थीं।

मकान सचमुच धन्ने शाह की शान के मुताबिक नहीं था। संकरी-सी गली में एक बैठक थी, जिसका एक दरवाजा गली में खुलता था और दूसरा अंदर घर की तरफ। बैठक के साथ चार फुट चौड़ी ड्योढ़ी थी। कहने को ड्योढ़ी कह लो, लेकिन था वह गुजरने लायक रास्ता ही। उसके पीछे दो चारपाइयों का आंगन था, जिसमें एक तरफ आधी चारपाई के बराबर जगह में रसोई की छत बनी हुई थी। आंगन से लगे आगे-पीछे दो कमरे थे—और बस।

बाहरवाली बैठक में एक चारपाई और एक छोटा-सा तख़्तपोश हर वक्त बिछा रहता था। उस तख्तपोश पर बैठा धन्ने शाह किसी आसामी का हिसाब टटोल रहा था।

बरामदे जैसी रसोई में ज्वालादेई और सुमित्रा बैठी हुई थीं। ज्वालादेई धन्ने शाह के सामने थी और सुमित्रा ससुर की तरफ से कुछ ओट करके बैठी थी। जिस चारपाई पर लक्खा सिंह आकर बैठा था, वहां से ज्वालादेई और सुमित्रा, दोनों ओट में थीं।

वरना का अमली नत्था सिंह धन्ने शाह और लक्खा सिंह का साझा कर्जदार था। नत्था सिंह के घर में छह लड़कियां थीं और सबसे छोटा एक लड़का। घर में नौ प्राणी खाने-पीने वाले थे और कमानेवाला एक भी नहीं। पिछली उमर, इतनी सारी बेटियों की चिंता और ऊपर से अफीम का रोग। अमली नत्था सिंह कठिन काम करने लायक नहीं रह गया था। जमीन गुजारे लायक थी—लेकिन बिना श्रम किए धरती दे भी तो कहां से! लक्खा सिंह ने मौका ताड़कर अमली को कर्ज देना शुरू कर दिया। कर्ज की रकम आधी लक्खा सिंह देता और आधी धन्ने शाह।

धन्ने शाह की अधिकांश साहूकारी गांवों के छोटे किसानों के साथ थी। सूद-दर-सूद लगाकर रकम को बढ़ाने में वह बड़ा उस्ताद था। जो जाट एक बार उसके काबू में आ जाता, ते-जिंदगी कर्ज के भार के नीचे से निकल न पाता। अंत में जमीन पर आकर ही बात निबटती। देश के बंटवारे से पहले पंजाब में एक कानून लागू था जिसके तहत गैर-जरायतपेशा आदमी जमीन खरीद नहीं सकता था। धन्ने शाह के सामने भी यही रुकावट थी। इसी दुख के कारण उसने लक्खा सिंह को भाईवाल बना रखा था। धन्ने शाह किसी आसामी से जमीन गिरवी रखवाता या 'खरीदता', तो रजिस्ट्री लक्खा सिंह के नाम होती।

अपनी रकम की सुरक्षा के लिए धन्ने शाह लक्खा सिंह से स्टांप पेपर पर इकरारनामा लिखवा लेता, जिसका भाव होता—यह जमीन खरीदने के लिए लक्खा सिंह ने धन्ने शाह से इतनी रकम कर्ज के रूप में ली है। जब तक लक्खा सिंह यह ऋण चुकता नहीं करता, तब तक ऊपर की रकम के ब्याज के रूप में धन्ने शाह को जमीन की आमदनी में से हिस्सा देता रहेगा।

नत्था सिंह अमली के सिर पर कर्ज बढ़ते-बढ़ते पंद्रह सौ तक पहुंच गया था। दो रुपए सैकड़े के हिसाब से तीन सौ साठ रुपए सालाना ब्याज बन जाता था। कर्ज वापस करना तो दूर की बात थी, अमली उसका सूद चुकाने लायक भी नहीं था। तंग आकर अमली ने कुछ जमीन गिरवी रखना मंजूर कर लिया। पांच सौ रुपया और नकद देकर लक्खा सिंह को दो हजार की रजिस्ट्री करवानी थी। वह रकम धन्ने शाह और लक्खा सिंह को आधी-आधी देनी थी। उसी के बदले धन्ने शाह घरवाली से बंद मांग रहा था।

धन्ने शाह का हिमायती आ गया था। उसे हौसला हो गया था कि अब वह घरवाली से, बंद लेने में सफल हो जाएगा। उसने अपने मंतव्य तक पहुंचने के लिए जरा लंबी व्याख्या शुरू कर दी : "सरदार लक्खा सिंहा, जिंसों के भाव बहुत गिर गए हैं। पांच-छह रुपए कपास, ढाई-तीन रुपए तोरिया और दो-पौने दो गेहूं। ये कोई भाव हैं ? पिछली जंग में बीस-बाईस रुपए कपास और दस-बारह में गेहूं बिक चुके हैं। जिंसें महंगी होने के कारण जाटों ने घरों के खर्च बढ़ा लिए हैं। अब गिरने से आमदनी तो घट गई, पर एक बार बढ़े हुए खर्चों का कम होना मुश्किल होता है। सच बात है, सौ में से अस्सी-पिचासी जाट कर्जाई हो गए हैं। और यही वक्त है साहूकारों की कमाई का। मैं तो सोचता हूं कि चार-पांच साल भाव इसी तरह गिरे रहें, तो हमारी कई पीढ़ियों को फिर कमाई करने की जरूरत नहीं रहेगी। भला बताओ, अमली नत्था सिंह जो आज जमीन गिरवी रख जाएगा, फिर वह कभी उसे छुड़वा पाएगा ? पर तुम्हारी शाहनी को कौन समझाए ? इसके दिमाग में तो निरा भुस भरा हुआ है। मैं चार दिन से सिर खपाए जा रहा हूं कि भई, इस वक्त और कोई चारा नहीं है—और मैं साल के अंदर-अंदर तुझे फिर से, बंद बनवा दूंगा। पर यह जिद किए बैठी है। वही बात हुई न : साही की तीन ही टांगें हैं, चौथी है ही नहीं। भला पूछे कोई—क्या इसे, बंदों के बगैर नींद नहीं आएगी ? बताओ।"

"लो, क्या बात निकाली है ! इधर देख," लक्खा सिंह ने जेब में से रूमाल निकालकर धन्ने शाह की तरफ फेंकते हुए कहा, "ये न्हामे की मां की डंडियां हैं। अगली फसल पर उसे नई बनवा देंगे। कर्मोंवाली ने एक बार भी ना नहीं कहा। तू मुझे कल संदेसा भिजवा देता, तो मैं उसकी कंठी भी ले आता। कमबख्त, हम पर बाहरवाले एतबार कर लेते हैं, तो घर के न करते ? पर अब तो अमली आढ़त पर आया बैठा है। मैं राह देख-देखकर घर बुलाने आया हूं। अच्छा, तुझ पर न सही, मुझ पर शाहनी बे-एतबारी नहीं करती।

"भई शाहनी !' उसने जरा ऊंची आवाज में शाहनी को संबोधित किया, "हमारा यह वक्त साथ दे। मैं जामिन रहा। इसी फसल पर नए बंद बनवा देंगे।"

"भई, हमारी सरदारनीवाली रात को तो बस वही जनमी है। वाह भई भागवान !" धन्ने शाह ने रूमाल में से डंडियां निकालकर हाथ में तौलते हुए कहा। "इधर देख," उसने ज्वालादेई को डंडियां दिखाते हुए कहा, "जिन्हें घर प्यारे होते हैं, वो गहने के पीछे जान नहीं देतीं। यह सब तुम लोगों के लिए ही तो बन रहा है। मैं तो अभी, तूतोंवाले कुएं के बारे में सोच रहा हूं...भई लक्खा सिंह !कोई दाव-पेंच लग जाए, तो है वैसे स्वर्ग का नमूना!"

"देखो, सहज पके सो मीठा होय। तू जल्दी उठ अब। तुझसे कहा था न ! हमारी शाहनी दिल की बुरी नहीं है !"

डंडियां देखकर ज्वालादेई ने हाथों से बंद उतारकर धन्ने शाह के सीने पर दे मारे। वह जानती थी कि इस खाते में पड़ी कोई चीज कभी वापस नहीं आती।

धन्ने शाह की कंजूसी से घर के सभी लोग तंग थे। लाखों रुपयों की जायदाद का वे क्या करते, जिन्हें मन-मर्जी का खान-पान भी नहीं मिलता था। बहू-बेटा जवान थे। उनके अंदर खाने, अच्छा पहनने की कामना थी। मगर धन्ने शाह ने अपनी जवानी में खा-पहनकर नहीं देखा था, तो वह बहू-बेटे की जवानी की इच्छाओं की क्या कद्र करता? ज्वालादेई ने भी सारी जवानी ठंडी आहें भरते हुए गुजारी थी। उसके मायके और ससुराल वालों ने जो भी गहना-गोटा उसे शादी में दिया था, धन्ने शाह ने सारा का सारा बेच-कमा लिया था। जिस आसामी से उसे कुछ मिलने की आस हो, उसे वह कभी वापस नहीं जाने देता था। घर के बर्तन बेचकर भी वह आसामी को देने के लिए तैयार हो जाता था बशर्ते आसामी को उसकी मन-मर्जी का ब्याज देना मंजूर हो। ज्वालादेई कई बार खीजकर यहां तक कह देती—"अब तो मैं ही रह गई हूं। कोई ग्राहक मिलता हो तो मुझे बेचकर दो खेत और खरीद लो !"

"पार्वती की मां, मुझे भरोसा है कि कभी मुझ पर विपदा आ पड़ी, तो तुम द्रौपदी की तरह मेरे लिए यह कुरबानी देने को भी तैयार हो जाओगी। पांडवों ने भी तो द्रौपदी को जूए में हार दिया था।" लाज महसूस करने की जगह धन्ने शाह यह उत्तर देता।

पहले भले ही वह कितना गरम हो, लेकिन मनोवांछित वस्तु मिल जाने पर धन्ने शाह झट नरम पड़ जाता, बंद जेब में डाल वह ज्वालादेई की बड़ाई करता उठ बैठा।

सारे रास्ते धन्ने शाह लक्खा सिंह के साथ, तूतोंवाले कुएं की ही बातें करता रहा।

चार

"मार, मार, मार। दोहरी है दोहरी।" सज्जन सिंह ने अपने साथी को प्रोत्साहित करते हुए कहा।

"अरे, अपन खांसने भी नहीं देंगे। यह लो !"उमरदीन ने पूरा जोर लगाकर पत्ता फेंका।

"अब इसी हाथ एक और ले ले !"सज्जन सिंह ने दूसरी बार जोड़ीदार को ललकारा।

"ओ ले, तू भी कब बार-बार कहनेवाला है !"उमरदीन ने पान का इक्का दे मारा। उसका खयाल था कि इस तरह वह दूसरी सर* बना लेगा।

"छड़े, अब तेरी बारी है। मर जा किसी के गले लगकर !"दीपे ने अपने साथी को फटकारा।

खेलनेवालों के हाथों में अब सिर्फ तीन-तीन पत्ते रह गए थे। नीचे बाजी में दस सरें जुड़ी पड़ी थीं। जो जोड़ी उसे उठा लेती, उसी को जीत जाना था। जोर दोनों धड़ों ने बहुत लगाया था, लेकिन सफल कोई नहीं हुआ था।

बड़ा सादा-सा खेल खेल रहे थे वे। पत्ते काटनेवाला पहले पांच पत्तों में से अपनी मर्जी का रंग चुन लेता था और उसका एक पत्ता नीचे उलटा छिपाकर रख लेता था। बाकी तीनों को रंग का कोई पता नहीं होता था। सारे पत्ते बंट जाने पर खेल शुरू हो जाता था। एक ही खिलाड़ी अपने हाथों दो सरें इकट्ठी ले जाता था तो नीचे पड़ी सारी सरें उसे उठा लेनी होती थीं। मगर खेले जा रहे रंग के भारी पत्ते को ही बड़ा माना जाता था। विरोधी धड़े के किसी साझेदार के पास खेले जा रहे रंग का पत्ता न होता, तो वह दबाया हुआ रंग पूछ लेता था। फिर रंग की दुग्गी भी बदरंग के इक्के-बादशाह को काट सकती थी।

"अच्छा, यह बात है ?" धरम सिंह ने पत्ते फैलाते हुए और सिर और कंधों को थोड़ा-सा हिलाते हुए जोश से कहा। हमले के लिए तैयार सिपाही की तरह उसके सारे शरीर में फुर्ती आ गई।

"मैंने कहा—जा रहा है, सब कुछ।" दीपे ने समय की नजाकत को जांचते हुए अपने साथी को सावधान किया।

चारों खिलाड़ियों और उन्हें घेरे उतने-से ही देखनेवालों का सारा ध्यान पत्तों पर टिका हुआ था। धरम सिंह के खेल पर दोनों धड़ों की हार-जीत निर्भर थी। सब लोग अपनी-अपनी जगह तने खड़े थे। उस वक्त उनका रस्साकशी जितना जोर लग रहा था।

"रंग बोल, भई जवान, रंग बोल !"धरम सिंह की आवाज में जोश और उत्साह भरा हुआ था।

---

* ताश के खेल में एक बार के फेंके पत्ते।

सुनते ही दीपे का चेहरा खिल उठा। विरोधी धड़े में चिंता पैदा हो गई। वे पीरों-फकीरों की सूखी मन्नत मनाने लगे—या चिड्डआ पीर ! धरम सिंह के पास रंग का पत्ता न निकले !

"रंग ? ईंट है।" सज्जन सिंह ने उत्साह रहित स्वर में कहा। साथ ही उसने दबाया हुआ बादशाह उठाकर दिखा दिया।

"यह ले फिर ! पान के इक्के को ईंट की पंजी लिए जाती है।" धरम सिंह ने पत्ता फेंकते वक्त अपने सूखे हुए शरीर का सारा जोर लगा दिया।

"शाबाश ओए छड़े ! इज्जत रख ली तूने ! यह तो मर्दोंवाली बात की तूने!' दीपे ने दाहिनी बांह पसारकर खुशी प्रकट की। इतने से ही जैसे उसका सेर भर खून बढ़ गया हो।

"मैं कहूं, बीसी ही पहुंचा दी इसने तो !"

"ओए, छड़ा कोई पूरी तरह गया-गुजरा तो नहीं है।"

दीपे के हिमायतियों ने—अखाड़े में जीते पहलवान की तरह—धरम सिंह का जय-जयकार किया। सज्जन सिंह के हमदर्द चुप्पी साधकर भले समय का इंतजार करने लगे।

"दीपे, अब मुंह से मांग जो मांगना हो। पीस तो आगे गई समझ ! कहे तो कोट कर दूं ?" धरम सिंह ने कंजूस के धन की तरह पत्तों को दबाकर सीने से लगाते हुए साथी की सलाह पूछी।

"कर दे, कर दे कोट ! बेचारे सर्दियों में ठंड से बचे रहेंगे !' दीपे ने दाएं घुटने पर हाथ मारते हुए कहा।

"ठंड का भी सज्जन सूंह को डर है ! और...उमरे को तो रजाई की भी जरूरत नहीं पड़ती होगी !' पास बैठे मिलखा सिंह ने अंदरूनी चोट की।

सारे झुंड में हंसी पसर गई। उमरदीन की घरवाली हुसैना बहुत मोटी थी। इतनी मोटी थी कि पांच फीट का फीता उसके गिर्द पूरा नहीं पड़ता था। उसकी छातियां ढलककर बढ़े हुए पेट तक पहुंचने लगी थीं। जरा-सी गरमी लगने पर भी वह ऐसे सांस लेने लगती थी जैसे लुहार की धौंकनी में से हवा निकलती है।

"ओए, तुम्हारी जैसी सूखी-सड़ी कुनबियां तो कहीं रखी नहीं हुई हैं ! अल्लाह की मेहर से कुनबा है कुनबा !" साथियों के हंसी-ठट्ठे से चिढ़ने के बजाय उमरदीन ने घरवाली के मोटापे को बड़प्पन की निशानी बताया।

"कुनबा भी माई भागन के गहूरे* जितना !" मिलखा सिंह ने एक और ताना कसा।

हंसी से शहतूतों के हरे पत्ते कांप उठे।

"भई, इसके लिए तो वही नियामत है !" पास बैठे महंदे कुम्हार ने उमरदीन का पक्ष लेते हुए कहा।

---

* मादा चिड़िया

"ओए, किसी को अपनी औरत कभी खराब लगती भी है ?" धरम सिंह ने उम्र भर पूरे न होनेवाले उत्साह के साथ पूछा।

"हां, उसका भार यह उठा लेगा।" दीपे ने धरम सिंह के दिल की बूझते हुए कहा।

"ओ, अब पत्ता भी फेंक !" या नक्कालों को रुपया देने वालों की तरह हाथों में ही मसलता रहेगा !' सज्जन सिंह ने खीझकर कहा। बाजी को अंत पर पहुंचते देख वह झुंझला रहा था।

"कौन-सा फेंकू ? पत्ते दोनों बढ़िया हैं। फेंकने का जी नहीं करता। अच्छा, चलने दे।" धरम सिंह ने हुक्म की अट्ठी दे मारी।

"लो, छलांग लगाई है इसने ? गए-बीते, तूने तो किया-कराया सब कुएं में डाल दिया !' दीपा कुछ उदास हो गया था।

वह सर सज्जन सिंह की बन गई। एक-एक पत्ता ही बाकी रह गया।

"अच्छा, अब आ मैदान में !" सज्जन सिंह ने दीपे की तरफ मुंह घुमाते हुए कहा। उसका खयाल था कि रंग का इक्का दीपे के पास है। अपना बादशाह उसने डर के मारे सीने में दबा रखा था।

"ओ, मेरे पास क्या है ? ले पकड़ !" दीपे ने ईंट की छग्गी सामने पटक दी।

"क्यों रे उमरे ! तो तू दबाए बैठा है ?" सज्जन सिंह ने अपने अंदर का संशय शांत करने के लिए साथी से पूछा।

उमरे ने उदास-सा चेहरा बनाकर 'न' में सिर हिला दिया।

"अब फेंक भी। छाती में दबाए रखने से इसकी जान तो बच नहीं जाएगी !" दीपे ने सज्जन सिंह के हाथ से बादशाह छीनकर सरों पर पटक दिया।

"हुंह !" धरम सिंह ने सारा जोर लगाकर इक्का उसके ऊपर मारा।

"क्यों ? छड़ा यों ही चुप्पी साधे नहीं बैठा था।"

"शेर माली* ले गया !"

"मैंने कहा, है तो जती-सती न। मैदान मार लिया !"

"अनहोने का जती, अनहोने का !"

बाजी खत्म होने पर सबने कुछ-न-कुछ कहना जरूरी समझा।

"छड़े के पूत मर गए, नहीं तो सबेरे से बड़े दबाकर रखे हुए थे !" उमरदीन ने उसांस भरकर कहा। बाजी हार जाने का उसे बहुत अफसोस था।

"न ओए बातूनी, ऐसा मत कह। छड़े के पूत मरने से कई घरों में रोना-पीटना मच जाएगा !" मिलखा सिंह ने कुछ गहरे भेद की बात कही।

"ओ सच, छड़े ! तू तो पैरों पर पानी नहीं गिरने दिया करता। और रात को बेगम तेरी तरफ चली जा रही थी।" दीपे ने उस आवारा, अधेड़ मिरासिन का नाम लिया, जिसकी

---

* पहलवानों को मिलने वाला इनाम

किसी को भी जरूरत नहीं थी।

"ओ, राम का नाम ले, भले मानस। मेरी तरफ तो ताश की बेगम भी नहीं आती, हाड़-चाम की बेगम कहां से आ जाएगी !' धरम सिंह ने अपनी किस्मत पर अविश्वास प्रकट करते हुए कहा।

"ठीक है, जन्मजात छड़ों पर कौन विश्वास करता है ! छड़ों के घर में तो, कहते हैं, चक्की हो, तो डर के मारे कोई पीसने नहीं जाती।" मिलखा सिंह ने प्रसिद्ध लोकोक्ति दोहराई।

"छड़ों का क्या है, भाई। यों ही नाम बदनाम हैं। जब मजूर जैसा खसम पास हो तो चक्की क्यों पीसे कोई !' धरम सिंह ने आस-पड़ोस के आज्ञाकारी पतियों के रोजमर्रा के जीवन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर कहा।

"भई, बात तो खरी कही है धरम सिंह ने। आजकल की मुंहजोर औरतें तो खसम को मजूर ही समझती हैं।" जरा-सा अलग होकर बैठे गहना लुहार ने सिर हिलाकर कहा।

"वह बाबा अकाली आ रहा है ! आवाज मार, सज्जन सिंह। बातें-वातें सुनेंगे।" दीपे ने सज्जन सिंह को घुटने से टकोरते हुए कहा।

बूढ़े देशभक्त करम सिंह को सभी 'बाबा अकाली' कहकर बुलाते थे। गांव में उम्र के मामले में शायद कुछ उसके हमउम्र और दो-चार उससे बड़े भी रहे होंगे। लेकिन सत्कार के लिहाज से सभी उसे 'बाबा अकाली' ही कहते थे। अंगरेजी साम्राज्य के विरुद्ध चलने वाले आंदोलनों में वह कई बार जेल जा चुका था। वैसे भी वह सबका साझा और सुच्चा, सच्चा आदमी था।

वह अपने खेत की तरफ से आ रहा था। शहतूतों के पास से उसके घर को पगडंडी जाती थी। छांह में खड़े होने का उसका विचार नहीं लग रहा था। वह अपने ही ध्यान में उस तरफ से निकला जा रहा था। सीध में आने पर सज्जन सिंह ने उसे आवाज दे दी, "बाबा अकाली ! आ, तुझे ताश खेलाएं !'

"ताश ?' बाबा अकाली जाते-जाते रुक गया। उसके मन में जाने क्या आया, वह घूमकर तख्तपोश के पास आ खड़ा हुआ। उसके गंभीर चेहरे पर कुछ अनोखी रेखाएं उभर आईं।

तख्तपोश पर चुप्पी छा गई। सबके सब हैरानी से बाबा अकाली के मुंह की तरफ देखने लगे।

"वैसे··· खेलना आता भी है तुम्हें ? लाओ, इधर दो !' बाबा अकाली ने सज्जन सिंह के हाथ से पत्ते ले लिए। एक पल के लिए उसने सबके चेहरों की तरफ बड़ी बींधती हुई नजर से घूरा। फिर वह अपने-आप पत्ते फैलाकर तरतीबवार करने लगा। "यह दुग्गी है न ?' उसने पान की दुग्गी नीचे फेंकते हुए कहा।

तीन-चार लोगों ने सिर हिलाकर हामी भरी।

"और यह तिग्गी ?' बाबा अकाली ने एक और पत्ता पहले पत्ते पर फेंका। "इस पर एक नुक्ता ज्यादा है। जैसे फौजी की बांह पर दो की जगह तीन फीतियां लग गईं

हों। एक नुक्ता ज्यादा होने से दर्जा बढ़ गया। उसने दुग्गी को काट दिया। समझे ?"

आसपास बैठे लोगों ने 'हां' में सिर हिलाए, भले ही उनमें से अभी तक यह कोई नहीं समझ पाया था कि बाबा अकाली का तात्पर्य क्या है।

"और यह चौग्गी—इसने तिग्गी को मार लिया।" बाबा अकाली ने पत्ता फेंककर एक बार फिर सबकी तरफ बड़ी खोजी नजर से देखा।

"इसी तरह चौग्गी पर पंजी, पंजी पर छक्का—और उससे आगे सत्ता, अट्ठा, नहला, दहला।" बाबा अकाली पत्ते फेंकता जा रहा था। "अपने से नीचेवाले पर दूसरा भारी है—और सारे नहलों-दहलों पर गुल्ला चढ़े बैठा है... गुलाम। एक गुलाम, दूसरा गुलाम, तीसरा गुलाम, चौथा गुलाम।" उसने चारों रंगों के गुलाम नीचे फेंक दिए। "ये चारों रंगों के गुलाम हैं—समझो, चारों वर्णों के, चारों मजहबों के—सबके सब गुलाम !" उसने दाहिना हाथ घुमाकर सबकी तरफ इशारा करते हुए कहा। "और ये सारे गुलाम एक बेगम का पानी भर रहे हैं।" साथ ही उसने हल्के-से हाथ से गुलामों के ऊपर पान की बेगम रख दी। "यह लाल रंग की बेगम सभी गुलामों पर और गुलामों से भी नीचे के नहलों-दहलों पर जूती के जोर पर राज कर रही है। क्योंकि इसके पीछे सुनहरी ताजवाला बादशाह बैठा है। बताओ, अब क्या करोगे तुम ? मेरी तरफ क्या देख रहे हो ? खाओ जूतियां, सहो जुलुम ! इसका इलाज है—यह देख रहे हो ?" उसने पान का इक्का दाएं हाथ में लेकर सबकी तरफ सीधा करते हुए पूछा, "क्या नाम है इसका ?"

"इक्का," उमरदीन की मद्धिम-सी आवाज आई।

"इक्का नहीं, असल में इसका नाम है—'एका'*। इक्का। एक ही नुक्ता है न इस पर ! एका। और सिर्फ यही इन बेगमों-बादशाहों का मुंह तोड़ सकता है। एके के बिना तुम इन्हें जीत नहीं सकते।... तुम बड़े बहादुर हो, बड़े सूरमा हो। तुम बड़े-बड़े जमींदार हो, कारखानेदार हो, राजा महाराजा और नवाब साहब हो। तुम्हारे पास धरती है, कपास है, गेहूं है, चांदी है, सोना है, हीरे-मोती और जवाहर है, लेकिन एकता नहीं है। यह सिख है, यह मुसलमान है, वह हिंदू है, वह ईसाई है, यह पंडित है और यह चमार है। पर इन्सान? एक भी नहीं। दुग्गियों-तिग्गियों की तरह बंटे हुए आपस में लड़ने योग्य हो, मगर एकता नहीं है। ताश खेलते हो—रोज खेलते हो, मगर एकता की ताकत नहीं समझते। यह है ताश खेलने का असली मनोरथ। नहीं समझे ? तो खाओ खसमों को, यह पड़ी है ताश!" हाथ में बचे पत्ते उसने नीचे पटके और घर की तरफ चल पड़ा।

"बड़ी भेदभरी बात कही है बाबा अकाली ने। कोई समझनेवाला हो तो इतनी बात ही काफी है। कहा है न—'इको अलफ मेरे दरकार' ! आहा !" गहने ने मस्ती में सिर हिलाते हुए कहा। "बड़ा कुरबानीवाला शख्स है। करतार सूं सराभे का साथी है न ?"

"कुरबानी ?" जाते-जाते बाबा अकाली फिर पीछे घूमा। "मेरे जैसे क्या कुरबानी करेंगे ? कुरबानी कर गया शेर-बब्बर करतार सिंह सराभा। उसके जैसे क्या घर-घर पैदा

---

* एकता।

होते हैं ?"

"अकाली बाबा ! सराभे की कोई बात सुनी। आ, बैठ जा यहां। तेरे मुंह से सुनकर हमारा खून उबलने लगता है।" सज्जन सिंह का रंग सचमुच कुछ लाल हो उठा था।

"ओए ! वह मर्द था मर्द ! सच्चा देशभक्त। लो, सुनो !" बाबा अकाली तख्तपोश के एक किनारे पर जमकर बैठ गया।

पांच

शहीद करतार सिंह सराभा का नाम याद आते ही बाबा अकाली सबकुछ भूल जाता था। उसे भूख-प्यास की भी सुध नहीं रहती थी। एक मिनट वह आंखें बंद करके बैठा रहा। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह बीती यादों को मन में सजीव कर रहा हो। उस समय उसके शांत चेहरे का प्रभाव बड़ा अनोखा था। सभी देखनेवालों की आंखें एकटक बाबा अकाली पर टिकी हुई थीं।

"करतार सिंह सराभा," बाबा अकाली ने आसपास बैठे लोगों पर निगाह घुमाते हुए कहना शुरू किया, "मुश्किल से दीपे की उमर का था, जब पहले-पहल मुझे उसके दर्शन हुए। बड़ी मनमोहिनी सूरत थी उसकी। देखनेवाले के दिल में धंस जाती थी। और चेहरे का रोब इतना, जैसे हरिसिंह नलुआ हो। मैं तब छब्बीस-सत्ताईस बरसों का भरपूर जवान था और वह मुझसे छह-सात साल छोटा मालूम होता था। पार्टी में वह शायद सबसे छोटी उमर का था। फिर भी हम सब बड़ी खुशी से उसका हुकम मानते थे। उसका हुकम टालने की किसी की हिम्मत ही नहीं होती थी। फिर दिलेर इतना कि मौत को भी तुच्छ समझता था वो। वाह रे सराभे !' बाबा अकाली ने जैसे सत्कार में सिर हिलाते हुए कहा।

"बाबा अकाली, सराभा उनका गोत्र था ?' दीपे ने जानकारी हासिल करने के खयाल से पूछा।

"नहीं। सराभा गांव है, जिला लुधियाना में," बाबा अकाली ने उत्तर दिया। "शहीद करतार सिंह वहां के सरदार मंगल सिंह का बेटा था। गांव के नाम पर सभी उसे करतार सिंह सराभा या खाली सराभा साहब कहते थे।"

"सुना है, इसी उमर में उसने विलायत पास कर रखी थी।" गहने लुहार की आवाज में श्रद्धा का पुट था।

"विलायत तो हम अंगरेजों के मुल्क को कहते हैं न। मगर वह अमरीका में पढ़ता था। इधर पढ़कर वह ऊंची पढ़ाई के लिए अमरीका चला गया। पढ़ते-पढ़ते ही उसे देशभक्ति की लगन लग गई। वहां जब वह लाला हरदयाल से मिला, तो वह मुश्किल से अभी उन्नीस बरस का था। बस, अभी मसें भीग रही थीं और फांसी चढ़ते वक्त भी वह अभी लड़कों

जैसा ही मालूम होता था। जवान के दर्शन करके भूख मिट जाती थी, भई।"

"सुबहान अल्लाह ! धन्य है वो माई जिसने उस सूरमे को जनम दिया," कहते-कहते गहने लुहार की आंखों में श्रद्धा के आंसू आ गए।

"लाला हरदयाल और उनके कुछ साथियों ने मिलकर अमरीका में 'गदर' अखबार निकाला। करतार सिंह की कई कविताएं उसमें छपती थीं। एक कविता थी—'हिंदू सिख पठान ते मुसलमानो-ह् !" बाबा अकाली ने आखिरी हेक को जरा लंबा करते हुए कहा:

'फौजां वालेओ जरा खयाल करना।
देस लुट्ट फरंगियां लया साडा,
असां जंग हुण ओहनां दे नाल करना।
वेला जुध दा आण नजीक ढुक्का,
रोशन हिंद नू वांग मसाल करना।
होऊ जित्त असाडड़ी ठीक वीरो।
जुध बड़े परेम दे नाल करना।
मार मारके गोरे पामरां नूं,
सिरों दूर गुलामी दा जाल करना।
सुण के गदर दी खबर नूं खुशी होणा,
गमी दूर ते चित्त निहाल करना।"*

कविता सुनाते-सुनाते बाबा का वृद्ध चेहरा भी जोश में भभककर लाल हो गया।

"वाह ! वाह !' कई लोग मस्ती में एक साथ बोल उठे। सिर तो सभी के झूम रहे थे।

"मैं कहता हूं—मुरदे जी उठा करते थे, जब करतार सिंह इसे खुद गाकर सुनाया करता था," बाबा अकाली ने दोनों मुट्ठियां भींचते हुए कहा।

"अच्छा, फिर ?" सज्जन सिंह का इशारा था कि कहानी आगे बढ़नी चाहिए।

"उनका मकसद था अंगरेजों की गुलामी से हिंद को आजाद कराना। अमरीका में उन्होंने आजाद हिंदुस्तान का झंडा भी बना लिया था—तिरंगा झंडा। उसमें पीला रंग सिखों का, हरा मुसलमानों का और लाल रंग हिंदुओं का था। उस पर कैंची के दो फलों जैसा दो तलवारों का निशान था।"

"अब तो हिंदुओं का सफेद रंग है," पास बैठे मिलखा सिंह ने सवाल कर दिया।

"यह तो कांग्रेस का झंडा है न ! गदर पार्टी के झंडे में लाल रंग था। अच्छा, यूरोप

---

* 'हिंदुओ, सिखो, पठानो और मुसलमानो !/फौजवालो, जरा खयाल करना।/हमारे देश को फिरंगियों ने लूट लिया है,/अब हमें उनके साथ जंग करनी है।/युद्ध की बेला निकट आ पहुंची है,/अब हिंद को मशाल की तरह रोशन करो।/भाइयो, जीत हमारी ही होगी,/युद्ध बड़े प्रेम के साथ करना।/ गोरे पामरों को मार-मारकर,/अपने सिर पर लगे गुलामी के जाल को दूर करो।/ग़दर की खबर को सुनकर खुश होना,/गम को दूर करके चित्त को निहाल करो।"

में कंजों* और जर्मनों की जंग शुरू हो गई थी। मौका ताड़कर हजारों देशभक्त अमरीका और कनाडा से हिंद की तरफ चल पड़े। बाबा सोहन सिंह भकने जैसे कई लीडर तो रास्ते में जहाज पर ही पकड़ लिए गए, मगर करतार सिंह सराभा और उसके कई साथी बच कर आ पहुंचे। वो लंका और मद्रास के रास्ते आ गए थे।"

"शेर को काबू करने की कोशिश से भी वह काबू में आ थोड़े ही जाता है !' दीपे ने तारीफ के स्वर में कहा।

"अंगरेजों ने जोर तो बहुत लगाया था, मगर वह पुलिस की आंखों में धूल झोंककर पंजाब आ पहुंचा। तब सन् चौदह का अक्तूबर महीना था। पुलिस ने सारे पंजाब में अफरातफरी मचा रखी थी। उसी साल कलकत्ता के बजबज घाट पर बाबा गुरदित्त सिंह के जहाज पर गोली चली थी। सारे देश में पकड़-धकड़ चल रही थी। लोग सरकार के डर से सहमे हुए थे। मगर वो शेर खामोश बैठे रहनेवाले तो थे नहीं। वैसे भी वो घर में आराम से बैठने के लिए तो आए नहीं थे ! उन्होंने आते ही काम शुरू कर दिया।

"उन दिनों बंगाल में रासबिहारी बोस का बड़ा नाम था। अंगरेजों को देश से निकालने के लिए उसने अपना गुप्त दल बना रखा था। काफी हथियार भी जमा कर लिए थे। बम तो वो खुद ही बना लेता था। हमारे पंजाबी भी बम बनाते थे, लेकिन वो बंगालियों जैसे बढ़िया नहीं होते थे। हमारे बम से मुश्किल से एक-दो आदमी मर सकते थे, लेकिन बंगालियों का बम पचास-साठ को उड़ा देता था। साथ ही हमारे बम कभी-कभी अपने-आप भी फट जाते थे। टुंडी लाट की बांह इसी तरह तो उड़ी थी !"

"टुंडी लाट कौन ?" पास से धरम सिंह छड़े ने पूछ लिया।

"अरे, हरनाम सिंह टुंडीलाट, कोटला नौधसिंह, होशियारपुर का। हम उसे दोआबिया कहते थे, पर ज्यादातर टुंडी लाट ही पुकारा करते थे। उसकी कहानी भी तुम्हें किसी दिन सुनाऊंगा। हां, पंजाब के गदर-आंदोलन में सराभा अगुआओं में से एक था। उस जैसा दिलेर आदमी मैंने और कोई नहीं देखा। एक बार की बात है, हम सुरसिंह बाहर एक बाड़े में सोए हुए थे। आधी रात के वक्त करतार सिंह ने हमें आ जगाया। उस वक्त उसके साथ दो जवान और थे—एक मुसलमान और एक पहाड़ी राजपूत। शेरों की जेबों में बम थे और हाथों में पिस्तौलें थीं। हथियार को तो वह किसी भी वक्त अपने से अलग रखता ही नहीं था। नत्था सिंह मजहबी ने पूछा—सुनाओ, सराभा साहिब, कुछ खाने-पीने की इच्छा है ? आगे से सराभा की जगंह अमर सिंह राजपूत ने जवाब दिया—भई, इस वक्त कुछ है तो ले आओ। सराभा साहब ने तो सुबह से कुछ भी खाया-पिया नहीं है। पास खड़े मुसलमान ने कहा—सुबह से क्यों, इन्होंने कल रात भी कुछ नहीं खाया। न फुरसत मिली, न रोटी खाई। इस तरह का था वह जिद्दी इन्सान। लोहे की लट्ठ था वह सूरमा। काम में दौड़-भाग करते चार-चार जून उसे खाने-पीने की सुध भी नहीं रहती थी। नत्था सिंह मजहबी अपनी चादर में लपेटकर रखी हुई दो रोटियां निकालकर लाया। बिना दाल-अचार

* नीली आंखोंवालों (अंग्रेजों)।

वो शेर पानी के घूंटों के साथ उन्हें खा गए।"

"मजहबी के हाथों की रोटियां !" मिलखा सिंह ने बड़ी हैरानी से पूछा। उसकी समझ से यह विलक्षण कारनामा था।

"अरे ! मजहबी क्या इन्सान नहीं होते !" बाबा अकाली को गुस्सा आ गया। "यह क्या है—यह मजहबी है, यह चमार है, यह मुसलमान है ! हम इनके हाथों का नहीं खाएंगे 'क्योंकि हम ठहरे जाट सरदार, खत्री, महाजन, ब्रह्मा की औलाद पंडित! इनके हाथों का खाने से हम भ्रष्ट हो जाएंगे...भाइयों के हाथों का पानी नहीं पिएंगे और बेगानों के जूते खाए जाएंगे। यह है हमारी अकल ! ये मजहबी, ये मुसलमान, हमारे देश में जनमे-पले, हमारे भाई, हमारा लहू और मांस—इनके हाथ का पानी नहीं पिएंगे ! और साहब बहादुर—सात हजार मील से आए हुए—उनके तलुवे और जूते चाटे जाएंगे ! हम गुलाम किस वजह से हैं ? इसी करतूत की वजह से। जब तक यह हिंदू-मुसलमान और ऊंच-नीच का भेदभाव नहीं मिटता, हम आजाद नहीं हो सकते। समझे ? हम हिंदू, मुसलमान, सिख, मजहबी, सब इकट्ठे खा-पी लेते थे। हमारा किसी का कुछ नहीं बिगड़ता था—हां...।"

"अच्छा, वह मुसलमान कौन था ?" सज्जन सिंह ने कहानी को आगे बढ़ाने के इरादे से बाबा अकाली को भूली हुई बात याद करा दी।

"वह मुसलमान ?" बाबा अकाली ने टूटे हुए सूत्र को फिर पकड़ लिया। "वह वजीद के का रहमत अली शाह था। वह मनीला से आया था, जैसे करतार सूंह सराभा अमरीका से आया था। उसी की बात बताने जा रहा था मैं तुम्हें। जगत सूंह, परम सूंह और हम सब—मिल-मिलाकर कोई पंद्रह आदमी हो गए थे—उसी वक्त चल पड़े। अगले दिन हमें फिरोजपुर छावनी में इकट्ठे होना था। हम फिरोजपुर के पास जलालाबादवाली सड़क पर जा इकट्ठे हुए। उस दिन हमें फिरोजपुर छावनी और लाहौर छावनी मियां मीर पर एक साथ हमला करना था। वह तारीख मेरे सीने पर लिखी हुई है। ऐसा लगता है, जैसे अभी कल की बात हो—अंगरेजों के ग्यारहवें महीने की छब्बीस तारीख थी। देश की बदकिस्मती कि उस रात कुछ गड़बड़ हो जाने से कहीं भी हमला नहीं हो सका। जवानों की हुई मालिशें ऐसे ही रह गईं। अगले दिन मुंह-अंधेरे ही हम अपनी-अपनी राह चल दिए। हम कुछ लोग गांवों के रास्ते सीधे चल पड़े। करतार सिंह सराभा कुछ आदमियों को लेकर लुधियाना जानेवाली गाड़ी पर चढ़ गया। कुछ लोग मोगा के लिए तांगों में सवार हो गए। फेरू शहर और मिसरीवाले की संध में सोकड़* नहर का ऊंचा-सा पुल है...।"

"सोकड़ नहर ?" दीपे ने हैरानी से पूछा। 'सोकड़' और 'नहर' दोनों शब्द उसे अनमेल-से महसूस हुए।

"हां ! बारिश-वारिश में मुदकीवाली नहर में पानी ज्यादा हो जाए, तो महकमेवाले

---

* सूखी हुई।

उसे फेरू शहर वाली नहर में छोड़ देते हैं। वह वलूर के पास से गुजरती हुई नदी में जा गिरती है। समझे ? कभी बढ़ा-घटा पानी ही उसमें आता है। नहीं तो वह बारह महीने सूखी ही रहती है। इसीलिए लोग उसे सोकड़ नहर कहते हैं। फेरू शहरवाले उस पुल पर उस दिन पुलिस कप्तान को आना था। उसके स्वागत के लिए इलाके की पुलिस, ज़ैलदार, लंबरदार और सरकार को माई-बाप कहनेवाले लोग इकट्ठा थे। तांगोंवाले पुल पर पहुंचे तो पुलिस ने उन्हें घेर लिया। उन गदर पार्टीवालों का अगुआ था वही रहमत अली शाह। पुलिस ने सारी सवारियों को तांगों से उतारकर बिठा लिया। रहमत अली शाह ने इस धक्केशाही का कारण पूछा, तो ज़ैलदार ज्वाला सूंह और थानेदार बशारत अली कुछ ज्यादा ही ताव खाने लगे। इस गोराशाही पुलिस का स्वभाव तो तुम लोग जानते ही हो। अपना रोब जताने के लिए थानेदार ने रहमत अली को थप्पड़ जमा दिया। अब गदरवाले भला इतनी बेइज्जती कैसे बरदाश्त कर लेते ! वो तो हर वक्त हथेली पर जान लिए घूमते थे। कच्चरभन्नवाला भगत सूंह पास ही खड़ा था। शेर ने निकाली पिस्तौल और गोली थानेदार की कनपटी के आरपार कर दी। थानेदार का बड़ा हिमायती था ज़ैलदार ज्वाला सूंह। दूसरी गोली भगत सूंह ने उसके सीने में जड़ दी !'

"सदके जवानों के !' एक साथ दो-तीन आवाज़ें आईं। सभी श्रोताओं के चेहरे तपकर लाल हो गए। कई ऐसा अनुभव कर रहे थे मानो वे गोली मारनेवाले न भी हों, तो भी उनके साथी जरूर थे।

"देखते ही देखते थानेदार और ज़ैलदार, दोनों ठंडे हो गए," बाबा अकाली कहता गया। "दोनों के गिरने से बाकी सभी लोग डर के मारे भाग गए। गदर पार्टी के कुछ आदमी भी उन लोगों में मिलकर खिसक गए।"

"जैसे चोर भीड़ के साथ मिलकर खुद भी चोर-चोर चिल्लाने लगता है !' पास बैठे गिलखा सिंह ने मिसाल-सी देते हुए जोड़ दिया।

"चोर !' बाबा अकाली ने लाल-लाल आंखों से मिलखा सिंह की तरफ देखा।" उन सूरमाओं को चोर कहते हुए तुम्हें शरम नहीं आती ! वो थे असली कौमी परवाने, सच्चे देशभक्त, जो कौम की आजादी के लिए लड़ते फिर रहे थे। हां... !' बाबा अकाली ने बड़े रुआब से कहा।

उसकी बात पर सबने हौले-हौले सिर हिलाया, जैसे वे सब बाबा से सहमत हों।

"हमारे कुछ आदमी तो इस तरह बचकर निकल गए, लेकिन नौ आदमी नहर के किनारे खड़े बीहड़ में घुस गए। पुलिस के बचे हुए लोगों ने लोगों को ललकारकर और घुड़कियां देकर फिर इकट्ठा कर लिया। उन्होंने बीहड़ को घेरकर गोलियां बरसाना शुरू कर दिया। आगे से गदरियों ने भी गोलियों का जवाब गोलियों से दिया। मगर पक्की राइफलों के सामने पिस्तौलों की क्या चल सकती थी ? गदरियों के पास तो कुछ पिस्तौलें ही थीं। उनकी गोलियां भी खतम हो गईं। सूरमा निहत्थे हो गए। ऊपर से पुलिस ने बीहड़ को आग लगा दी। इस जंग में हमारे दो योद्धा—ध्यान सिंह बंगसीपुरा और चंदा सिंह

वड़ाइच—शहीद हो गए। बाकी के सात—पंडित काशी राम मड़ौली (अंबाला), जो पार्टी के खजांची थे, जीवन सिंह दौलासिंह वाला (संगरूर), रहमत अली वजीद (पटियाला), बख्शीश सिंह खानपुर, लाल सिंह साहिबाना, जगत सिह बिंझल (लुधियाना) और ध्यान सिंह उमरपुरिया (अमृतसर)—पकड़े गए।"

"सुबहान अल्ला !बाबा अकाली की याददाश्त कितनी तेज है !' गहने लुहार ने हैरानी भरी श्रद्धा से सिर हिलाते हुए कहा।

"ओ गहने मियां, उन शहीदों की याद कभी भूल सकती है ? मेरे पास एक-एक का नाम-पता लिखा रखा है। पांच बरसों तक जेल में हम उन्हीं का नाम जपते रहे हैं—और बाहर आकर भी भूले नहीं। ख़ैर...फिरोजपुर सेशन जज की अदालत में मुकदमा चला और उन सातों को फांसी दे दी गई और वो शहीद हो गए। गोली मारनेवाला भगत सिंह कच्चरभन्न (फिरोजपुर) और सुरजन सिंह फतेहगढ़िया (होशियारपुर) बाद में पकड़े गए और उन्हें भी फांसी दी गई और वो भी शहीद हो गए। कुछ आदमियों को तीन-तीन, पांच-पांच बरसों की कैद भी हुई, हमारे भाइयों की गवाहियों के कारण।"

"हत् टोडियो ! तुम्हारा बेड़ा डूबे !' धरम सिंह ने जैसे आह का नारा लगाया।

"इस वाकया के बाद सरकार और भी पक्की हो गई। हमारे अगुओं का काम बहुत कठिन हो गया। सराभा के कुछ साथियों ने सलाह की कि आगे से बंगाल के युग-परिवर्तनकारी दल के साथ मिलकर काम किया जाए। उन्होंने बंगाली लीडर रासबिहारी बोस को लिवा लाने के लिए आदमी भेजे। बोस ने खोज-खबर लेने के लिए पहले अपने एक साथी शचींद्र नाथ सान्याल को पंजाब भेजा। वह भी बड़ा दिलेर और सयाना आदमी था। उसने हमें हमारी खामियों की जानकारी दी और हम सबने मिलकर बहुत सारी कमियां दूर कर लीं। हमने अमृतसर में पार्टी का पक्का और बड़ा अड्डा बना लिया। वहां से सभी साथियों को संदेसे और हुक्म भेजे जाते थे। बाद में बड़ा अड्डा या केंद्र लाहौर में बनाया गया। हमारे मुख्य काम थे—गांवों के दिलेर लोगों को पार्टी में भरती करना, हथियार जमा करना और फौजी लोगों के बीच घूम-फिरकर सैनिकों और देसी अफसरों को समझा-बुझाकर गदर के लिए तैयार करना। इन कामों में हम किसी हद तक सफल भी हो गए। लाहौर में उन दिनों तेईस नंबर रसाला था और फिरोजपुर में छब्बीस नंबर पलटन। दोनों जगह ज्यादातर जवान पंजाबी थे। प्रोग्राम यह था कि हमारे साथ मिलकर ये दोनों फौजें गदर कर देंगी। दोनों जगहों की गोरी फौज को—जो गिनती में बहुत कम थी—हम मार भगाएंगे और हथियार लूटकर बाकी छावनियों की तरफ बढ़ेंगे। कुछ और छावनियों में भी हमारा टांका भिड़ चुका था, जैसे पेशावर, रावलपिंडी, अंबाला, मेरठ, झांसी आदि। उन लोगों का हमारे साथ वायदा था कि पहल हम करें, तो समय आने पर वे हमारे साथ मिल जाएंगे। इस तरह अपनी तरफ से हमने पूरी तैयारी कर ली। सन् पंद्रह के पहले महीने—25 जनवरी को—रासबिहारी बोस भी आ गए। कुछ दिन तो वे अमृतसर में रहे। फिर लाहौर में पक्का डेरा डाल लिया। वह सरकार के भगोड़े थे। कोई दो साल पहले दिल्ली में वायसराय—

लार्ड हार्डिंग—पर बम फेंका गया था न—24 दिसंबर 1912 के दिन—उस केस में रासबिहारी भी शामिल थे। सरकार उस शेर को सारी उमर नहीं पकड़ सकी।

"पार्टी ने लाहौर में तीन-चार मकान ले रखे थे। दिन में वो किसी एक मकान में होते, तो रात को किसी और में। लोगों से किसी और मकान में मिलते और फिर आराम किसी और मकान में जाकर करते। किराये पर मकान लेने की भी बड़ी अनोखी कहानी है। एक लाला रामसरन दास, कपूरथला के। उनकी घरवाली सत्यावतीजी प्रातःस्मरणीय थीं। वो दोनों ही मकान तलाश कर दिया करते थे। छड़े-छांट बंदों को तो मोहल्ले में कोई मकान देता नहीं था। सो बहन सत्यावती हरेक के साथ अपना कोई न कोई रिश्ता बता दिया करती थी। कहती : यह मेरा चचेरा भाई है। मेरी भाभी के बच्चा होनेवाला है। उसे तो महीना-चालीस दिन मायके में रहना पड़ेगा। मैं ही दूसरे-चौथे दिन इसका पता लेने आती रहूंगी। इसी तरह वह किसी की भाभी, किसी की साली और किसी की चाची या मामी-मौसी बन जाती थी।

"एक और थी—माई गुलाब कौर। वह तो मरदों से भी ज्यादा दिलेर थी। अमरीका में गदर पार्टी तैयार हुई, तो वो पति-पत्नी भी पार्टी में शामिल हो गए। उन्होंने स्वदेश लौट रहे गदरियों में अपने नाम लिखवा दिए। उसका पति वक्त आने पर कमजोर पड़ गया, मगर वह शेरनी अकेली ही बाकी साथियों के साथ जहाज पर चढ़ आई। देश आकर वह आठों पहर पार्टी के काम में जुटी रहने लगी। उसका घर-घाट, उसके रिश्तेदार-संबंधी, सब कुछ गदर पार्टी में ही थे। वह लीडरों की चिट्ठियां और संदेसे एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाया करती थी। कई बार वह हथियार और गोलियां भी छुपाकर ले जाती थी। उमर में तो वह अभी जवान ही थी, मगर पार्टी में सभी उसे माई गुलाब कौर ही कहा करते थे और वह लोगों को पतियाने के बदले किसी की भाभी, किसी की बहन, किसी की चाची-ताई बन जाया करती थी। जरूरत पड़ने पर वह अपने-आपको किसी की घरवाली जाहिर करने में भी नहीं झिझकती थी।

"एक बार वह मदन सिंह गागेवाले की दुकान पर बैठी किसी को करतार सिंह सराभा का संदेसा दे रही थी। मदन सिंह की दुकान लाहौर के मियां मीर बाजार में हुआ करती थीं। दुकान तो यों ही बहाना थी—असल में तो वह संदेस देने और खबर-पता रखने का पार्टी का अड्डा थी। माई गुलाब कौर शायद प्रेमसिंह सुरसिंधिये को संदेसा दे रही थी। सी. आई. डी. का एक सफेद वस्त्रधारी आदमी उसके पीछे लग गया। वह भी ताड़ गई। वह तो बस प्रेमसिंह पर टूट पड़ी। कहने लगी—अरे, तू तो बड़ा मरद बनता था ! अगर तू कमाकर खिलाने लायक नहीं था, तो सौ-जुड़ी में मेरे साथ भांवरें क्यों डालीं थीं ? तेरी शराब ने मेरी तो जड़ें खोद डालीं ! मेरे मां-बाप का दिया तो बेचकर खा गया !...मदन सिंह और प्रेम सिंह भी बात को ताड़ गए। प्रेम सिंह भी बस आगे से ढीठ शराबियों की तरह झगड़ने लगा। पास बैठे मदन सिंह ने बड़ी मुश्किल से उनकी सुलह कराई। पुलिसिया इस नाटक को सच समझकर वहां से खिसक लिया, तो वे तीनों फिर अपने काम की बातों

में मसरूफ हो गए। वह माई गुलाब कौर बन गई और वह भाई प्रेम सिंह।...

"हूं ! अच्छा पत्ता खेला उन्होंने," दीपे के पूरे चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई।

"मुख्तसर बात—गदर की पूरी तैयारी हो गई। फरवरी की इक्कीस तारीख भी तय कर ली गई। काम पूरा हो जाता, तो मजा आ जाता। ढूंढ़ने पर भी गोरे सारे हिंदुस्तान में कहीं नजर न आते। आज हम आजाद होते।"

"ओह !सज्जन सिंह ने अफसोस में सिर हिलाते हुए कहा। "मगर काम बिगड़ कैसे गया ?'

"हमारी गलतियों की वजह से। जानते हो, आदमी में कई कमजोरियां भी होती हैं। एक बार पार्टी को पैसों का सख्त टोटा पड़ गया। और कोई चारा न रहा, तो पार्टी ने डाके डालने का प्रोग्राम बनाया—किसी बुरी भावना से नहीं, पार्टी की जरूरत को पूरा करने के लिए। कुछ डाके डाले भी। दो फरवरी 1915 का चब्बेवाला डाका पार्टी को बहुत महंगा पड़ा। डाके में हमारा साथी काला सूंह लुहार पकड़ा गया। पुलिस की मार वह बरदाश्त नहीं कर पाया और उसने पार्टी का सारा प्रोग्राम बता दिया। कुछ लोगों के उसने नाम-पते भी बताए, जिनके बारे में वह जानता था। बस, सरकार खबरदार हो गई। काला सूंह को गदर की तारीख का पता नहीं था। सो, सरकार को भी इस बात का पता नहीं चला।

"पुलिस ने गदर की तारीख जानने के लिए सारा जोर लगा दिया। अंत में वह कामयाब हो गई। अमृतसर का डिप्टी पुलिसिया था। उसने मादोके बराड़, अमृतसर के जैलदार बेला सिंह को बुलाकर कहा कि वह गदर पार्टी में अपना कोई जासूस भेजे। जैलदार ने अपने गांव के किरपाल सूंह को जमीन का लालच देकर फुसला लिया। किरपाल सूंह शंघाई से गुदरियों के साथ ही जहाज में आया था। इसलिए हमारे आदमियों ने उस पर विश्वास कर लिया। वह सरकार का जासूस बनकर हमारी पार्टी में दाखिल हो गया। उसने सरकार को बता दिया कि इक्कीस तारीख को आधी रात के वक्त छावनियों में गदर शुरू होगा।

"हत् ! तेरा कुछ न रहे, रे दुष्ट !' एक साथ तीन-चार आवाजें आईं। जिन्होंने जबान से शब्द नहीं निकाले, उन्होंने मन-ही-मन किरपाल सिंह को बुरा भला कहा। उस देशद्रोही के लिए हर एक के अंदर अथाह घृणा थी।

"हमें पता लगा, तो हमने तारीख इक्कीस की जगह उन्नीस रख दी।"

"अच्छा !' श्रोताओं का उत्साह फिर लौट आया। वे अंगरेजों के खिलाफ बहुत कुछ हुआ सुनना चाहते थे।

"मगर अफसोस !भाग्य ने हमारा साथ नहीं दिया। किरपाल सूंह को नई तारीख का भी पता चल गया और उसने झटपट हाकिमों तक खबर पहुंचा दी," बाबा अकाली ने निराशा में सिर धुनते हुए कहा। उसके स्वर में भी उदासी आ गई थी।

"तुम लोगों ने उस कुत्ते को ठिकाने न लगाया ?"

श्रोताओं के मन में उतावली मची हुई थी। वे जल्द-से-जल्द किरपाल सिंह की मौत के बारे में सुनना चाहते थे।

"हमारी सलाह तो कांटे को उस वक्त निकाल देने की थी, मगर रासबिहारी बोस के कहने पर हम कुछ समय के लिए चुपचाप सह गए। बाद में किरपाल को मुल्तान में जमीन मिली। वह डर के मारे गांव छोड़कर मुल्तान में ही जा बसा। हमारे कुछ साथी वहां भी जा पहुंचे। शेरों ने कौमी-गद्दार को वहां जा घेरा।" बाबा अकाली ने चारों ओर झांककर सबके चेहरों पर नजर डाली।

"यह हुई न बात ! खा ले जमीनों की कमाई !" दीपे ने सबके दिल की बात कह दी।

"19 फरवरी (1915) को सुबह जगत सिंह सुरसिंघिया अपना जत्था लेकर लाहौर छावनी के पास पहुंचा, तो उनके जाने से पहले ही खेल बिगड़ चुका था। किरपाल सूंह से भेद मिलने पर सरकार ने सारा प्रबंध कर लिया था। पंजाबी सिपाहियों और अफसरों के हथियार छीनकर उन्हें लाइन में खड़ा कर लिया था। उनके सिर पर बंदर-मुंह गोरे सिपाही राइफलें ताने खड़े थे। देखकर गदरियों का दिल टूट गया और वो उसी वक्त अलग-अलग होकर खिसक गए।"

"ओह-हो !"

श्रोताओं को ऐसा लग रहा था जैसे वे खुद सारा यत्न करने के बाद हार गए हों।

"करतार सिंह सराभा जत्था लेकर फिरोजपुर गया था। उसकी सेवा वहां लगी हुई थी। भाई रणधीर सिंह का जत्था भी उसके साथ था। राजनीति है न ! उन्होंने ढोलक-झांझ और बाजे भी साथ उठा रखे थे। वो चांदमारी मैदान में पहुंचे तो उन्हें गश्ती गारद ने घेर लिया। जत्थेवालों ने अपने साज दिखाकर बताया कि वो तो किसी प्रेमी के घर कीर्तन करने जा रहे हैं। इस तरह वो वहां से बच निकले।"

"वाह ! कहते हैं न दाअ दाता ते वंझ वरियाम !" गहने लुहार ने प्रशंसा में सिर हिलाते हुए कहा।

"जत्थे के साथ किरपा सिंह सिपाही भी था, जिसे फौज से निकाला जा चुका था। उसे पता लेने के लिए बैरकों में भेजा गया। उस बेचारे को वहीं गिरफ्तार कर लिया गया। असल में वो लोग, जो फौज में हमारी पार्टी के पक्के साथी थे, एक दिन पहले ही पकड़ लिए गए थे। बाकी सारी पलटन के हथियार भी छीन लिए गए थे।

"पूरी रात वहां भटकते रहकर सब लोग अपनी-अपनी जगह लौट गए। सबके दिल टूट गए थे। लाहौर की खबर लेने के लिए करतार सिंह सराभा और एक और साथी लाहौर जा पहुंचे। वहां भी सारा खेल खतम हो चुका था। सराभा रासबिहारी बोस के अड्डे पर पहुंचा। वह भी बहुत उदास बैठे हुए थे। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा, लेकिन कुछ कहने-सुनने की हिम्मत किसी में भी नहीं थी। कहते भी क्या ? कहने को रहा ही कुछ नहीं था। सारे किए-कराए पर पानी फिर गया था। कहां वो अमरीका से चले थे। यहां आकर हथेली पर सिर रखकर उन्होंने रात-दिन एक कर दिया था—और एक चांडाल ने बेड़ा गर्क कर दिया।"

"ठीक ही कहते हैं—घर का भेदी लंका ढाए। जा रे, खुदा के धकियाए हुए !' गहने लुहार के धुर अंदर से बद्दुआ निकली।

"बीस तारीख को सुबह से ही गिरफ्तारियां शुरू हो गईं। अर्जन सूंह और कुछ दूसरे आदमी लाहौर में पकड़े गए। रासबिहारी बोस के भी पकड़े जाने का डर था। अब उन्हें लाहौर से निकाले कौन ? यह काम करतार सिंह सराभा ने अपने ज़िम्मे लिया। बीस की आधी रात को वो अपने अड्डे से निकल पड़े। दोनों ने खुली बांहोंवाले कुरते पहन रखे थे और नीचे लट्ठे की जमीन छूनेवाली चादरें। करतार सिंह के सिर पर गंवइयों जैसी सीधी-सादी पगड़ी थी, लेकिन रासबिहारी सिर से नंगे। पंजाबी पहनावे में वह मोटा-ताजा बंगाली लीडर किसी पहलवान-जैसा लगता था। रातोंरात उन्हें बनारस की गाड़ी में चढ़ाकर करतार सिंह फिर अड्डे में लौट आया।

"रासबिहारी राजी-खुशी बनारस पहुंच गए और वहां से वह जल्दी ही जापान चले गए।

"अगले दिन जगत सूंह सुरसिंघिया भी सराभा के पास लाहौर पहुंच गया। करतार सिंह सराभा, हरनाम सिंह टुंडी लाट और जगत सिंह सुरसिंघिया ने सलाह की कि अफगानिस्तान भाग चलें। वहां से पठानी फौज के साथ हिंदुस्तान पर हमला करने का उनका इरादा था। वो तीनों उसी रात लायलपुर के लिए निकल पड़े। वहां से किसी सरदार से—हां, हरचंद सिंह से—राहखर्च के लिए रुपए लेकर वे पेशावर के लिए चल पड़े। पेशावर से आगे काबलिए की हद पर वे मिचनी जा पहुंचे। दो-एक दिन वे तीनों आदमी वहां अगले प्रोग्राम के बारे में मशविरा करते रहे। कम भले ही तीनों में से कोई नहीं था, मगर करतार सिंह सराभा कुछ ज्यादा ही जोशीला था। एक दिन बैठे-बैठे वह बोला—क्यों भाई, टुंडी लाट ! अमरीका से तो हम अंगरेजों से लड़ने को निकले थे, और अब जान बचाने के लिए अफगानिस्तान भागे जा रहे हैं ! भई, हमसे तो यह गीदड़पन नहीं होगा। चलो, लौट चलें। कहीं हमारे सारे आदमी पकड़े-मारे न गए हों, नए सिरे से सबकी जत्थेबंदी करके उद्यम करें। और फिर मेरा तो उसूल है कि लड़ाई में हार भी जाओ तो परवाह नहीं, मगर हौसला मत हारो। दम लेकर फिर टकरा जाओ। कभी-न-कभी तुम्हारी हार जीत में बदल जाएगी। चलो, उठो।...सलाह पक्की हो गई और तीनों फिर पीछे की ओर लौट पड़े। रास्ते में जगत सूंह ने बताया कि सरगोधे के हलाके से हमें राइफलें मिल सकती हैं। चक्क नंबर पांच के पेन्शनी सिपाही राजिंदर सिंह ने उसे बंदूकें देने का वायदा कर रखा था। सो, वो तीनों पंज चक्क में आ पहुंचे। वहां का एक बड़ा आदमी, या यह कह लो, बड़ा चापलूस था रिसालदार गंडा सूंह गंडीविंडिया। राजिंदर सिंह ने उसके साथ बात कर डाली थी। रिसालदार जाकर पुलिस ले आया। इस तरह वो तीनों सूरमा—बीस फरवरी को— धोखे से पकड़े गए।"

"पुलिस से टकराव होने पर आगे से उन्होंने कुछ न किया ?" सज्जन सिंह ने सवाल किया। उसके अंदर यह सुनने की आकांक्षा थी कि मुकाबले में उन्होंने भी पांच-सात पुलिसियों

को मारा होगा।

"रिसालदार ने उन्हें विश्वास में लेकर उनके हथियार पहले ही एक तरफ धरघा दिए थे। वो निहत्थे थे। मुकाबला कैसे करते ? तीनों सीना तानकर खड़े हो गए। सूरमाओं के चेहरे पर उदासी का नाम तक नहीं था। हम तो लाहौर जेल में इकट्ठे रहे हैं न। चिंता या अफसोस तो उन शेरों के आसपास भी कभी नहीं फटके। हर वक्त गदर की गूंज... या गुरुबानी के शबद पढ़ते रहते थे। मैं पांच-दस दिन बाद कसूर में पकड़ा गया था। इसी तरह किसी को कहीं से, किसी और को कहीं और से पकड़कर लाहौर की बड़ी जेल में इकट्ठा कर दिया गया था। तुम्हें कहीं जेल की बातें सुनाने लगूं तो दिन तो छोड़ो, रात भी यहीं निकल जाए। खैर, किसी और दिन सही।

"कोई पांच महीनों तक मुकदमा चलता रहा। जज जेल के अंदर ही कचहरी लगाकर मुकदमा सुनते थे। जो आदमी डरके मारे वायदा-माफ गवाह बन गए, उनकी बात छोड़ो, बाकी सब सूरमाओं की तरह अटल रहे। करतार सिंह सराभा ने जजों के सामने बयान देते हुए सारे जुर्म अपने सिर पर ले लिए। फिर जजों ने पूछा कि तुम्हारे साथी कौन-कौन हैं ? उनके नाम बताओ। इस पर शेर ने बड़ा खूबसूरत जवाब दिया। बोला—सारे हिंदुस्तानी मेरे साथ हैं। सभी हिंदू, सिख, मुसलमान गदर पार्टी के मेंबर हैं, जितने जी में आएं, पकड़ लो। आखिर, 13 सितंबर 1915 को मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। सराभा समेत चौबीस सूरमाओं को फांसी का हुक्म हुआ। इससे कुछ ज्यादा लोगों को उमर कैद सुनाई गई। मेरा नाम उनमें था। कुछ लोगों को कम सजाएं भी हुईं।... यह सिर्फ एक मुकदमे की गिनती है। बाकी, और भी कई मुकदमे चले थे, और सबमें कई-एक को फांसी और अनेक को उमर कैद हुई थी।

"ज्यों-ज्यों फांसी लगने का दिन नजदीक आता जाता था, सूरमाओं के चेहरे तपकर लाल होते जाते थे। सराभा हर वक्त कोई-न-कोई जोशीली कविता पढ़ता रहता था और बातें करते वक्त वह सदा एक ही बात कहता था--यार, ये जल्दी से फांसी लगाएं, तो अगले बरस जन्म लेकर हम फिर अंगरेजों के साथ लड़नेवाले बनें !...आखिर वह दिन आ गया। यह कौन-सा साल चल रहा है ? अंगरेजों का सन् चौंतीस है न ? और सराभे हुरीं शहीद हुए थे सन् पंद्रह में—(16 नवंबर, 1915)। मगर जितनी देर दुनिया रहेगी, ये जवां मर्द जिंदा रहेंगे।"

"वाह ! जिसका नाम बचा हो, वह सदा ही जिंदा है," गहने लुहार ने श्रद्धा से सिर झुकाते हुए कहा।

"उन सबको फांसी दे दी गई ?" सज्जन सिंह ने पूछा।

"नहीं ! सराभा समेत सात आदमियों को फांसी दी गई। बाकी सत्रह की सजा वाइसराय ने फांसी की जगह उमर कैद कर दी। कुछ उमरकैदियों की सजा भी घटा दी थी। बाद में, सन् बीस में, एक सरकारी ऐलान के जरिए बहुत-से कैदी रिहा भी कर दिए गए। उनके साथ मैं भी मिंटगुमरी जेल से रिहा हुआ।"

"वाह, बाबा अकालिया ! सूरमाओं की बात सुनाकर दिल खुश कर दिया !.. कहीं हम भी उनके साथ होते !' दीपे ने अंगड़ाई लेते हुए कहा।

"ओए, अब भी क्या बिगड़ा है ! राग खतम हो गया है या तार टूट गया है ? अभी अंगरेज कौन-सा निकल गया है। तुम तैयार रहो। देखो, समय फिर आया खड़ा है !' बाबा अकाली ने आनेवाले दिनों के लिए तैयार रहने की प्रेरणा दी।

"आने दे समय। अब पीछे कोई नहीं हटेगा !' सज्जन सिंह ने भी शरीर झाड़ते हुए कहा।

"अच्छा, बाबा अकाली, तू भी कभी डाके मारने के लिए उनके साथ गया था ?" महंदे कुम्हार ने पूछा। "तू तो किसी का पत्ता तक नहीं छेड़ता !'

"ओए बुद्धू। हम डाके क्या अपने लिए डालते थे ? बल्कि हम तो पैसे-पैसे का हिसाब रखते थे। और हमारा प्रोग्राम था कि आजादी के बाद सबको सब कुछ लौटा दिया जाएगा।"

"और हमारी ताई... वह तुझे इस काम से रोकती नहीं थी ? हर वक्त जाने का जोखम ! हमारी बालियों ने तो पैरों में बेड़ियां डाल रखी हैं। यहां तक कि हिलने नहीं देतीं !' उमरदीन यह सवाल करने के लिए बहुत देर से सोच रहा था। उसे डर था कि उसकी हुसैना उसे कभी भी इस तरह के जोखिम-भरे रास्ते पर पांव भी नहीं धरने देगी।

"हम घर में आकर बताते थोड़े ही थे। अनजाने में ही कहीं बात निकल जाए तो... !'

"भई, बाबा अकाली ! एक बात बता। सुना है, तुम दोनों के बीच तो प्रेम भी बहुत था। भला माई खेम कौर कभी याद भी आती है या नहीं ?" दीपे ने जरा दबी जबान से पूछा। उसके जवान दिल में प्यार भरी शरारत उभर आई थी।

"याद ? वह तो कभी भूलती ही नहीं। वह बहुत बहादुर स्त्री थी। वह अपने धर्म के लिए शहीद हो गई। उस जैसी...।"

अचानक बाबा अकाली की निगाह सीधे दीपे के चेहरे की तरफ गई दीपा दबी-दबी हंसी हंस रहा था। बाबा अकाली उसकी दिल्लगी को ताड़ गया।

"अरे बदमाशो ! तुम बड़े खराब हो। तुमने मेरे दिल के जख्मों को छील दिया।" बाबा अकाली गुस्से से भड़ककर उठ गया। "तुमने मेरे जख्मों पर जमी पपड़ी को उधेड़ दिया। तुम सब—सबके सब—बदमाश हो। पहले मुझसे बातें सुनते हो, फिर कोई आग लगा देते हो। तुम सब शैतान इकट्ठे हुए बैठे हो। खेम कौर जैसी शहीद के लिए भी तुम्हारे मन में कोई आदर नहीं है। मैं अब तुमसे कभी बात नहीं करूंगा। तुम सब उचक्के हो। नाभि तक का घूंघट करनेवाली तुम्हारी औरतें तो खेम कौर के पांवों के बराबर भी नहीं है। हां—खेम कौर शहीद है शहीद। उसकी याद..उसकी याद...।" और उसकी याद में विहाल बाबा अकाली बड़बड़ाते हुए अपने घर जा घुसा।

"दीप सिंहा, भई, तूने अच्छा नहीं किया। बाबा अकाली का दिल दुखा दिया !' गहने लुहार ने अफसोस में सिर हिलाते हुए कहा।

"छोकरा ही है न अभी। कभी-कभी कोई बेमतलब बात कह डालता है। भला यह कोई वक्त था हंसी-ठट्ठा करने का !' पास बैठे सज्जन सिंह ने गहने की बात का समर्थन करते हुए कहा।

"अरे यार, ऐसे ही हंसी-हंसी में गलती हो गई। मुझे इस तरह की बात नहीं करनी चाहिए थी।" दीपे ने भी अपनी भूल स्वीकार करके सिर झुका लिया।

छह

रात आधी बीत चुकी थी, लेकिन बाबा अकाली के अंदर दीया जल रहा था। गरमी के मौसम में भी वह अंदर से सांकल लगाकर अपने कमरे में टहल रहा था। कच्चा कमरा—कमरा भी क्या, कोठरी—बिल्कुल काल-कोठरी जैसी थी। न उसमें कोई खिड़की थी, न रोशनदान। सिर्फ साढ़े तीन फुट चौड़ा एक दरवाजा था और उस वक्त वह भी बंद था। अंदर, सामने की दीवार के पास छह फुट ऊंचा और चार फुट चौड़ा लकड़ी का एक संदूक था, जिसमें सामने की तरफ छोटे-छोटे कांच लगे हुए थे। संदूक पर किया गया रंग-रोगन फीका पड़ चुका था, मगर उस पर धूल नहीं थी। रंग फीका पड़ चुका था बीस साल पुराना होने की वजह से, और धूल-मिट्टी इसलिए नहीं जमी थी, क्योंकि हर दूसरे-चौथे दिन प्यार भरा हाथ उसे झाड़ता रहता था। उसके पास ही एक रंगीन पलंग बिछा हुआ था। पलंग के पैताने सूत से बनी हुई एक दरम्याना आकार की चारपाई खड़ी थी। इसके अलावा टीन के दो ट्रंक, एक बड़ी पीढ़ी, दो-तीन घड़े, अनाज की एक बोरी, और रसोई के पांच-सात बर्तन पड़े थे। कमरा बारह फुट चौड़ा और बीस फुट लंबा था। इतने कम सामान के साथ वह भरा-भरा महसूस नहीं होता था।

पलंग के सफेद बिछौने पर दो जनाना सूट पड़े थे। वे ज्यादा पहने हुए नहीं थे, मगर पड़े-पड़े पुराने जरूर पड़ गए थे। उनके शोख रंग बताते थे कि वे किसी नई ब्याहता की उतरन थे। एक सूट पर हाथीदांत की टूटी हुई दो चूड़ियां भी पड़ी थीं। तेज-तेज कदमों से टहलता बाबा अकाली बीच-बीच में उन सूटों की तरफ भी झांक लेता था। उस समय उसकी आंखों में बड़ी अनोखी चमक आ जाती थी। वे दो सूट और टूटी हुई चूड़ियां उसकी जिंदगी की अमूल्य पूंजी थीं।

उसके अंदर अथाह हलचल मची हुई थी। दीपे ने बेमौका सवाल करके बाबा अकाली के जज्बात भड़का दिए थे। वह मन-ही-मन कह रहा था—सुन लिया, खेम कौर ? दीपा पूछ रहा था कि मुझे कभी तेरी याद भी आती है या नहीं। ओह-हो ! लोगों को हमारे प्यार पर भी शक हो रहा है। वे समझते हैं, मैं बूढ़ा हो गया हूं। सब मुझे बाबा अकाली कहकर बुलाते हैं। इसलिए, उनके ख़याल में मेरा प्यार भी बूढ़ा हो गया है। अब मेरे अंदर से

तेरी याद समाप्त हो चुकी होगी। वे क्या जानें, वे जान सकते भी नहीं कि इस सफेद दाढ़ीवाले और जेलों के मारे हुए शरीर में भी दिल है—और उस दिल में है तेरा जवान प्यार। तब तू मुश्किल से अठारह—या हद-से-हद उन्नीस साल की रही होगी और मैं पच्चीस-छब्बीस साल का। शादी के समय तो मैं तेरा चेहरा भी ठीक से नहीं देख सका था। तू लौट रही थी, तो जरा-सी तेरी चिबुक दिख गई थी। या फिर मछली[1] की निचली पत्तियां। फिर भी मैं तुझे जान गया था। 'गाना'[2] खेलते समय तेरे हाथों का हल्का-सा स्पर्श। उतने-से स्पर्श से ही मैंने तेरे दिल की धड़कन सुन ली थी। बिना देखे ही प्यार हो गया। जवान दिल में प्यार के लिए जगह खाली थी और उस जगह को तूने भर दिया। उस समय मुझे समाज के इस रिवाज से बड़ी खीज हुई थी, जिसने ब्याह के समय हमें एक-दूसरे के सामने भी नहीं आने दिया। ब्याह के समय तेरा चेहरा कैसा लगता था, यह जानने की चाहत-चाहत ही रह गई। तेरे अंदर भी यह कामना रही होगी। आखिर तीन महीनों के लंबे विछोह के बाद तेरा 'मुकलावा' हुआ—और रही कुल पांच दिन। वे पांच दिन स्वर्ग जैसे। पूरी-पूरी रात हम बातें करते हुए निकाल देते थे। उस तरह की बातें सभी करते हैं, मगर दूसरे को कोई नहीं बताता। वे बातें आज भी मेरे कानों में गूंजती रहती हैं। तेरी इन निशानियों की तरफ देखता हूं, तो इनमें से भी तेरी आवाज सुनाई देती है। ये दोनों चूड़ियां मुकलावे के वक्त ही मुझसे टूटी थीं। तूने आह भरकर कहा था—"यह क्या किया ? मेरा शगुन का चूड़ा। सवा साल से पहले ही चूड़ियां तोड़ दीं। बदशगुनी हो गई।..." तेरे लिए क्यों, मेरे लिए बदशगुनी हो गई। तू तो शहादत पा गई। पीछे मैं ही तेरी याद में झुलसने के लिए रह गया। हां... हां, तू शहीद है। कोई कुछ भी कहे, मैं तुझे शहीद ही मानता हूं। काश, मैं भी शहीद हो जाता। तब हम अब तक फिर मिल गए होते। अब तक हम अट्ठारह-उन्नीस साल के जवान होते। तेरी वही उमर होती—ब्याह के समय की। लेकिन मेरे भाग्य में शहीद होना नहीं लिखा था। तेरी तरह सराभा भी मुझे छोड़ गया। फिर भी तुम दोनों का कोई कसूर नहीं है। न ही मैं तुम दोनों में से किसी से नाराज हूं। तेरा साथ समाज ने छीन लिया और सराभा का सरकार ने। ओह ! सराभा ने मेरे अंदर एक नई लगन पैदा कर दी थी, नया इश्क जगा दिया था—आजादी का इश्क। मगर उससे मेरे दिल में तेरा प्यार कम नहीं हुआ था। दोनों प्यार अलग-अलग ढंग के थे। एक तरफ तेरा प्यार था, दूसरी तरफ देश का प्यार। तेरे साथ गुजारे हुए दो साल। अब भी कभी सोते हुए बांहियां सीने से जुड़ जाएं, तो मुझे ऐसा आभास होता है, जैसे मेरी बांहों में तू होती है—वही अट्ठारह-बीस साल की युवती खेमो। मैं बुड्ढा हो गया हूं, पर तू अब भी मुटियार है। मुझे तो बूढ़ा कर दिया है इन बाबा कहनेवालों ने। ये भी सच्चे हैं। पांच बरसों की कैद ने मुझे सचमुच बूढ़ा कर दिया था। बत्तीस-तैंतीस बरस की उमर में ही मेरी दाढ़ी और सिर के आधे बाल पक गए थे। और अब भी मेरी क्या उमर है ? मुश्किल से छयालीस-सैंतालीस साल ! और

---

1. नाक की मध्यवर्ती परत में पहना जानेवाला एक आभूषण।
2. नवदंपती के बीच होनेवाली एक रस्म।

मेरी दाढ़ी और सिर के सारे बाल सफेद हो गए हैं। देखनेवाला मुझे साठ साल से कम का नहीं समझता। शरीर झुककर खोखला हो गया है। शरीर भी क्या करता ! इसे कितने आंधी-तूफानों को झेलना पड़ा है ! अब तक मैं चार बार जेल काट चुका हूं और तीन बार सरकार से मार खा चुका हूं। दो बार तो पहली कैद के समय बेंत लगे थे। पहली बार सराभा के सामने तीस बेंत लगे थे। छोटी-सी बात पर जेलवालों के साथ झगड़ा हो गया था। असल में वे हमें दबाना चाहते थे और हम दबाव मानते नहीं थे। छोटी-छोटी बात पर हम भूख-हड़ताल कर देते थे। सात-आठ साल की कैद में मैंने कुल मिलाकर एक सौ सत्रह दिनों की भूख-हड़ताल की है। कैदियों के पास और चारा भी क्या होता है ? भूख-हड़ताल ही उनका सबसे बड़ा हथियार समझा जाता है। वैसे भूख-हड़ताल जैसा और कोई कष्ट भी नहीं है। अंतड़ियां काटनी पड़ती हैं, खून आने लगता है, खाने की चीजें देख-देखकर मन कलपता है। आदमी अपने-आपको कोसता है और उस वक्त को सोच कर पछताता है, जब वह रोष में आकर भूख-हड़ताल कर बैठा था। अंतर हमेशा यही चाहता रहता है कि दांव लगे, तो लोगों से आंख बचाकर कुछ-न-कुछ खा लूं। बस, एक जिद ही होती है, जिसके सहारे आदमी वक्त काट लेता है।...और खेम कौर ! मैंने सारे दुख बड़ी जिद और हिम्मत से झेले हैं। तूने एक बार पूछा था न—आप यह चुपचाप कहां खिसक जाया करते हैं ? इतनी-इतनी रातें आप कहां रहते हैं ? मेरा दिल डरता है, देखना कहीं...।-और मैंने तब हंसकर एक ही बात कही थी—घबरा मत, मेरी लाडो ! मैं कभी ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे तेरा सिर लोगों के सामने नीचा हो, या तुझे कोई उलाहना दे। और देख ले, मैंने तेरा सिर नीचा नहीं होने दिया है। मैंने सारे कष्ट सूरमाओं की तरह झेले हैं। तीस बेंत मारकर उन्होंने जब मुझे टिकटिकी से खोला था, तो मैं दाहिनी बांह उठाकर जयकारे लगाने लगा था। दरोगा ने ताना-सा देते हुए मुझसे पूछा—सुना, करम सिंहा, क्या हाल है ?—सुनकर मेरा खून खौल गया था। मैंने माथे पर त्यौरी डालकर और सीना फुलाकर उसी के जैसी बोली में जवाब दिया—ओए, गोरों के टुक्कड़खोर ! खालसा तैयार-बर-तैयार है। मुझे अभी फिर टिकटिकी से बांध दे और दस आदमी बेंत मारने पर लगा दे। मैं उतनी देर तक बेंत खाता रहूंगा, जब तक अंगरेज यहां से निकल नहीं जाते—मेरा यह उत्तर सुनकर सारे साथियों ने जयकारे लगाए थे और 'करम सूंह जिंदाबाद' के नारे लगाए थे। करतार सिंह सराभा ने मुझे छाती से लगाकर कहा था—करम सिंहा, मुझे तेरे जैसे साथियों पर बड़ा गर्व है।—सोहन सिंह भकना भी हमारे साथ जेल में था। अब तो उसे भी मेरी तरह सभी बाबा कहते हैं। वह मुझसे कुछ साल ही बड़ा है। वह हमारी गदर पार्टी का प्रधान था। उसने मेरा कंधा थपथपाते हुए कहा था—करम सिंहा, जिस आंदोलन में तेरे जैसे दृढ़ जवान हों, वह कभी नहीं मरता। बेशक हम अपने प्रोग्राम में सफल नहीं हुए। देखनेवालों को लगता है, हमारा आंदोलन फेल हो गया है। अंगरेजी सरकार ने हमें दबा लिया है और हमारे आजादी के संघर्ष को ख़तम कर दिया है, मगर याद रख, हमने आजादी की जो भावना लोगों में पैदा कर दी है, वह कभी मर नहीं पाएगी। हमने देशवासियों

को जगा दिया है— और जागी हुई जनता तब तक मोर्चे लेती रहेगी, जब तक अंगरेज यहां से चले नहीं जाते। नई लहरें और पार्टियां उठेंगी। उनके नाम और काम करने के ढंग भले ही अलग हों, मगर उनका लक्ष्य देश की आजादी ही होगा। हम फांसी चढ़ जाएंगे। अंगरेज हमें छोड़ेंगे नहीं, मगर हमारी शहादत देश को नया जीवन दे जाएगी।—उसकी ये बातें मुझे अभी तक याद हैं। और हमें यही यकीन भी था कि हम सबको फांसी दे दी जाएगी। मैं कई बार सराभा से कहता था—सराभा साहिब ! तुम हमारे जरनैल हो। मजा तब है अगर उस वक्त तुम सामने होओ, जब हमें फांसी लग रही हो। तब देखो, जवानों के हाथ कैसे हंस-हंसकर अपने हाथों गले में रस्सी डालते हैं।—वैसे सच्ची बात पूछती है, तो मेरा मन नहीं करता था फांसी चढ़ने को। मरना बड़ा मुश्किल होता है। आज मैं तेरे सामने दिल का भेद खोल रहा हूं।"

बाबा अकाली पलंग के पास खड़ा हो गया। टूटी हुई दोनों चूड़ियां उठाकर उसने छाती से लगा लीं। दो मिनट तक वह आंखें बंद किए खड़ा रहा। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह किसी जुर्म का इकबाल करने के लिए अपने आपको तैयार कर रहा हो। फिर उसने चूड़ियों को सूट पर पहले की तरह टिका दिया और दोबारा टहलने लगा। मगर अब उसकी चाल पहले की तुलना में सुस्त थी।

उसने एक बार फिर दिन में खेम कौर के साथ बातें शुरू कर दीं : 'जानती है, कमजोरी हर इन्सान में होती है। एक बार मेरा दिल भी डोल गया था। सच पूछो, तो तेरे प्यार ने ही मुझे डुला दिया था। तेरा विछोह सहन करना मेरे लिए मुश्किल हो गया था। कई दिनों तक मैं एक ही बात सोचता रहा कि मेरे बाद तेरा क्या होगा। साथ ही, कुछ कमजोर आदमी हममें से ही वायदा-माफ बन गए थे। उनका भी मेरे दिल पर असर पड़ा था। ऊपर से जेल के अफसर भी हमें हर वक्त भरमाते रहते थे। कई बड़े-बड़े लोग, सरदार बहादुर और रायबहादुर भी आ-आकर हमें समझाते—या कहो कि कुमार्ग पर डालते रहते थे—कि अंगरेजों जैसा इन्साफ पंसद राज किसी का नहीं है। हमें अंगरेजों से माफी मांगकर आइंदा सीधे रास्ते पर चल देना चाहिए। एक रात तड़के तीन बजे तक मैं सोचता रहा कि मुझे भी सरकार से माफी मांगकर बाहर चले जाना चाहिए। मैं...मैं ईश्वर के सामने भले ही झूठ बोल लूं, मगर तेरे सामने नहीं बोल सकता। सच मान, मेरा दिल डोल गया था। और फिर जानती है, मुझे बचाया किसने ? उसी ने, जिसने डुलाया था। डुलाया था, तेरे विछोह ने और बचा लिया तेरे विश्वास ने। प्रभात बेला में मेरी आंख लग गई। क्या देखता हूं कि तू मेरी तरफ पीठ किए रूठी बैठी है। मैं मिन्नतें कर-करके तुझसे तेरे रूठने का कारण पूछता हूं। अंत में मेरी तरफ चेहरा घुमाकर तू बड़े निहोरे से कहती है—तुम तो कहा करते थे, तुम ऐसा कोई काम नहीं करोगे, जिससे मेरा सिर नीचा हो ! अब बताओ, तुम्हारे माफी मांग लेने से मेरा सिर ऊंचा रह जाएगा ? सहेलियां मुझे क्या कहेंगी ? रिश्तेदारिनों के बीच मैं कौन-सा मुंह लेकर बैठा करूंगी ?—बस, उसी वक्त मेरी आंख खुल गई। मैं उठ कर बैठ गया। मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे तू कहीं मेरे निकट ही बैठी मेरी दुर्दशा

देख रही हो।...आह !कई दिनों तक मेरा मन बड़ा परेशान रहा। दिल करता था, मैं सराभे और भकने के गले लगकर जोर-जोर से रोऊं और उन्हें सब कुछ बता दूं। मगर मैं यह दिलेरी न दिखा सका। मैंने आज तक, किसी अक्षम्य अपराध की तरह, इस भेद को अपने अंदर छिपाए रखा है। आज तेरे सामने इकबाल करके मैंने जी हलका कर लिया है।...खैर, मैं संभल गया। तेरी एक ही फटकार ने मेरी ताकत लौटा दी। फिर मैं एक-एक करके फांसी के दिन गिनने लगा। और फिर जिस दिन जजों ने हुक्म सुनाया, मेरा दिल उदास हो गया। मेरा नाम फांसीवालों में नहीं था। मुझे उमर कैद की सजा मिली। साथ ही जायदाद-जब्ती का भी हुक्म हुआ। मगर मेरी कोई जायदाद थी ही कहां, जिसे सरकार जब्त कर लेती ? जमीन बापू के नाम थी—और उसने सरकार को बयान दे दिया कि मेरे साथ उनका कोई संबंध नहीं है। देखा तूने ? तब घर के लोग भी गदरियों के साथ कोई संबंध रखने को तैयार नहीं थे। सरकार से डरते थे—और क्या ? पांच साल में मैंने कई जेलें देखीं। कई बार मैंने भूख-हड़ताल की और मुलतान जेल में एक बार फिर पच्चीस बेंत खाए। कभी डंडा-बेड़ी, कभी कोठरी-बंद—ये तो आम बातें थीं न। असल में मेरा स्वभाव बिगड़ गया था। तेरी मौत ने मेरा दिल हिला दिया था। बीस साल कैद काटकर फिर मिलने की आस टूट गई थी। मैं उन दिनों अपने आपको आधा पागल मानता था। फिर तेरी मौत कुदरती होती, तब और बात थी। मैं हौसले से सह लेता। मगर इस तरह की मौत कैसे सही जा सकती थी ? मैं तब बाहर होता, तो शायद दो-चार कत्ल कर देता। लेकिन मैं बाहर होता, तो ऐसा होता ही क्यों ? आज मैं तेरे मां-बाप को भी ज्यादा दोष नहीं देता, मगर तब वे मुझे बहुत बुरे लगे थे—तेरे कातिल। जिस दिन जेल में मैंने खबर सुनी थी, मैं बयान नहीं कर सकता, मेरी क्या हालत हो गई थी। मेरा दिल करता था, मैं सारी दुनिया को फनाह कर दूं। बल्लांवालिए रामे ने बताया था। वह देसी शराब बनाने के जुर्म में छह महीनों की कैद पर आया था। उसने बताया, तेरे मां-बाप ने तुझे दूसरे घर में बिठा दिया था। वे बीस साल तक मेरा इंतजार करने को तैयार नहीं थे। आज सोचता हूं, उन दिनों शायद कोई मां-बाप भी इतना लंबा इंतजार करने को तैयार न होते। उन्हें मेरे जिंदा रहते जेल से बाहर आने की आस नहीं रह गई थी। जवान बेटी को सारी उम्र अपने दरवाजे पर बैठाए रखने को वे तैयार नहीं थे। रामे ने यह भी बताया कि तू मां-बाप को वास्ते दे रही थी। सारी उम्र अपने विश्वास में और मेरे इंतजार में काटने को तैयार थी। मगर तेरे संगदिल मां-बाप नहीं माने। तूने आत्महत्या करने की धमकी दी। तेरे मां-बाप ने धमकी को सच नहीं माना। तेरे साथ वे बहानेबाजी करते रहे, लेकिन अंदर-ही-अंदर उन्होंने दूसरी जगह बात पक्की कर ली। तुझे तब पता चला कि भूरोंवाला किशना तुझे लेने आ गया। तूने सारी रात रोते-पीटते काटी और तेरी मां और भाभी तेरे पास बैठी तुझे समझाती रहीं। असल में वे तेरी चौकीदारी करती रहीं। अगली सुबह तुझे रोती-बिलखती किशने के साथ भेज दिया गया। सुना है, विदाई के समय मां तुझे गले से लगाकर रोने लगी, तो तूने उसे झिड़क दिया था—अब जलती आग में तेल डालने लगी हो ? जल्दी ही वह वक्त

आएगा, जब तुम सब रोओगे।—और वह वक्त् सचमुच जल्दी ही आ गया। आठ दिन कूरी में रहकर तू वापस आई और मायके आने के बाद चौथे दिन ही कुएं में कूदकर तूने जान दे दी। तू शहीद हो गई। खेम कौरे !मेरे प्यार के बदले तू शहादत पा गई। इस जालिम समाज के सिर चढ़कर तू कुरबान हो गई। मेरी दुनिया उजड़ गई। फिर न जेल काटने का कोई मजा रह गया, न रिहा होकर घर लौटने की उत्कट इच्छा। मैं चाहता था, जेल के अंदर ही मेरी मुक्ति हो जाए। मगर ऐसा हुआ नहीं। यूरोप की लड़ाई को जीतने की खुशी में अंगरेजों ने बहुत सारे कैदी रिहा कर दिए—मार्च 1920 में। मैं भी मिंटगुमरी जेल से रिहा होकर घर आ गया। लेकिन मेरा घर कहां रह गया था ? वह तो उजड़ चुका था। हां, घर था उस वक्त छोटे भाई शरम सूंह का। तीन साल हो गए थे उसका ब्याह हुए। उनके घर में सालेक भर का बेटा भी था। मेरे आने से कोई छह महीने पहले बापू मर चुका था। शरम सूंह ही सारे घर का मालिक था। वह बुरा आदमी नहीं है, मगर उसकी घरवाली बसंत कौर बहुत खराब स्वभाव और छोटे दिल की मालकिन है। मैं उसे फूटी आंख न सुहाया। शायद मेरे फांसी लगने की या जेल में वैसे ही मर जाने की उसे अंगरेजों की नाईं ही खुशी होती। उसे घर में से मेरा हिस्सा बांटकर देना अंगरेजों के हिंदुस्तान छोड़ने से भी ज्यादा मुश्किल प्रतीत होता था। उसने बहुतेरा शोर मचाया, लेकिन मैंने ज्यादा झगड़ा करना उचित नहीं समझा। मैं झगड़ा करता भी किसके लिए ? बस, तेरी ये चार निशानियां और हिस्से से भी दो घुमाव कम जमीन लेकर मैं अलग हो गया। मगर मैंने वह कोठरा नहीं छोड़ा, जिसमें तेरे साथ जिंदगी के चार दिन मनाए थे। बसंत कौर अब भी दुखी थी। उसी साल उसने आंगन में दीवार बनवा ली। देख रही है न !अपनी तरफ कोई खिड़की तक उसने नहीं रखी है। घर अलग, चूल्हे अलग, दरवाजे अलग। इस सूने घर में मेरा जी नहीं लगा। जी लगता भी तो कैसे ? तू मुझे छोड़ कर जा चुकी थी। पीछे रह गया था देश, जिसे मैं। प्यार करता हूं। बस, देश की आजादी के लिए कोई भी आंदोलन छिड़ा तो मैंने उसमें आगे बढ़कर हिस्सा लिया। गुरु के बाग का मोर्चा लगा, तो मैं उधर चल पड़ा। पहली बार जत्थे में गया, बी. टी. के जवानों की लाठियां खाईं। असल में पंथ का हुक्म था शांत रहने का...इसीलिए हम चुपचाप मार खाए जाते थे, वरना उन जैसे तो दस सिपाही भी मेरे सामने नहीं टिक सकते थे। एक बार जोश में आकर मैंने दो सिपाहियों की लाठियां छीन लीं। बाकी तीन-चार डर के मारे वैसे ही भाग गए। मैंने हंसते हुए कहा—ओए बी. टी. !ये हैं तेरे सूरमा !हम पर शांत रहने का हुक्म लगा हुआ है, नहीं तो मैं सभी को देख लूं !ले, अब उनसे कह, अपनी इच्छा पूरी कर लें।...और मैं। लाठियां फेंककर पालथी लगाकर बैठ गया। फिर उन्होंने वो लाठियां बरसाईं कि मुझे कोई सुध नहीं रही कि कितनी लाठियां बरसीं। खैर, तब जान अभी तगड़ी थी। मैं जल्दी ही स्वस्थ हो गया और अगले महीने जत्थे के साथ चल पड़ा। मुझे दो साल की सजा हुई। मगर मोर्चा फतेह हो गया और मुझे छह महीने बाद ही रिहा कर दिया गया। फिर जैतो का मोर्चा लग गया, तो एक साल और काट आया। असल में...असल में...बार-बार जेल

जाने का कारण अंग्रेजों से घृणा और देश को आजाद कराने की लगन थी, घर की उदासी नहीं। जो लगन सराभा लगा गया था, वह मेरे अंदर मद्धिम नहीं हुई। एक साल महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह में भी काट आया हूं।...यह है मेरा जीवन। तेरी इन निशानियों के आसरे जी रहा हूं। या एक आस और है कि जिंदा रहते ही देश को आजाद हुआ देख चलें। खेम कौरे ! देश आजाद होके रहेगा। मैं वह दिन जरूर देखूंगा। मगर तू मेरे पास नहीं होगी। नहीं-नहीं, मैं ऐसा क्यों कहूं ? तू तो हर वक्त मेरे पास है। तू मेरे दिल में बसती है, जहां और कोई तुझे नहीं देख सकता। तू...तू...।''

बाबा अकाली की सारी रात इन्हीं विचारों में बीत गई।

सात

''ओ आ, धन्ने शाह ! आज सवेरे-सबेरे ही वरना से होकर लौट आया ?'' द्वार के सामने से गुजर रहे धन्ने शाह से सज्जन सिंह ने रस्मी तौर पर पूछ लिया।

''भाई, उस दिन से ऐसा डर गया हूं कि आज वक्त से चल पड़ा। सरदार लक्खा सिंह तो बड़ा जोर दे रहा था—भई, रोटी खाके जाना, पर मैंने हाथ जोड़कर छुट्टी ले ली। उस दिन की दोपहर अभी तक भूली नहीं है।'' उस दोपहर को याद करके धन्ने शाह को कंपकंपी आ गई।

''आ, फिर कोई जल-पानी की सेवा कर दें !'' सज्जन सिंह ने सिर्फ शिष्टाचार के नाते बात कही।

''सरदार सज्जन सिंह...।'' धन्ने शाह कुछ कहते-कहते पल भर के लिए रुक गया। अच्छा, चल भाई ! तेरे प्रेम को रोज-रोज नकारना नहीं चाहिए। कहीं यह न कहने लगना कि मैं लक्खा सिंह के साथ गाढ़ा याराना रखता हूं और तेरे साथ कोई दूसरी बात समझता हूं।''

धन्ने शाह सज्जन सिंह के पीछे-पीछे चल पड़ा। धन्ने शाह को जल-पान कराने का सज्जन सिंह का कोई इरादा नहीं था, न ही उनमें कोई आत्मीयता थी। उसने यों ही रस्मी तौर पर पूछ लिया था। इतनी बात तो कोई किसी अजनबी से भी कर डालता है। मगर इतने से ही कोई पीछे-पीछे तो चल नहीं पड़ता। सज्जन सिंह भी दिल में यही सोचता जा रहा था। यों ही जरा-सा कहने पर ही वह गंगा के पंडों की तरह पीछे लग गया। पता होता तो मैं इस लालची को बुलाता ही नहीं। घर ले जाकर पिलाऊंगा क्या ? बेबात बला गले डाल ली। अब मना भी नहीं किया जा सकता। खाली पेट घूरा ब्रांड न पिलाऊं? इसे भी पता चल जाए जाटों की सेवा का। ऐन धुत्त करके शहर को चलता करूं।

दोनों अलग-अलग ढंग से सोचते घर पहुंचे। आंगन में बिछी चारपाई पर बैठने का

इशारा करते हुए सज्जन सिंह ने पूछा, "सुना फिर शाह, क्या छकेगा ?"

"बस, खट्टी लस्सी का कटोरा ले आ नमक डालके।" धन्ने शाह जैसे अपनी तरफ से ज्यादा तकलीफ नहीं देना चाहता था।

"लस्सी तो, शाह, है नहीं," चौके में बैठी भजन कौर ने अनचाहे मेहमान की मांग के उत्तर में कहा। "भैंस को गए, सुख से, डेढ़ महीना हो गया है। बेचारे बच्चे भी लस्सी के घूंट को तरसते रहते हैं। शिकंजवी बना देती हूं।"

"सज्जन सिंह ! तूने मुझे क्यों न बताया, भाई ? भाड़ में जाए हमारी साहूकारी अगर सज्जनों-मित्रों के बच्चे लस्सी को तरसते रहें ! तूने मुझे बेगाना ही समझा न !" धन्ने शाह ने रोष भरे स्वर में निहोरे से कहा।

"ओ शाह ! यों ही तकलीफ देने का मन ही नहीं किया," सज्जन सिंह ने यों ही हुंकारा भरने के इरादे से कहा।

"अरे, तकलीफ कैसी ! अगर सज्जन-दोस्त ऐसे वक्त भी काम न आए, तो उसका अचार डालना है ? चल, अभी मेरे साथ चल और मंडी से देखकर भैंस ले आ," धन्ने शाह ने हुक्मी लहजे में कहा।

"नहीं, शाह ! बस, दो-ढाई महीनों की ही तो बात है, तब तक झोंटी ब्या जाएगी," सज्जन सिंह ने उस पहलन झोटी की तरफ देखते हुए कहा, जो छह महीने बाद ब्यानेवाली थी।

"ओ नहीं-नहीं कैसी ! उठ कर मेरे साथ चल तू ! जिनके लिए कमाते हैं, वो बच्चे ही तरसते रहें तो हमें जाते वक्त छाती पर क्या रखकर ले जाना है ?" शाह ने वह उपदेश दिया, जिस पर उसने अपने घर में कभी अमल नहीं किया था।

"शाह, भैंस तो ले आएं, पर तेरा ब्याज बहुत कड़ा है—वरना तकलीफ तो बहुत है। हमारा पप्पू सबेरे उठते ही दही के लिए रोने बैठ जाता है," पास से भजन कौर ने कहा। शाह की बातें सुनकर उसका मन भरम गया था। उधार की भैंस लेने के लिए वह तैयार हो गई थी, सिर्फ ज्यादा सूद से डरती थी।

"बीबी, तूने यह क्या बात कही। जा, तू धरम की बहन हुई। असाढ़ी तक एक पैसा ब्याज नहीं लूंगा। अब खुश है ? अनाज आने के समय पूरे का पूरा दे देना। और कई आसामियां हैं ब्याज देनेवाली ! एक भाई से न लिया तो धन्ने शाह नंगा तो हो नहीं जाएगा !" धन्ने शाह ने गर्व से छाती फुलाकर कहा, मानो वह ऐसा कारनामा कर रहा हो, जो आज तक किसी सूदखोर ने न किया हो।

"ये बातें तो बस तब तक की हैं, जब तक बही पर अंगूठा नहीं लगवा लेता। उसके बाद तो ब्याज पर भी ब्याज लगता रहेगा।" सज्जन सिंह ने साहूकारों के स्वभाव के बारे में हास्य के रंग में खरी-खरी कह दी।

"ओए सज्जन सिंहा ! यार, तूने धन्ने शाह को क्या समझ रखा है ? मर्द की जबान होती है। तुझसे एक बार कह तो दिया, असाढ़ी तक कोई ब्याज नहीं। हम लोग जबान

के पीछे सबकुछ उजाड़ देते हैं। और यह तो बच्चों को दूध पीना है—बच्चे तेरे क्या और हमारे क्या !' धन्ने शाह कुछ ज्यादा ही अपनत्व दिखा रहा था।

"वे बशके !' भजन कौर ने अंदर बैठे बेटे को आवाज दी। "जा रे, भागकर दुकान से नींबू ले आ—शिकंजी बनाएं।"

"नहीं, बहन ! काके के हाथ पानी का गिलास भेज दे। भैंस आएगी तो किसी दिन आकर दूध ही पी जाऊंगा। मेरे लिए कोई पराया घर है !'

"हां-हां ! खुरों की मार खाने को हम और दूध तू पी जाया करना आके !' सज्जन सिंह ने मजाक किया।

"ओ सरदारा ! हमारी बहन का घर है। हम चाहे दूध पिएं, चाहे खीर खाएं, तेरी क्या दाल गलती है ?' धन्ने शाह ने भी आगे से उसी तरह के हंसी-ठट्ठेवाली बोली में उत्तर दिया।

"सारी उमर इनका यही स्वभाव रहा ! यह नहीं सोचेंगे कि किसी से यह बात कहनी भी है या नहीं !' भजन कौर ने मीठी-सी झिड़की देते हुए कहा। वह नहीं चाहती थी कि ऐसे उपकारी शाह का मखौल उड़ाया जाए।

"ओए, भैंस तो खुरली* पर आ जाने दे ! अभी से तरफदारियां होनी शुरू हो गईं!' सज्जन सिंह को भरोसा नहीं था कि धन्ने शाह अपनी कही किसी बात पर पूरा उतरेगा।

"यह जबान धन्ने शाह ने दी है, धन्ने शाह ने ! कल इस वक्त यहां दुधारू भैंस बंधी हुई होगी," धन्ने शाह ने छाती पर हाथ मारते हुए कहा।

धन्ने शाह और सज्जन सिंह इसी तरह दिल्लगी करते रहे। भजन कौर ने इस बीच पानी में चीनी घोलकर—बिना दूध ही—मीठा पानी बना लिया।

"लो शाह, आज बिना दूध ही स्वीकार कर लो। भैंस आई तो कच्चा दूध पिलाऊंगी।"

"बीबी, यह तूने ऐसे ही तकल्लुफ किया," धन्ने शाह ने घूंट भरते हुए कहा। "इस वक्त तो बल्कि सादा पानी ही बेहतर था।"

"अब पी भी ले—गले में तो अटक नहीं जाएगा ! और अगर मीठा न रुचता हो तो कड़वा पानी लाऊं ?' सज्जन सिंह ने मुंह को थोड़ा-सा पास लाते हुए कहा।

"ऊंह ! कड़वा पानी पीने को कैसे शेर हैं !' भजन कौर ने नाक सिकोड़ते हुए कहा। शराब से उसे सख्त नफरत थी।

"जट्टों की नहीं, यह तो किसी पिछले जनम की बनियों की बेटी है ! देख तो, धन्ने शाह, शराब का नाम सुन कर कैसे नाक सिकोड़ती है !' सज्जन सिंह की आवाज में गुस्से की जगह किसी को चिढ़ानेवाला हंसी-ठट्ठा ज्यादा था।

"भले मानुस ! शराब कोई आदमियों के पीने की चीज थोड़े ही है। यह तो दैत्यों का पदार्थ है," धन्ने शाह ने भजन कौर की हिमायत करते हुए कहा।

"और अगर कहीं मुफ्त मिल जाए तो," सज्जन सिंह जानता था कि धन्ने शाह मुफ्त

---

* पशुओं के चारे के लिए बनी पक्की जगह—पक्की नांद।

की कभी-कभार पी लिया करता था।

"फिर मुफ्त की तो भाई, कहते हैं, काजी भी नहीं छोड़ते।" धन्ने शाह ने एक लोकोक्ति का सहारा लेकर एक तरह से इकबाल कर लिया।

धन्ने शाह पानी पीकर चला गया। उसने बड़ा जोर लगाया कि भैंस लेने के लिए सज्जन सिंह उसी वक्त उसके साथ चले मगर सज्जन सिंह ने अगले दिन का इकरार करके उसे चलता किया।

बाद में सारा दिन सज्जन सिंह और भजन कौर में बहस होती रही। सज्जन सिंह कर्ज लेने के पक्ष में नहीं था। वह दलील दे रहा था कि जिंसों के भाव बहुत मंदे हैं। मामला भुगताकर शाह को लौटाने लायक पैसे न बचे, तब क्या करेंगे। मगर भजन कौर धन्ने शाह की दी हुई रियायत से फायदा उठाने के पक्ष में थी। न उसे पहले कर्ज का तजुर्बा था, न धन्ने शाह के स्वभाव का। इसलिए वह अपनी बात पर अड़ी हुई थी। आखिर उसने खीझकर कहा, "तुम्हें तो इन फाहा-फाहा भर बच्चों पर भी तरस नहीं आता। मैं अपने खाने-मरने के लिए तो नहीं कह रही। पहले ही मैं कौन-सी मलाइयों-मक्खनियों पर लगी हुई हूं। बस, मां का कलेजा होता है। सुबह उठते ही पप्पू दही मांगता है, तो मन मसोसकर रह जाना पड़ता है। और वह भला मानुस भी कितनी बार कहकर गया है। असाढ़ी के वक्त भला एक भैंस के पैसे भी नहीं चुकाए जा सकेंगे ? हमने रब के मांह तो मार नहीं रखे हैं। मर्द तो यों ही मरूं-मरूं करते रहेंगे।"

"मर्दों को कमाना भी तो पड़ता है," सज्जन सिंह ने अपनी जिम्मेदारी महसूस करते हुए कहा।

"मर्द कहीं अनोखा कमाते हैं ? औरतें खाली बैठी रहती हैं," भजन कौर ने सज्जन सिंह की 'अकेले कमाने की' दलील को स्वीकार नहीं किया।

"खाली तो नहीं बैठी रहतीं, पर किसी के लेने-देने की भी तो फिकर नहीं। उन्हें तो घर बैठे मांग लेना होता है। कहते हैं न—लाएगा मियां और खाएगी डारी, न लाए मियां तो होगी ख्वारी !'

"तुम्हें तो डारी ने बहुत तंग कर रखा होगा। भैंस न लानी हो, तो मत लाओ। मेरे ज्यादा हैं कुछ ये ? सयानों ने कहा है : मां-बाप तरसें पूतों को और पूत तरसें टूकों को। हमारे बेचारे तो मां-बाप के होते हुए भी लस्सी के लिए तरसते रहते हैं।" भजन कौर मुंह सिकोड़े अंदर चली गई। अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिए वह इतना ही काफी समझती थी।

दिल से न चाहते हुए भी सज्जन सिंह अगली सुबह शहर चला गया।

धन्ने शाह ने सज्जन सिंह का गरमजोशी से स्वागत किया। सज्जन सिंह के न-न करते रहने पर भी धन्ने शाह ने नौकर को भेजकर लस्सी का गिलास मंगवा लिया। घर में धन्ने शाह जितना कंजूस था, आढ़त पर—आसामी को फांसने के लिए—वह कभी-कभी बड़ा उदार हो जाता था।

"यह लो," धन्ने शाह ने सज्जन सिंह को दस का नोट थमाते हुए कहा, "अहातों में घूम-फिरकर भैंस पसंद कर लो और साई[1] दे आओ। फिर जितने की जरूरत हो, आकर ले जाना। और भैंस कोई अच्छी खरीदना। यों ही कोई ढोल-सा मत हांक लाना, जिसे देखकर घर के बालक ही डरते रहें। अच्छा पशु साल-दो साल पिलाकर भी मोल पूरा कर जाता है।" इन सारे उपदेश का असली मनोरथ यह था कि सज्जन सिंह पर इतना कर्ज हो जाए, तो वह असाढ़ी के समय उतार न सके।

कसूर भैंसों की बड़ी मशहूर मंडी थी। शहर के हर हिस्से में कई अहाते थे। हर अहाते में दस, पंद्रह, बीस बिकाऊ भैंसें हर वक्त खड़ी रहती थीं। हजारों रुपयों की लेन-देन रोज होती थी। अनेक व्यापारी गांवों से माल खरीदकर कसूर के रास्ते बंबई भेजते थे। किसी गांववासी को दुधारू भैंस बेचनी या खरीदनी हो, तो उसकी जरूरत कसूर में किसी वक्त पूरी हो सकती थी।

सज्जन सिंह ने कई अहातों में घूमकर देखा। अंत में ताहरकों के अहाते में उसने एक 'दुज्जन' भैंस पसंद की। भैंस हर दृष्टि से अच्छी और सारे गुणों से भरपूर थी। दलाल ने भैंस की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "सरदार सज्जन सिंहा ! भैंस लेनी हो, तो यह झोटी सारे कसूर में अव्वल है। तुम्हारे पीरूवाले में इसके जैसी एक भी नहीं होगी। पैसे तो एक बार लग जाएंगे, पर सारा गांव चलके देखने आएगा। और फिर सयानों ने कहा है कि पशु वही खरीदो जो चार छिलके महंगा भले ही हो, मगर हो नया और मन को अच्छा लगनेवाला। जाओ, दो सूए[2] पीकर मेरे खूंटे पर बांध जाना और दी हुई रकम ले जाना। और बताओ।"

तीन शहरी दलालों ने एक ग्रामीण किसान को घेर लिया था। वह उनके जाल से निकलकर जाता भी तो कहां ! सज्जन सिंह ने हामी भर दी। भैंस उसे भी भा गई थी।

"कर भाई मोल !" फज्जे दलाल ने मालिक से कहा।

"फज्जे ! मोल मुझे करना है ? मोल तो झोटी खुद ही कर रही है !" पुराने व्यापारी पीरां दित्ते ने सिर से पगड़ी उतारकर भैंस का बदन पोंछते हुए जवाब दिया।

पीरां दित्ते की आदत थी कि वह हर वक्त अपने पशु के बदन पर कपड़ा फेरता रहता था। कोई और कपड़ा पास न होता, तो वह सिर से पगड़ी उतारकर उसी से पशु का बदन साफ करने लगता था। उसके अपने कपड़े मैले होते, मगर उसकी भैंसों के बदन हर वक्त चमकते रहते। कई बार गांव से भैंस खरीदते वक्त यह बड़े मान से कहता, "ओ सरदारा ! पैसों का खयाल मत कर। तेरा पशु सुरग में पड़ जाएगा। वह देख तो अपनी संभालकर रखी हुई का हाल ! बालिश्त-बालिश्त भर तो गोबर और कीचड़ चढ़ा पड़ा है शरीर पर ! हाड़ निकले हुए हैं। जा, चौथे दिन आकर पीरां दित्ते के खूंटे पर देख लेना। भैंस को पहचान लो तो मुफ्त ही खोलके ले आना !"

---

1. अग्रिम राशि।

2. दो बछड़े हो जाने के बाद।

"फिर भी—भई, नाम तो मां-बाप को ही धरना है न !' फज्जे ने पीरां दित्ते से दोबारा कहा।

"ओइ-हो, तू आज नया भैंस खरीदने आया है ! माल तेरे सामने है, जो मर्जी हो, लगा !' तेल से चुपड़े हुए सींगों पर हाथ फेरते हुए पीरां दित्ते ने कहा।

"सारी उम्र तेरी यह आदत न गई। मुंह में दांत नहीं रहे, मगर नखरे वही कश्मीरन जन्नत बाई जैसे !' संते दलाल ने कसूर की मशहूर नचनियां का नाम मिसाल के तौर पर पेश किया। "मोल बता—और अगर बेचने का इरादा न हो, तो हम आगे चलते बनें। कसूर में भैंसों का अकाल नहीं पड़ गया है। जो सोंठ की गांठ तेरे पास है, भला और कहीं मिलने वाली है !'

"इस जैसी ? जा, सारे कसूर में ढूंढ लाए, तो मुफ्त ले जाना। संते ! तूने भैंसें कभी देखी ही नहीं। इसीलिए तेरा-मेरा सौदा नहीं बन पाता। तुझे पशु की पहचान भी तो हो !'

"ओ, तू अब मुंह से कुछ फूटे-मरेगा भी !' फज्जे ने थोड़ा-सा खीझकर कहा।

"रुपया डेढ़ सौ लूंगा। है क्या पल्ले ?' पीरां दित्ते ने कुछ तीखे-से स्वर में फज्जे को जवाब दिया। असल में वह ग्राहक की अनख को टटोल रहा था।

"डेढ़ सौ नहीं, दो सौ। लाम लगी होगी कहीं। गेहूं डेढ़ रुपए में रोता फिरता है, और इस काले चाम का डेढ़ सौ !' फज्जे ने कुछ घृणा-भरे स्वर में कहा।

"देख रे फज्जे ! आदमी की औलाद है, तो दोबारा ऐसी बात मुंह से मत निकालना। वो कहते हैं न—चढ़ना जट्टिए तूं आपणे शौक नूं पर मेरी बक्की नूं निंद के न जा* ।" पीरां दित्ते ने माथे पर त्योरी डालकर मिर्जा के किस्से की मशहूर पंक्ति बोली।

"ओ, अच्छा, तेरी डेढ़ सौ की नहीं, ढाई सौ की है। मगर हमें तो ग्राहक को पुगता मोल करना है। ला, बढ़ा हाथ," संते ने बड़े मीठे स्वर में कहा।

पीरां दित्ता भी एक मिनट में नरम पड़ गया। उसने दायां हाथ आगे बढ़ा दिया।

"ले, अल्लाह पाक का नाम ले। बोहनी का वक्त है..." संते ने पीरां दित्ता के हाथ पर चांदी का रुपया रखकर उसका हाथ अपने दोनों हाथों में दबाते हुए कहा। "रुपए पचास हैं।" साथ ही उसने दोनों हाथों से पीरां दित्ते के हाथ को जोर से पीछे की ओर धकेला।

"मुझसे तुम्हारा कोई झगड़ा है क्या !' पीरां दित्ता ने हाथ से रुपए को ऐसे छिटक दिया, जैसे वह गरम हो। "आए हैं बड़े मोतबिर दलाल ! हुंह !' और वह उछलकर भैंस के दूसरी तरफ जा खड़ा हुआ।

"क्यों, सांप था जिसने हाथ पर डंक मार दिया ? ले, आ इधर !' फत्ते ने जमीन से रुपया उठाकर फिर उसकी तरफ बढ़ा दिया।

"बस, यह संता मेरे मत्थे न लगे। इसके साथ मुझे बात नहीं करनी। ऊंह, पचास

---

* ए जट्टी, तुझे सवारी तो अपने शौक के लिए करनी है, मगर मेरी बक्की (मिर्जा की घोड़ी का नाम) की निंदा तो मत कर।

लगा ले !' पीरां दित्ता गुस्से भरी नजरों से संते की तरफ देखता फिर निकट आ गया।

"लो, न पचास, न पचपन।" फज्जे ने पीरां दित्ते का हाथ पकड़कर उस पर रुपया रखते हुए कहा। "रुपए साठ होंगे।"

"तुम सब··· तुम सब एक ही रस्सी से फांसी देनेवाले हो। छोड़ दे, मैं नहीं सौदा करता।" पीरां दित्ता फिर पहले की तरह तड़पा-भड़का, मगर फज्जे ने उसका हाथ नहीं छोड़ा।

"ओए, तुझे बिच्छू काटते हैं ? इतना तड़पता क्यों है ? आदमियों की तरह खड़ा होकर बात कर। कोई तुझसे भैंस छीन तो ले नहीं जाएगा !' पास से अहाते के मालिक चौधरी अल्लाह बख्श ताहरके ने पीरां दित्ते से जरा झिड़की भरे स्वर में कहा।

"अच्छा, इधर आ भाई सरदार सज्जन सिंह !' संता, फज्जा और लालदीन, तीनों दलाल सज्जन सिंह को बांह से पकड़कर अहाते से बाहर ले गए।

"तू बता, भाई, कहां तक पुगता है तुझे ? हमें तो तेरे पक्ष की बात करनी है। वैसे इस भाव में भैंस सौ से कम की नहीं है," लालदीन ने अपनी राय बताई।

"न भाई, मैं तो अस्सी से ज्यादा नहीं दे सकता। हम कोई और भैंस देख लेते हैं।" दलालों का मान रखने के लिए सज्जन सिंह ने अपनी इच्छा से दस ज्यादा ही बताए।

"तब तो सौदा नहीं बनेगा। यह बुड्ढा बड़ा खुर्राट है," संते ने सिर घुमाते हुए कहा।

"बनेगा क्यों नहीं। दो कम या दो ज्यादा। अच्छा पशु भी भाग्य से मिलता है।" लाल दीन ने ग्राहक के सामने बिकाऊ चीज की तारीफ करना जरूरी समझा।

"न भाई ! मैं अस्सी से एक पैसा ज्यादा नहीं दे सकता। झूठी बात···" सज्जन सिंह ने अपनी तरफ से बड़ी दृढ़ आवाज में कहा।

"अच्छा, आ तो सही। मैं बात करता हूं।" लालदीन आगे होकर चल पड़ा।

"आ भाई, बाबा पीरां दित्ते !··· मगर एक बात है। बात ठंडे मिजाज से करना। यों ही झगड़ालू छोकरों की तरह भड़क न जाना। ला, दे हाथ," लालदीन ने रुपएवाला हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा।

"बोल," पीरां दित्ते ने भले मानुसों की तरह साई के लिए दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

"रुपए पैंसठ होंगे।"

"नहीं पुगते।"

"अरे, फिर कहां चल दिया ! आदमियों की तरह खड़ा होके बात कर ! ले, छियासठ हैं।"

"नहीं।"

"सड़सठ··· अड़सठ··· चल, सत्तर···!'

"नहीं, बाबा, नहीं। मेरी जान छोड़ो।"

सौदा एक बार फिर टूटता लगने लगा। मगर लालदीन भी पुराना पीर था। उन तीनों ने घेरकर एक साथ हमला किया। एक-एक रुपए बढ़ने लगे। जैसे-जैसे वे बढ़ते जा रहे

थे, सज्जन सिंह का दिल घटता जा रहा था। उसे सौदा महंगा होता जाता प्रतीत हो रहा था। पता तभी लगा, जब दलालों ने एक बार में ही अस्सी से बढ़कर नब्बे पर छलांग लगा दी। साथ ही उन्होंने चित्तौड़ का दुर्ग फतेह हो जाने की तरह शोर मचा दिया। एक आदमी पीरां दित्ते की कमर में हाथ डालकर उसे एक तरफ ले गया। एक ने खूंटे से भैंस खोल। पीरां दित्ता "लूट लिया, मार दिया" की दुहाई दे रहा था। तीनों दलाल और उतने ही अहातेवाले अपनी-अपनी जगह कांव-कांव किए जा रहे थे। दो मिनट के लिए सिट्टा-मंडी वाली हा-ऊ-हू का समां बंध गया। सज्जन सिंह अपनी जगह खड़ा "मुझे मंजूर नहीं... मुझे नहीं पुगता" कहे जा रहा था। मगर शहरियों के ऊंचे शोर के नीचे गंवई की मद्धिम और साधुओं जैसी आवाज दबकर रह गई। दलालों ने जबरदस्ती भैंस की रस्सी सज्जन सिंह के हाथ में थमा दी।

चलो, समझ लेंगे, शाह ने छह महीनों का ब्याज ही लगा लिया—यह सोच कर सज्जन सिंह चुप लगा गया।

सौदा हो गया। धन्ने शाह के आदमी ने आकर रुपया चुका दिया। भैंस को अहाते में से खोलकर सज्जन सिंह ने उसे धन्ने शाह की आढ़त में ला खड़ा किया।

"ला, धन्ने शाह ! लिखवा ले फिर," सज्जन सिंह ने अंगूठा लगाने के लिए बायां हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा।

"सज्जन सिंह ! शर्मिंदा मत कर। मैं तुझसे लिखवा लूं ? सारी उमर हर रंग के लोगों से वास्ता पड़ा है। धन्ने शाह अच्छे-बुरे को पहचानना जानता है। असाढ़ी को अपने-आप आकर नब्बे के नब्बे दे जाना। हां, एक बात याद रखना। आज से यह आढ़त तेरी अपनी है। और हमारी बहन से कहना, किसी अमावस के दिन खीर खाने आऊंगा—हिं-हिं-हिं...," धन्ने शाह ने साहूकारों जैसी हंसी हंसते हुए कहा।

सज्जन सिंह भैंस और पड़िया को आगे-आगे चलाता गांव की ओर चल पड़ा। सारे रास्ते वह एक ही बात सोचता रहा—धन्ने शाह तो किसी पर एक पैसे का भी भरोसा नहीं करता, मुझ पर उसने एतबार क्यों कर लिया ? नब्बे रुपए कोई छोटी रकम नहीं होती। और उसने लिखवाया तक नहीं ! क्यों ?... खैर, मुझे किसी की नीयत पर शक नहीं करना चाहिए। मैं उसकी नेकी को नहीं भुलाऊंगा।

भैंस को देखकर घर के सारे प्राणियों को चाव चढ़ गया। छोटा-सा पप्पू उसी वक्त कटोरी लेकर भैंस के चारों तरफ घूमने लगा।

आठ

"इलमदीन ! आज धन्ने शाह की आढ़त पर चलना है", सज्जन सिंह ने सलाह की तरह नहीं, आदेश की तरह कहा।

"क्यों, इतना नजदीक हो गया है उसके ?" इलमदीन ने मंद-मंद मुस्कराते हुए कहा।

"भई, सयानों ने कहा है—पता चलता है वास्ता पड़ने पर या रास्ता पकड़ने पर। धन्ने शाह आदमी बहुत अच्छा साबित हुआ है।" कई बार सोचने के बाद भी धन्ने शाह सज्जन सिंह को अच्छा लगा था।

"हां—तुझे भैंस जो ले दी। मुझे भी ले दे, तो मैं भी अच्छा कहने लगूंगा !" इलमदीन ने मजाक की रौ में ही कहा।

"भैंस ले देना कोई बड़ी बात नहीं है। जहां से पैसा वापस आ जाने की उम्मीद हो, वहां हर साहूकार पैसा दे देता है। मगर पैसा देकर न लिखवाना, यह हर एक के बस की बात नहीं है। कोई भी सूदखोर किसी पर टके-धेले का एतबार नहीं करता।" यही भेद अभी तक सज्जन सिंह समझ नहीं पाया था।

सज्जन सिंह और इलमदीन गाड़ी में कपास लादे शहर की ओर चले जा रहे थे। इलमदीन की गाड़ी आगे थी। उसका छोटा भाई करमदीन गाड़ी हांक रहा था। इलमदीन खुद कपास के ऊपर बैठा खाकी खेस के डोरे बंट रहा था। पिछली गाड़ी सज्जन सिंह खुद हांक रहा था।

पहले वे दोनों निहाले शाह की आढ़त पर माल बेचने जाया करते थे। निहाले शाह के व्यवहार की कुछ कमियां थीं। दूसरों की तुलना में वे आढ़त का खर्च भी कम लगाया करते थे। लेकिन वे किसी को एक पैसा भी उधार नहीं देते थे। इसलिए उनकी आढ़त पर वही किसान जाते थे जो समझते थे कि उन्हें बेला-कुबेला कर्ज लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

सज्जन सिंह भी अब तक साहूकारों के कर्ज से बचा रहा था, मगर दुर्भाग्य ने उसे एक भैंस उधार पर लेने को मजबूर कर दिया था। अब भी वह शायद छह महीने का अभाव किसी तरह काट लेता, मगर भजन कौर ने छोटे पप्पू का नाम लेकर उसे बेबस कर दिया था।

सज्जन सिंह कभी-कभी रात को सोते वक्त सोच में डूब जाता : तैंतीस-चौंतीस बरस की उम्र हो गई, अब तक साहूकारों के कर्ज से बचे रहे थे। अब यों ही बशके की मां ने दलदल में फंसा दिया है। बापू कहा करता था—साहूकार का कर्ज नदी के दलदल की तरह होता है। एक बार उसमें पांव फंस गया, तो फिर उसमें से निकलना मुश्किल हो जाएगा। दलदल में से निकलने के लिए ज्यों-ज्यों जोर लगाया जाए, हम उसमें उतना ही धंसते चले जाते हैं।...बापू तो यहां तक समझाया करता था कि रूखी खा लो, भूखे पड़े रहो, मगर साहूकार से कर्ज मत लो। वरना ब्याज की मार से कभी उबर नहीं पाओगे। कहा भी जाता है—रात-दिन कौन-सी चीज बढ़ती है ? जवाब है, ब्याज। ब्याज की मार बुरी। खैर, भला हो उस नेक इन्सान का, असाढ़ी तक उसने ब्याज की छूट दे रखी है—और फसल आते ही उसका पैसा चुका देना है, फिर चाहे रोजमर्रा के खर्च के लिए भी अपने पास कुछ न बचे।

कभी-कभी उसके विचारों का रुख किसी और तरफ मुड़ जाता : वैसे घर में भैंस अच्छी आ गई। देखने में, दुहने में, दूध-घी के मामले में, हर गुण में पूरी है। अच्छा पशु भाग्य से ही मिलता है। महंगी तो थी दस-पंद्रह रुपए लेकिन कोई बात नहीं। नहीं तो पप्पू सूख गया होता। रूखी रोटियां खाते-खाते हमारी भी पसलियां निकल आई होतीं। जिसकी आस पर बैठे थे, वो झोटी तो नामुराद फंडर* ही निकली। देखने को उसे चाम कितना चढ़ा हुआ है। बस, मस्ती में ही फिर गई। पता तब लगा, जब परसों फिर बोल पड़ी। इस बार भी न टिकी, तो हल में जोत देंगे। इलमे ने तो कल ही पकड़कर जोत दी थी, मगर मेरा ही मन नहीं माना। नामुराद खूबसूरत कितनी है। अच्छा, देखो इसके भाग। साथ हो हमारे भी।...

सज्जन सिंह की जमीन भले ही ज्यादा नहीं थी, फिर भी परिवार छोटा था, इसलिए गुजारा होता रहता था। दो प्राणी वे खुद और तीन छोटे बच्चे। पलौठी का लड़का बख्शीश सिंह बारह-तेरह साल का हो गया था। लाड़ से सभी उसे बशका कहते थे। वह अब जुताई-निराई के काम में पिता का हाथ बंटाने लगा था। पशु चराना और चारा कुतरना उसके जिम्मे था। कभी-कभी वह चाव में आकर हल के पीछे भी लग पड़ता था। मगर इस काम से सज्जन सिंह उसे बरजता रहता था। उसे अपने बापू की नसीहत याद आ जाती थी—बीस साल से कम उमर के बेटे को हल के पीछे मत लगने दो और पच्चीस बरस से छोटे का ब्याह मत करो। जो लोग चौदह-पंद्रह साल के अबोध लड़कों को हल की जंघी थमा देते हैं, उनके टखने निकल जाते हैं, टांगें टेढ़ी हो जाती हैं। चन्नण ठिब्बे को देखते हो न। बस वैसी ही शक्ल बन जाती है। और छोटी उमर का ब्याह तो उससे भी बड़ा पाप है। सेवार से भरे खेत का गेहूं सूखे से मारा जाता है न !बस पोर-पोर बालियां आती हैं सिर पर। वही हाल छोटी उमर के ब्याह का होता हैं। बस, बौने बच्चे एक के बाद एक चले आते हैं। पुराने जमाने में लड़का पच्चीस-तीस का होता था और लड़की बाईस-चौबीस की। दोनों छत की ऊंचाई जैसे जवान। फिर उनकी औलाद भी सरू जैसी क्यों न हो !और अब ? अड़ोस-पड़ोस में खुद ही देख लो।...और सज्जन सिंह एक-एक पड़ोसी के घर में झांककर अपने पिता के कथन की सच्चाई को जांचने लगता था।

बापू की बात सच है। बुद्धिमान लोगों ने तत्व की बातें निकाल रखी थीं। पहले घचलों के कुनबे को देख लो न !दुल्ला सूंह बारह-तेरह बरसों का था, और उसकी घरवाली उससे भी तीन-चार साल छोटी,जब उनका ब्याह हुआ था। इस वक्त उनके आठ या नौ बच्चे हैं। सारे ही ठिगने-से और बौने। उनका नाम ही 'घचला' (बौना) पड़ गया है। न किसी के ऊपर कोई कपड़ा, न नीचे। सिनूकू-से। निरा भेड़ों का बाड़ा। हमारे बशके के पास खड़े वे सब टहनियों जैसे लगते हैं।...मेरे ससुराल वाले भी दो-तीन साल ब्याह के लिए जोर डालते रहे थे, लेकिन बापू ने नहीं माना था। तब तो मुझे भी उतावली-सी होने लगती थी कि कब वह वक्त आए और मेरा ब्याह हो जाए। मगर अब पता चला है कि छोटी

---

* जो दूध न देती हो।

उमर का ब्याह तो यों ही नाम का ब्याह होता है। मैं तब बीस बरस का था और बशके की मां उन्नीस की। यह भी उनके हद से ज्यादा जोर देने पर। वरना बापू तो कहता था कि मुझे तो बेटे का ब्याह तभी करना है, जब वह पच्चीस बरस का हो जाएगा। वैसे कद बढ़िया होने के कारण मैं बीस का होते हुए भी पच्चीस बरस का लगता था। देख लो फिर, बशका अभी से मेरे जितना लगता है। सारे हम उम्रों से हाथ भर ऊंचा है। उससे छोटी दीपो भी मुई उसी के बराबर लगती है। वह अपनी मां जितनी ऊंची-लंबी हो जाएगी। छोटा पप्पू भी बहुतेरे खुले हाड़-पैर वाला है। खुराक का टोटा न पड़े, तो दोनों भाई मेरे जितने ऊंचे हो जाएंगे। ओ, इन जैसे तो दो काफी हैं। सयाने कहा करते हैं—जितनी विरलता, उतना बूटा। मेरा खयाल है, बच्चों की भी यह बात है। जिस घर में आठ-दस हों, उन्हें तो हर चीज बांटकर ही मिलेगी। इलमदीन को ही देख लो। मुझसे मुश्किल से साल-डेढ़ साल बड़ा है और उसके बच्चों का मुझे पता ही नहीं लगता कि वे कितने हैं। मुर्गी के चूजों वाला हाल है। ऊपर से गले में दो परिवारों की फांसी डाल रखी है। वह बादवाली जैना तो हर साल एक बच्चा जन डालती है। नरक है नरक !

इलमदीन का घर सचमुच ही नरक था। अभी उसकी दाढ़ी भी नहीं फूटी थी कि फतेह बीबी के साथ उसका निकाह हो गया था। फतेह बीबी उसके मामा की बेटी थी। वह ज्यादा खूबसूरत नहीं थी। तब इलमदीन का बाप जीवित था। उसके दबाव के कारण ब्याह हो गया था। वैसे भी गांवों के निचले तबके में रंग-रूप का इतना विचार ही कौन करता है ? जवानी आने तक इलमदीन तीन बच्चों का बाप बन चुका था।

फिर इलमदीन को जैना पसंद आ गई। जैना ऊंची-लंबी, सुंदर युवती थी। वह इलमदीन की मौसी के देवर की बेटी थी। उस बिरादरी में दूसरे ब्याज को बुरा नहीं समझा जाता। साथ ही गलती करनेवाला इनसान उसके परिणामों के बारे में कभी नहीं सोचता। इलमदीन ने अपनी मौसी पर दबाव डालकर जैना का रिश्ता हासिल कर लिया। बाजे-गाजे के साथ ब्याह हो गया। मगर जल्दी ही कच्ची हांडी की तरह रंग घुलना शुरू हो गया। जैना के हाथों की मेंहदी का अभी रंग भी फीका नहीं पड़ा था कि घर में महाभारत शुरू हो गया। जैना और फतेह बीबी के मां-बाप को भी उस धर्मयुद्ध में हिस्सा लेना पड़ गया। परिणामस्वरूप इलमदीन दोनों ससुरालों से टूट गया। जैना के मां-बाप तो हमेशा के लिए दूर हो गए और फिर कभी नहीं मिले।

तभी से इलमदीन दोनों गट्ठरों के नीचे सिर दिए, मरता-जीता चला आ रहा था। उसके घर में चार बच्चे पहले से थे और छह जैना से। ये दस तो सुख से कायम थे। दो फतेह बीबी के और एक जैना का तभी मर गए थे, जब वे दूध चूंघते थे। साथी ठट्ठा किया करते थे—"इलमदीन, गांव में तेरा गुजारा नहीं होगा। बाबा आला सूंह के कुएं के पास अपना गांव बांध ले !'

"ओ मियां ! अल्ला ताला खुद ही देखेगा। हमें-तुम्हें कैसी फिकर !' दिल को समझाने के लिए आगे से इलमदीन मन बहलानेवाली बात कह दिया करता था। मगर अपने इस कथन पर उसे ज्यादा भरोसा नहीं रह गया था।

कपासवाली गाड़ी पर बैठा इलमदीन घर की चिंताओं में डूबता जा रहा था : अल्लाह कैसे बेड़ा पार लगायेगा !कपास तो नोन-तेल के लायक भी नहीं है। हम दो भाई कमानेवाले हैं और सज्जन सिंह अकेला, मगर उसकी श्रावणी हमसे ज्यादा हुई है। किस्मत। इतनी से तो सारे जीवों का ठीक से सिर भी नहीं ढंका जा सकेगा। दस मेरे और पांच कमरदीन के। वह शेरनी जैसी दाई कहेगी—बिस्मिल्ला ! खुदा की मेहर हुई। एक जीव और आ गया। यह तो हमें पता है न कि यह खुदा की मैहर है या उसका कहर !.. अभी दोनों आफतें साथ तैयार हुई बैठी थीं। वे आतीं तो करमदीन की कहां पीछे रहनेवाली थी !फिर तो गाड़ी और बैल बेचकर ही छुटकारा मिलता। या अल्लाह !.. मुश्किल के वक्त उसके पास अल्लाह को याद करने के सिवा कोई चारा नहीं था।

इसी तरह वे घर की चिंताओं को सोचते और कभी आपस में मीठी-नमकीन बातें करते धन्ने शाह की आढ़त पर जा पहुंचे। अब सज्जन को एक नई चिंता होने लगी कि अगर शाह ने भैंसवाले पैसे अभी काट लिए, तब क्या होगा ? कबीलदारी की नोन-तेल की जरूरतें और सरकारी मामला—ये दो मुसीबतें सामने खड़ी थीं।

धन्ने शाह ने दोनों का बड़े प्यार से स्वागत किया। "आइए, आइए, सरदार सज्जन सिंह जी, चौधरी इलमदीन जी !स्वागत है, भाइयो !' धन्ने शाह ने गद्दी से उठते हुए कहा। "ओए धम्मी !ओए बिल्लू !इधर आओ ओए !' धन्ने शाह ने नौकरों को ऊंची-ऊंची आवाजें लगाईं।

"बताओ, शाहजी !' बिल्लू ने सिर का दो-एक गज का, मैला-सा साफा ठीक करते हुए पूछा।

"अरे सुसरो, कहां मर जाते हो सब !चारपाई बिछा पहले। फिर माल उतरवा। वह उल्लू का पट्ठा धम्मी किधर गर्क हो गया ?"

"शाहजी, वह आपका लाडला पूत है। कहीं सैर कर रहा होगा," बिल्लू ने दीवार के साथ खड़ी चारपाई बिछाते हुए कहा। "काम करने को हम हाजिर हैं !' बिल्लू दबी-दबी शरारती मुस्कराहट के साथ कह रहा था।

धम्मी एक गरीब पांडी का बेटा था। धम्मी की मां बड़े खुले हंसमुख स्वभाव की थी। जवानी में कुछ समय के लिए वह घर में ऊबे शाह के मनबहलाव का साधन बनी रही थी। वह बात को छिपाकर रखने की आदी नहीं थी। वह कई बार आढ़त के तोलियों और पांडियों के सामने ही कह दिया करती थी, "धम्मी मत कहा करो रे, मेरे लड़के को। यह चंदू भंगी का बेटा नहीं, सेठ धन्ने शाह का बेटा है। इसे सेठ धरमपाल कहकर बुलाया करो।"

"ओए चंदू !उल्लू के पट्ठे !तू इस मुंहफट को बरजके नहीं रखता ?" धन्ने शाह खीजकर कहता।" याद रख, मैं दोनों को जूते मारके अहाते से निकाल दूंगा।"

"शाहजी, मेरे बरजने से यह कभी रुकती है !मुझे तो एक के बदले चार सुनाती है। कहेगी—मेरा धन्ने शाह के साथ... !'

"चुप कर बे। ज्यादा चपड़-चपड़ मत कर...नहीं तो निकल जा हमारी आढ़त से ! मैं धन्ने शाह के पूत की मां—मुझे ऊंचा-नीचा कौन कुछ कह सकता है ?" धम्मी की मां बनावटी गुस्से से मालिक की तरफदारी-सी करती हुई कहती।

धन्ने शाह चिढ़कर गालियां देने लगता है और आढ़त के नौकर-चाकर खिल्ली उड़ाते-से हंसने लगते।

चंदू मर चुका था। धम्मी ने जवान होते ही बाप का काम संभाल लिया था। धम्मी की मां समय से पहले ही बूढ़ी हो गई थी। अब धन्ने शाह के लिए उसमें कोई रस नहीं रह गया था। मगर पुराने नौकर और जानकार पड़ोसी अब भी धन्ने शाह को छेड़ने के लिए धम्मी को उसका बेटा बताकर हंसी-ठट्ठा करते रहते थे।

बिल्लू कोट मुराद खां का कसाई था। मौलवी ने उसका नाम बुलंद खां रखा था, लेकिन वह सारी उम्र नूरी का बेटा बिल्लू ही रहा। वह केवल जन्म का ही कसाई था, कर्म का नहीं।

बिल्लू ने चारपाई बिछा दी। सज्जन सिंह और इलमदीन, दोनों, आदर-सम्मान के साथ बुलाए गए मेहमानों की तरह पसरकर बैठ गए। इसी बीच, चुटकी से सिगरेट की राख झाड़ता धम्मी भी आ पहुंचा।

"ओए, उल्लू के पट्ठे ! किधर मर गया था तू ? शाहजी पीछे आवाजें मार-मारकर खप गए हैं !" बिल्लू ने बनावटी गुस्से और जिगरी हंसी के साथ कहा।

"शाहजी, देख लो, आपके मुंह पर ही मुझे क्या कहे जा रहा है !" धम्मी ने खुद गुस्सा करने के बजाय सारी बात धन्ने शाह पर टाल दी।

"ओए कुत्तो ! हर वक्त झगड़े की तरफ ही ध्यान मत रखा करो। किसी वक्त काम भी कर लिया करो। जा ओए धम्मी ! तू गाड़ी उतरवा। और तू चौधरी के लिए हुक्का ताजा करवाके ला, ओए बिल्लू के बच्चे !" धन्ने शाह ने दोनों को अलग करने के लिए अलग-अलग हुक्म दिया।

"नहीं, शाहजी ! हुक्का तो मैंने कभी नहीं पिया। तंबाकू पीनेवाले होते तो सज्जन सूंह के साथ यारी निभ सकती थी ?" तंबाकू पीने से बचे रहने को भी इलमदीन ने सज्जन सिंह पर एहसान के रूप में प्रकट किया।

"फिर दौड़के जा, ओए," धन्ने शाह ने बिल्लू को हुक्म दिया, "किरपे हलवाई से कह, दो गिलास दही की लस्सी के और दो जगह पाव-पाव भर बर्फी भेजे।"

"नहीं शाहजी, इतनी तकलीफ की क्या जरूरत है ? हम घर से खा-पीके ही चले हैं ?" सज्जन सिंह ने सिर घुमाते हुए कहा।

"ओए सरदार सज्जन सिंहां, तकलीफ कैसी ? तुम जैसे मित्रों के आने पर तो आदमी बालिश्त भर ऊंचा हो जाता है। तुम दोनों तो पंचायत के मुखिया हो, सारे गांव का सिंगार। आज सारा पीरूवाला मेरा हो गया है।..ओए सच ! करमदीन का खयाल करके धन्ने शाह ने जाते हुए बिल्लू को नया हुक्म दिया, "लस्सी और बर्फी तीन जगह

लाना, ओए। चौधरी के भाई को तो पहले मैंने देखा ही नहीं था।"

कपास की ढेरियां लगाकर गाड़ियां एक तरफ खड़ी कर दी गईं। उधर का काम निबटा कर करमदीन भी भाई के पैताने आ बैठा। इतनी देर में किरपे हलवाई का मुंडू लस्सी और बर्फी लेकर आ गया।

"शाह जी, यह तो आपने बड़ा तकल्लुफ किया," सज्जन सिंह ने लस्सी का गिलास पकड़ते हुए रस्मी तौर पर कहा।

"तकल्लुफ ? तब तो भाई, गांव जाने पर तू भी हमें पानी पिलाने को तकल्लुफ ही समझता होगा !" धन्ने शाह ने सटीक जवाब दिया।

"गांवों की, तो बात ही कुछ और है शाह जी। मगर यहां शहर में तो सब कुछ मोल मिलता है!" इलमदीन ने शहर और गांव के फर्क को सामने रखते हुए कहा।

"शहरिये क्या खुद नहीं खाते-पीते ? यह तो यों ही—चौधरी—जरा-सा आए हुए भाई का आदर-सत्कार होता है। नहीं तो पांच-सात अपने के खर्च से कोई नंगा तो हो नहीं जाता, न ही कोई साहूकार बन जाता है। मौज से खाओ तुम लोग।" धन्ने शाह उनके सामने गद्दी पर बैठकर लाल रंग की बही के पन्ने पलटने लगा।

कुछ देर तक रस्मी बातें होती रहीं। खारे की तीन आसामियां माल लेकर आ गईं। धन्ने शाह उनके साथ बातचीत में व्यस्त हो गया। मगर उन्हें उसने लस्सी-पानी के लिए नहीं पूछा।

"शाहजी !" इलमदीन ने सज्जन सिंह के साथ कुछ सलाह करने के बाद झिझकते-झिझकते हुए कहा ? "माल तो कहीं पिछले पहर तुलेगी। तब तक हम शहर से कुछ सौदा-सुलफ ले आएं ?"

"हां-हां, जरूर। यह लो...।" धन्ने शाह जेब से चाबी निकालकर गद्दी के पीछे की ओर खड़ी पेटी खोलने लगा।

"मैं भी भला कुछ पैसे मांगूं या नहीं ? इसे देने भी तो हैं !" सज्जन सिंह मन ही मन गिनतियां गिन रहा था। जरूरत होते हुए भी मांगने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

"सज्जन सिंहा" धन्ने शाह ने दस-दस के नोट गिनते हुए कहा, "साठ रुपए बाकी हैं ? नहीं तो बड़ा नोट ले जा।"

"बहुत हैं, शाहजी !" सज्जन सिंह ने हैरानी-भरी खुशी के साथ कहा। वह तो मुश्किल से बीस-पच्चीस ही मांगने की सोच रहा था।

धन्ने शाह के हाथ से नोट लेकर सज्जन सिंह उन्हें गिनने लगा।

"आप तो चौधरीजी, फिर, सौ का नोट ही ले जाओ। बढ़ा-घटा फिर देखा जाएगा।" धन्ने शाह ने सौ का नोट इलमदीन को थमा दिया।

अनपढ़ जाट सूदखोर साहूकार की गहरी चाल को समझ नहीं पाए। पैसों से भरी जेबें लिए वे तीनों खुश-खुश बाजार में जा घुसे। चार बजे वे वापस आढ़त पर पहुंचे, तो

पैसों के मामले में तीनों की जेबें खाली थीं।

सज्जन सिंह की कपास पंद्रह मन से ऊपर निकली, मगर इलमदीन की तेरह मन से भी कुछ कम। धन्ने शाह ने दोनों को बड़ी तसल्ली से हिसाब समझाते हुए कहा, "सरदार सज्जन सिंहा, हम लोग बाहर अपने धड़े बनाकर खुश होते हैं। मैं समझता हूं, अब तुम दोनों पीरूवाले में मेरे भाइयों जैसे धड़े हो। तुमसे आढ़त का खर्च सिर्फ उतना लगाया है, जितना नौकर-चाकरों को ले जाना है। मुझे, दुकान का हिस्सा, भाई बिल्कुल नहीं रखना है। समझो, दुकान तुम्हारी ही है। सो, तुम्हारे बने छिहत्तर रुपए सवा आने। साठ तुम ले ही गए थे और बाकी के यह लो। और भी बेला-कुबेला जरूरत पड़े, तो धन्ने शाह तन के कपड़े उतारकर देने को भी तैयार है," धन्ने शाह ने बाकी के पैसे थामते हुए कहा। "और चौधरी इलमदीन! तू भी, भाई, यह मत समझना कि तुझे धन्ने शाह किसी से कम समझता है। तुम दोनों के साथ एक-सा ब्योहार रहेगा। बाकी भले ही हम सारे देस को लूट लें। तेरे बने चौंसठ रुपए पौने बारह आने। तू सौ ले गया था। सो बाकी...।"

"बाकी, शाह, अब अगले फेरे पर सही। हम सारा खर्च कर आए हैं। करमदीन यों ही बस जिद कर बैठा।" इलमदीन ने ज्यादा पैसे खर्च करने का उलाहना छोटे भाई के सिर मढ़ दिया।

"ओ चौधरी ! हम करमदीन को नाराज होने देते हैं ? जरूरत हो तो और ले जा। यहां धन्ने शाह के साथ वास्ता पड़ा है, किसी चिड़ी के दिलवाले बनिए के साथ नहीं।" धन्ने शाह ने जरा आवाज पर जोर देकर तड़ी मारी।

इलमदीन ने रुपए पर एक टका सूद के हिसाब से पैंतीस रुपए सवा चार अपने पर अंगूठा लगा दिया। फिर वे दोनों गाड़ी हांकते रात ढले तक घर जा पहुंचे।

नौ

"बाबा अकाली ! ऐसे क्यों बैठा है ? होलां* नहीं खाता ?" बाबा अकाली को बहुत उदास देखकर सज्जन सिंह ने पूछा।

"सज्जन सिंहा आ !" बाबा अकाली ने उदास-सी नजर से पनेवाले की तरफ देखकर कहा, "आ बेटे, बैठ जा। होलें भूनी थीं। मगर अकेले चबाने का मन नहीं किया। इस उमर में आदमी को कभी-कभी पुरानी यादें बेचैन कर देती हैं। मुझे भी यों ही...।" कहते-कहते बाबा अकाली खामोश हो गया। "बैठ जा, हम दोनों खाते हैं।" वह अधजली, बालिश्त भर की लकड़ी से होलें बीनने लगा।

* भुने हुए हरे चने।

सज्जन सिंह सामने बैठकर होलें खाने लगा। बीच-बीच में वह बड़े ध्यान से बाबा अकाली के चेहरे को देखने लगता था। बाबा अकाली का चेहरा उदास मगर प्रभावशाली था।

"नहीं, मैं मुंह पर आनेवाली बातों को अंदर नहीं रोक सकता," बाबा अकाली ने सिर हिलाते हुए कहा। "कई बार आदमी किसी के भी साथ बातें करने को बेबस हो जाता है। इस वक्त मेरी भी वही हालत है। अच्छा हुआ, तू आ गया। फिर तू तो मेरा अपना है।" बाबा अकाली पीढ़ियों के हिसाब से सज्जन सिंह के दादा का भाई होता था। पीढ़ी के हिसाब से वह सारे गांव में भी सबसे बुजुर्ग था। इसीलिए सभी लोग उसे बाबा अकाली पुकारते थे।

"हम तो तेरे बच्चे हैं, बाबा अकाली ! कहीं परमात्मा तुझे भी एक बेटा दे देता, तो वह हमारा संगी होता," सज्जन सिंह ने हमदर्दी-भरे स्वर में कहा।

"कभी भी यही सोचा करता था। एक दिन तुम्हारी माई ने भी यह मनोकामना प्रकट की थी। मैं सात-आठ दिनों के बाद बाहर से आया था। बापू बहुत नाराज हुआ था। छोटे भाई ने भी मुंह बनाया था। खेम कौर ने सिर्फ इतना ही कहा था—मुझे यह शक नहीं है कि आप किसी बुरे काम में फंसे होने के कारण इतने-इतने दिन बाहर रहते हैं। मगर पीछे मेरा जी नहीं लगता। कहीं गुरु महाराज हमें भी एक बच्चा... । यह वाक्य पूरा नहीं कर पाई थी। शायद शरमाकर चुप हो गई थी। उस उमर में स्त्री कई बातों में अपने पति से भी संकोच कर जाती है। उसकी इस ख्वाहिश को याद करके कभी मैं भी सोचा करता हूं कि अगर उसे छोड़ जाना था, तो उसकी कोई निशानी ही मेरे पास होती⋯ लेकिन⋯ लेकिन⋯ अब मेरे खयालात बदल गए हैं। तुम लोगों की संगत, सारे देश के बच्चे अब मुझे अपने ही बेटे-बेटियां लगते हैं। अब देस ही मेरा सबकुछ है। और तुम सब हो मेरा लहू और मांस।" बाबा अकाली जैसे सांस लेने के लिए रुक गया। "एक बार तुम्हारी माई के जोर देने पर मैंने इतना-सा भेद खोला था—हम देस की आजादी के लिए यत्न कर रहे हैं। आजादी मिल जाने के बाद सब कुछ बता दूंगा। मगर इस वक्त मुझे कुछ मत पूछो।⋯ और उस भली मानुस ने फिर कभी कुछ नहीं पूछा।"

"बहुत अच्छी थी माई खेम कौर, लेकिन बेचारी के साथ बड़ा अनर्थ हुआ।" सज्जन सिंह के दिल पर भी खेम कौर के साथ हुए अत्याचार का मारक असर था।

"ठीक कहते हो तुम। मगर आज तो मैं देखता हूं, इस देस की हजारों-लाखों देवियों के साथ उसी जैसा या उससे भी बढ़कर अनर्थ हो रहा है। और यह सबकुछ है गुलामी के कारण। इन सारे दुखों-क्लेशों को दूर करने के लिए हमें पूरी ताकत से आजादी की जंग लड़नी चाहिए। जानते हो, तुम्हारे आने से पहले मैं किन विचारों में डूबा हुआ था ?"

सज्जन सिंह ने केवल प्रश्न-भरी नजरों से बाबा अकाली की तरफ देखा, जैसे वह बाबा अकाली के सवाल का जवाब सुनने के लिए बेहद उतावला हो।

"मैं तुम्हारी माई के साथ ही बातें कर रहा था," बाबा अकाली ने धीमा-सा खंधूरा मारकर फिर कहना शुरू किया। "एक दिन हमने इसी शीशम के नीचे बैठकर होलें भूनकर खाई थीं। वह दोपहर की रोटी लेकर आई थी और संझाबेला तक यहीं मेरे पास रही थी। आज होलें भूनते समय वह वक्त याद आ गया था। मैंने उससे कहा था—खेम कौरे ! यह न समझना कि मैंने तुझे भुला दिया है। हम आजादी की एक लंबी जंग लड़ रहे हैं और तब तक बहादुर सिपाहियों की तरह लड़ते रहेंगे, जब तक जीत हासिल नहीं कर लेते। ..और सज्जन सिंह बेटे, यह लड़ाई उसी दिन खतम होगी, जिस दिन देस आजाद हो जाएगा।"

"क्यों नहीं ! अंत में तुम जैसे देशभक्तों की कुरबानियों को फल लगेगा ही," सज्जन सिंह ने श्रद्धा से सिर झुकाकर कहा।

"कुरबानी कभी बेकार नहीं जाती।" बाबा अकाली ने 'हां' में सिर हिला कर अपना विश्वास प्रकट किया। "गदर की लहर में न जाने कितने सूरमा फांसी पर चढ़े, कितने उमर-कैद हुए, कितनों को बेंत लगे, कितनों की जायदाद जब्त हुई, कितने जवान जेल गए और 'बाबा' बनकर बाहर आए... तब कई लोग कहा करते थे, इस कुरबानी का कोई मोल नहीं पड़ा। सब किया-कराया व्यर्थ गया। जनता ने कोई असर कबूल नहीं किया। मगर ऐसा सोचना उनकी कम-अकली थी। ठीक है, तब ज्यादा लोगों ने हमारा साथ नहीं दिया, क्योंकि देस तब गहरी नींद सो रहा था। बड़े घराने अंगरेजों की वफादारी में ही अपना कल्याण और इज्जत समझते थे। कांग्रेस भी तब जर्मन-युद्ध में तन-मन से अंगरेजों की मदद कर रही थी। हमारे लीडर समझते थे कि युद्ध जीत लेने की खुशी में अंगरेज हमें स्वराज दे देंगे। मगर इन्होंने यह नहीं सोचा कि 'कोई किसी को राज न दे है। जो ले है निज बल से ले है।' भाई रणधीर सिंहजी हमें जेल में ये तुकें सुनाया करते थे। यह बात सोलह आने सच है, बेटे सज्जन सिंह ! राज देता कोई नहीं है, हासिल करना पड़ता है। उस वक्त अगर सारी पार्टियों के लीडरों ने हमारा साथ दिया होता, तो जिस तरह अंगरेज जंग में फंसा हुआ था, हिंदुस्तान आजाद हो गया होता। मगर तब तो उलटे कई पार्टियों और उदार विचारों के लीडरों ने हमारा विरोध ही किया था। फिर भी, हम समझते हैं, हमारा संघर्ष बेकार नहीं गया। सोहन सिंह भकना कहा करता था—हमने धरती जोतकर बीज डाल दिया है, एक दिन यह अंकुरित जरूर होगा. सो, समय अपने पर..."

"बाबा सोहन सिंह भकना भी तुम लोगों के साथ था ?" चलते हुए वार्तालाप के बीच सज्जन सिंह ने यों ही हुंकारा भरने की तरह सवाल कर दिया।

"हां। जेल में बहुत-से सयाने और नेक आदमी हमारे साथ रहे हैं। सोहन सिंह भकना, बसाखा सिंह ददेहर, भाई रणधीर सिंह नारंग वाल, भाई परमानंद, डॉक्टर मथरा सिंह और दूसरे भी कई पढ़े-लिखे और समझदार लोगों की संगत रही है। दरअसल जेल में रहकर मैंने बहुत कुछ सीखा है। यहां छुटपन में तो आठ जमातें ही पढ़ा था न—बल्कि सात ही समझो। आठवीं का तो मैंने इम्तहान ही नहीं दिया था... और आहिस्ता-आहिस्ता उन सात को भी भुला दिया।"

"लेकिन बाबा ! इस वक्त तो तुम्हारे जैसी समझ किसी बी. ए. पास वकील में भी नहीं है !" सज्जन सिंह ने तारीफ के स्वर में कहा।

"यह सबकुछ जेल में ही सीखा है। सियासी लगनवाले लोगों के लिए जेल बहुत बड़ा कालेज है। वहां और किसी काम की फिकर तो होती नहीं थी। आठों पहर या तो भजन करने में निकल जाते थे, या देस की आजादी के लिए तरीके सोचने में।" होलों के निकले हुए दानों को मुंह में डालकर बाबा अकाली उन्हें चबाने लगा। इस तरह पल-दो पल के लिए बातों का सिलसिला रुक गया।

"एक दिन हमने जेल में मार्शल ला और जलियांवाला बाग की वारदात की खबरें सुनीं। सोहन सिंह भकने ने कहा—लो, हमारा बोया बीज उग आया है। इसकी पहली सिंचाई जलियांवाला बाग के शहीदों के खून से हुई है। अब यह बूटा कभी नहीं सूखेगा।...सज्जन सिंहा, यह बूटा पनपेगा, फले-फूलेगा और एक दिन इसमें आजादी का फल जरूर लगेगा।"

"हमें कुछ-कुछ याद है मार्शल ला की," सज्जन सिंह ने दोनों हथेलियों के बीच होलें मसलते हुए कहा। "तब मैं बशके जितना, या इससे कुछ बड़ा, रहा होऊंगा। बापू हमें डर के मारे घर से बाहर नहीं निकलने देते थे। बेचारा हीरा खोजा सौदा लेने गया था। कसूर में पकड़ा गया था। यहां बात उड़ गई कि उसे फांसी पर लटका दिया गया है। बस, सारा गांव डर से सहम गया।"

"एक गांव क्या, सारा देस सहम गया था। हीरा भी कोई साल-भर तक हमारे पास रहा था। पहले उसे फांसी का हुक्म हुआ, फिर उमरकैद का और आखिर में सात साल का। मगर अगले साल वह भी हमारे साथ रिहा हो गया।"

"और वह मार्शल ला उन्होंने लगाया किस बात पर था ? कहते हैं, कालों ने कुछ गोरे मार डाले थे," सज्जन सिंह ने सुनी-सुनाई और आधी याद बातों के आधार पर सवाल किया।

"बच्चू ! बस, यही है गुलामी की निशानी !" बाबा अकाली ने कुछ प्रताड़ना-भरी निगाह से देखते हुए जवाब दिया। "अंगरेज अपने आपको गोरा और हमें काला और कुली कहते हैं, जैसे तुमने भी कह दिया है, कालों ने गोरों को मार डाला था... बस, हम इतने गिर गए हैं कि खुद ही खुद को काला कहे जाते हैं। और यही है सारा गुलामी का असर कि हिंदुस्तानी अपने-आपको अंगरेजों से नीचा समझने लगे हैं।...अब सवाल है—मार्शल ला लगा क्यों ? शायद मैं पूरी तरह समझा न पाऊं, लेकिन जब मैं उस साल की कहानी पढ़ता हूं, तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। महात्मा गांधी उन्हीं दिनों प्रसिद्ध हुए। पहले वो दूसरे दर्जे के लीडर थे। उस वक्त कांग्रेस में कई लीडर उनसे आगे थे...कांग्रेस की बात भी सुन लो। इस पार्टी की नींव रखनेवाला भी एक अंगरेज ही था—मिस्टर ह्यूम। पहले-पहल कांग्रेस की सबसे बड़ी मांग थी कि सरकारी नौकरियों में हिंदुस्तानियों को भी कुछ बड़े ओहदे दिए जाएं। धीरे-धीरे, समय की मांग के अनुसार कांग्रेस की मांगें बढ़ती गईं। सन् चौदह में जर्मन जंग छिड़ गई। कांग्रेस ने सारा जोर लगाकर उस जंग में अंगरेजी सरकार

की मदद की। लीडरों का खयाल था कि हमारी मदद से अंगरेज अगर जीत गए तो हमें स्वराज के बहुत सारे हक दे देंगे। उन दिनों गरम गुट के कांग्रेसी भी इतना-सा हीं स्वराज मांगते थे, जिससे अंगरेज की छत्रछाया में वो आधी-अधूरी हुकूमत संभाल लें। पूरी आजादी की अभी उसकी कोई मांग नहीं थी। हिंदुस्तानियों की मदद से ही अंगरेजों ने जंग जीत ली। उस वक्त सन् अट्ठारह खतम होने को था। कांग्रेस स्वराज का इंतजार करने लगी। लेकिन सारी सेवा का फल क्या मिला ? रॉलट बिल !"

"रॉलट बिल क्या ?" सज्जन सिंह ने ज्यादा जानकारी प्राप्त करने के इरादे से पूछा।

"देखो न, जबसे अंगरेजों ने पंजाब पर कब्जा जमाया है, यहां कोई-न-कोई आंदोलन विदेशी सरकार के विरुद्ध चलता ही रहा है। पहले सन् सत्तावन का बड़ा गदर हुआ। फिर नामधारियों की कूका लहर चली। मलेरकोटला में कई कूके तोपों से उड़ाए गए (17 जनवरी, 1872)। सन् बारह में अंगरेजों ने कलकत्ता के बदले नई दिल्ली को राजधानी बना लिया। वाइसराय का जुलूस निकल रहा था। हनुवंत सहाय ने उस पर बम फेंका। वाइसराय लार्ड हार्डिंग जख्मी हो गया, लेकिन मरा नहीं। इस अपराध में हनुवंत सहाय और उसके तीन साथियों (अवध बिहारी, मास्टर अमीर चंद और बाल मुकुंद) को फांसी का हुक्म हुआ, जो बाद में उमरकैद में बदल दिया गया। हनुवंत सहाय कैद काटकर आया। रासबिहारी बोस उस मुकदमे में भगोड़ा हो गया और उसे कभी पकड़ा नहीं जा सका। बताते हैं, इस वक्त वह जापान में है। दिल्ली के बम केस के बाद हमारी गदर लहर चली, जिसने अंगरेजों के लिए बहुत डर पैदा किया। घर के भेदी ने ही न मार डाला होता तो सत्तावन से भी बड़ा गदर हो जाता।"

"किरपाल सूंह था न जिसने भेद दिया था ? बेड़ा गर्क हो उसका !" सज्जन सिंह ने बड़ी घृणा से देशद्रोही का नाम लिया।

"हां ! क्या नाम लेना उस कुल-कलंक का !...खैर, इस लहर से अंगरेज बहुत घबरा गए थे। उन्होंने सोचा, कोई ऐसा कानून बनाओ, जिससे कोई आंदोलन यहां उठ ही न सके। सो मिस्टर रॉलट की रिपोर्ट पर रॉलट बिल पास किया गया—फरवरी सन् 1919 में।"

"हां, सुना था—ब्याह करो तो दरखास्त देकर, दस बंदों को इकट्ठे कहीं किसी के मरने का अफसोस करने जाना हो तो गौरमिंट की इजाजत लेकर—और इसी तरह की और भी कई पाबंदियां," सज्जन सिंह ने याददाश्त पर जोर डालते हुए कहा।

"मैं कहूं—मुश्कें ही कस दी जी ! उस बिल के रहते कोई आंदोलन चल ही नहीं सकता था। सरकार का जरा-सा विरोध करनेवाले को भी सख्त से सख्त सजा दी जा सकती थी फिर उसकी अपील भी नहीं हो सकती थी। हाथों से या जबानी विरोध करना तो दूर, जिस आदमी पर सरकारी अफसरों को शक हो जाए कि यह कोई विरोध कर सकता है, उसे भी सजा दी जा सकती थी।"

"जुर्म करने से पहले ही सजा ?"

"हां। फिर कांग्रेसी सोचने लगे कि हमने सांपों को दूध पिलाकर गलती की है। सबसे पहले महात्मा गांधी मैदान में आए। उन्होंने ऐलान किया कि हम रॉलेट एक्ट के खिलाफ मोर्चा लगाएंगे। उन्होंने 30 मार्च 1919 का दिन भी तय कर लिया। उस दिन सारे मुल्क में हड़ताल करने और जुलूस निकालने का हुक्म हुआ। बाद में, पता नहीं किस कारण, महात्मा गांधी ने दूसरा ऐलान जारी किया—तीस मार्च के बदले छह अप्रैल को जुलूस निकाले जाएं और छह से तेरह तक रोष सप्ताह मनाया जाए। दिल्ली में नए ऐलान की समय से खबर नहीं पहुंची। वहां लोगों ने तीस मार्च को ही जुलूस निकाल दिया। रॉलेट एक्ट के विरुद्ध हर हिंदुस्तानी के मन में गुस्सा था। दिल्ली में मुकम्मल हड़ताल हुई और लाखों लोग जुलूस में शामिल हुए। अंगरेजी सरकार बहुत घबराई ।जुलूस के रास्ते में रुकावट डालने के लिए जगह-जगह पुलिस के गोरे सिपाही खड़े थे। एक जगह जुलूस को रोककर गोरे सिपाहियों ने धमकी दी—भाग जाओ, वरना गोली से उड़ा दिए जाओगे।...जुलूस के अगुआ स्वामी श्रद्धानंद ने कमीज के बटन खोलते हुए, सूरमाओं की तरह, छाती तानकर कहा—लो, मारो गोली !..गोरे एक-दूसरे का मुंह ताकते एक तरफ हो गए और जुलूस आगे बढ़ गया। आखिर रेलवे स्टेशन के पास पहुंचने पर गोली चल ही गई। सरकार के जरखरीद टुक्कड़खोरों ने अफसरों की शह पर कुछ गड़बड़ कर दी। इस तरह दंगे-फसाद का बहाना गढ़कर गोरों ने गोली चला दी। पांच आदमी वहीं मर गए और जख्मी, पता नहीं, कितने हुए।"

"हत् तुम्हारा बेड़ा गरक, गोरो !' अंगरेजों के विरुद्ध जोश से सज्जन सिंह की छाती धड़कने लगी।

"इस भयानक घटना की खबर ने सारे देश में आग लगा दी।" बाबा अकाली अपनी रौ में कहे जा रहा था। " छह अप्रैल को सारे देश में मुकम्मल हड़ताल हुई। किसी दुकानदार ने दुकान का दरवाजा नहीं खोला। हलवाहों ने हल भी नहीं जोते। लड़के स्कूल नहीं गए। लारियां-तांगे बंद। सूने स्टेशन भांय-भांय कर रहे थे। सवारी भी कोई नहीं थी। हां, पुलिस और फौजी सब जगह भागते फिर रहे थे, जैसे घर में आग लग गई हो।"

"अंगरेजों के हिसाब से तो एक तरह की आग ही लग गई होगी," सज्जन सिंह ने अंदर की भड़ास निकालते हुए कहा।

"अंगरेज ज्यादा तो घबराए थे हिंदुओं, सिखों, मुसलमानों के इत्तिफाक से। अंगरेजों की शुरू से ही नीति चली आ रही है—फूट डालो और राज करो। कभी हिंदुओं और मुसलमानों को लड़वा दिया। कहीं किसी और ढंग से झगड़ा खड़ा कर दिया। मगर उस वक्त हिंदू-मुसलमान एक जान हो चुके थे। हिंदू और सिख मुसलमानों के हाथों का पका खुशी-खुशी खा-पी रहे थे। मुसलमान हिंदुओं को मस्जिदों में बुलाकर लेक्चर करवा रहे थे। बस, कुछ मत पूछो। भाई-भाई जैसे प्रेम का वैसा समय हिंदुओं-मुसलमानों में फिर

कभी नहीं आया।"

"बगल से आग लगानेवालों ने ही दरार बनाकर रख दी है !"

"सच कहता हूं बेटे ! कहीं हम एकजुट होकर रहते तो...", बाबा अकाली ने ठंडी आह भरी। "खैर...हमारे मिलाप के ये सुनहरे दिन थे। अंगरेजों को सबसे ज्यादा डर पंजाब से था। इसीलिए पंजाब का गवर्नर एक जालिम अंगरेज माइकल ओ. डायर को बनाया गया था। उधर कांग्रेस ने अपना सालाना जलसा अमृतसर में रख दिया। ओ. डायर ने कसम खा ली थी कि वह पंजाब में किसी को कान तक नहीं हिलाने देगा। बैसाखी से तीन दिन पहले (10 अप्रैल) अमृतसर के डी. सी. पी. ने सबेरे-सबेरे डॉ. किचलू और डॉ. सतपाल को अपनी कोठी में बुलाकर धोखे से बंदी बना लिया। इस बात से शहर के लोग भड़क उठे। हजारों लोग इकट्ठे होकर जिला कचहरी की तरफ चल पड़े। जुलूस रेल के पुल के पार हुआ तो आगे से फौज ने रास्ता रोक लिया। बिना कुछ पूछे-बताए ही फौज ने गोली चला दी। बाद में यह बहाना गढ़ लिया कि पहले भीड़ ने पथराव किया था, इसलिए फौज को गोली चलानी पड़ी। इस तरह के झूठे बहाने सरकार हमेशा गढ़ लिया करती है।"

"झूठे का मुंह तो कोई पकड़ नहीं सकता !"

"दो आदमी तो वहीं के वहीं मर गए और पता नहीं सौ या दो सौ जख्मी हो गए घायलों और शहीदों को उठाए जुलूस शहर की तरफ लौट चला। लोग बड़े गुस्से में थे और बेकाबू हो रहे थे। रास्ते में सरकारी बैंक (नेशनल बैंक) आ गया। बैंक का मैनेजर अंगरेज था। वह बाहर निकलकर लोगों पर रौब डालने लगा—टुम काला लोग, भाग जाओ, नहीं टो गिरफ्टार कर लिए जाओगे।...यह धमकी सुनकर लोग और भी भड़क उठे। उन्होंने मैनेजर को वहीं मार डाला और बैंक को आग लगा दी।"

"ले, कर ले अब गिरफ्तार !" एक अंगरेज की मौत के बारे में सुनकर सज्जन सिंह के अंदर पैदा हुई भावना को कुछ खुशी हासिल हुई।

"यह खबर सुनकर सरकारी अफसरों ने शहर फौज के हवाले कर दिया। सारे बाजार और चौक फौज ने संभाल लिए। अमृतसर की खबरें बाहर बिखरीं और गुजरांवाला, लाहौर, कसूर आदि कई जगहों पर गड़बड़ हो गई। कसूर की तो तुम्हें भी थोड़ी-बहुत याद होगी ?" बाबा अकाली ने सज्जन सिंह की तरफ बड़े ध्यान से देखते हुए पूछा।

"हां, सपने की तरह याद है। लड़कपन की बातें भूलती जा रही हैं।" सज्जन सिंह ने जैसे अपनी भूल महसूस करते हुए सिर झुकाकर कहा।

"तुम्हें भूल गई होंगी, मगर मेरे तो, बच्चू, सीने पर लिखी पड़ी हैं। तुम लोग खाली वक्त में ताश खेलकर मनबहलाव कर लेते हो, और मैं उस तरह की किताबें पढ़ता रहता हूं जिनमें हमारे कौमी शहीदों की कहानियां दर्ज हैं। उस दिन गहना कह रहा था—बाबा, तुझे यह सब कैसे याद है ?" मैं क्या बताऊं ? मुझे यह सब भूल भी कैसे सकता है ? ये बातें मेरे लहू में रच चुकी हैं। कहीं भी ऐसी घटना के हुए होने के बारे में पढ़ता-सुनता

हूं, तो मैं अपनी डायरी में लिख लेता हूं। पता है न तुम्हें, जख्म पर पपड़ी आने लगे तो कितनी सुरसुराहट-सी होती है। तंग आकर आदमी पपड़ी को ही छील फेंकता है। यही हालत मेरी भी है। कोई याद जरा-सी भी धुंधली पड़ने लगती है, तो मैं पपड़ी को छील लेता हूं, अपनी डायरी निकालकर पढ़ने लगता हूं। उस दिन फिर मुझे सारी-सारी रात नींद नहीं आती। तुम्हें शायद एतबार न आए, कई बार मुझे आठ-आठ दिन नींद नहीं आती। जेल में जब मार्शल ला की खबरें सुनी थीं, हमने तीन दिन तक रोटी नहीं खाई थी। कई रातें मैंने जागते हुए गुजार दी थीं। और जब हीरे जाकर यह सबकुछ जवानी बताया, तो मेरा अंतर जल उठा था। कसूर में गड़बड़ बैसाखी से एक दिन पहले हुई थी। भड़की हुई भीड़ ने डाकखाना और रेलवे स्टेशन जला डाले। और भी कई सरकारी इमारतों को नुकसान पहुंचा। दिल्ली, लाहौर के तार बज उठे। कैप्टन डोवटन देसी और गोरी फौज लेकर आ गया। उसने जाते ही शहर को घेर लिया। जो भी आदमी कहीं घर से बाहर सड़क-बाजार में नजर आया, उसे पकड़ लिया। कसूर रेलवे स्टेशन के सामने खुला मैदान पड़ा है न ! वहां कांटोंवाले तार की बाड़ लगा दी गई। जो पंछी काबू आ गया, झट पिंजरे में बंद। साथ ही वहां तीन फांसियां गाड़ दी गईं। कुछ आदमियों को पकड़कर बिना पूछ-पड़ताल किए फांसी पर लटका दिया गया। उनकी लाशें तब तक फांसी की रस्सियों पर लटकती रहीं, जब तक पहलेवालों की जगह नए आदमी नहीं लटका दिए गए। फांसी चढ़नेवालों के वारिस सामने खड़े रोते रहते थे और गोरे सिपाही उन्हें देख-देख उनकी खिल्ली उड़ाते रहते थे।"

सुनकर सज्जन सिंह की आंखों में भी पानी भर आया।

"यही हाल गुजरांवाला, लाहौर और शेखपुरा में भी हुआ। किस-किस जगह का जिक्र करूं ? दिल तो पके हुए फोड़े की तरह भरा पड़ा है !' कहते-कहते बाबा अकाली का दिल भर आया और कुछ देर सांस लेने के लिए या अपने जज्बात पर काबू पाने के लिए चुप हो गया। "सबसे बड़ा हादसा जलियांवाला बाग में हुआ। उस दिन बैसाखी का पर्व था। बैसाखी पर अमृतसर में लाख-डेढ़ लाख लोग सहज ही इकट्ठा हो जाते हैं। हमारे लीडरों ने उस मौके पर जलियांवाला बाग में एक जलसा करने का ऐलान किया। यह जलसा उन दिनों हुई घटनाओं पर रोष प्रकट करने के लिए था। बीस हजार से भी ज्यादा लोग बाग में इकट्ठे हो गए। उस जगह का नाम ही जलियांवाला बाग है, वैसे वहां कोई बाग नहीं है। शहर के मकानों से घिरा एक खुला स्थान पड़ा है, जिसका बाजार की तरफ एक संकरा-सा दरवाजा है। हिंदू, सिख, मुसलमान, ईसाई, स्त्रियां, पुरुष, बूढ़े और बच्चे, सब मिलकर अपने नेताओं के भाषण सुनने के लिए शांति से बैठे हुए थे। पता तब चला जब जनरल डायर दरवाजे के अंदर की तरफ आ खड़ा हुआ। उसके साथ सौ हिंदुस्तानी और पचास गोरे थे। हिंदुस्तानी सिपाही बंदूकें तानकर आगे खड़े हो गए। और उनके पीछे गोरे फौजी। आते ही डायर ने गोली चलाने का हुक्म दे दिया। गोली हिंदुस्तानी सिपाहियों से चलवाई गई।"

"उन हिंदुस्तानियों को भी अपने भाइयों पर तरस न आया ?"

"उनका बस चलता, बेटे, तो वो अपने भाइयों पर गोली चलाते ? वो कानून के शिकंजे में जकड़े हुए थे। फिर उनके पीछे पचास गोरे फौजी बंदूक ताने खड़े थे। हिंदुस्तानी जरा-सी भी ना-नुकुर करते, तो गोरे उन पर गोली चला देते। साथ ही सिर पर खड़ा डायर चिंघाड़ रहा था—जोर से गोली चलाओ, खूब निशाने पर मारो, कोई बचकर न जाने पाए।...बस गोलियों का मेघ बरस गया और लाशों के ढेर लग गए। सारी धरती लहू से रंग गई। त्राहि-त्राहि मच गई। एक गोली खाकर व्याकुल आदमी जान बचाने के लिए भागता, तो दूसरी खाकर वहीं ठंडा हो जाता। बच्चे बिलख रहे थे, स्त्रियां चीख रही थीं और डायर ललकारें देता गोली चलवा रहा था।"

"बाबा अकाली...।" सज्जन सिंह का गला भर आया और उसने चेहरा घुमाकर अपनी आंखें पोंछ लीं।

"सज्जन सिंह बेटे, एक तू ही नहीं, यह हाल सुनकर सारा देश रो उठा था। बात भी रोनेवाली ही थी। जुल्म की हद हो गई थी। देखते-देखते हजारों आदमी भून दिए गए। दूध-पीते बच्चे मांओं की गोद में ही सो गए थे। एक आखिरी चीख के बाद मांओं को उनकी ठंडी आह सुनना भी नसीब नहीं हुआ था। फिर डायर फौज-समेत सारी रात वहां अड़ा रहा। घायलों की 'हाय पानी ! की कराहें सुनकर धरती और अंबर रो रहे थे, मगर गोरी चमड़ी और काले दिलवाले अंगरेज जनरल डायर को तरस न आया। न घायलों के लिए कोई डॉक्टरी मदद ही पहुंचने दी गई, न किसी और किस्म की सहायता ही। कई घायल पानी-पानी करते ही तड़प-तड़पकर मर गए।"

"इस पाप की कीमत अंगरेजों को नहीं चुकानी पड़ेगी ? हमारा बस चले तो···।" सज्जन सिंह का खून खौल रहा था।

"हर पाप का बदला इंसान को चुकाना पड़ता है। जलियांवाला बाग की हत्याओं के सदके अंगरेजों को जल्दी ही यहां से बेइज्जत होकर जाना पड़ेगा। इससे बड़ा अत्याचार भी कोई हो सकता है ? वो निहत्थे लोग शांति से बैठे अपने लीडरों की तकरीरें सुन रहे थे। किसी का कुछ छीन नहीं रहे थे, किसी के विरुद्ध हथियार उठाकर धावा बोलने की सलाह नहीं कर रहे थे। बिना कारण उन्हें दानों की तरह भून दिया। सरकारी बयान है कि चार सौ मरे और दो हजार जख्मी हुए। मगर लोगों का खयाल है कि मरनेवालों की गिनती दो हजार के लगभग थी। जख्मी होनेवालों का तो कोई हिसाब ही नहीं।"

"उस वक्त हिसाब लेता ही कौन !"

"बस यहीं नहीं, लाहौर, गुजरांवाला, शेखूपुरा—कई जगहों पर खून की होली खेली गई। मार्शल ला लगाकर अंगरेज हाकिमों ने मौत का नंगा नाच खेला। सिर्फ पैदलों और घुड़सवारों ने ही गोलियां नहीं चलाईं, हवाई जहाजों से बम फेंके और मशीनगनों से गोलियों की बारिश की गई। खेतों में काम करते मजूरों पर हवाई जहाजों ने फायर किए। गांवों में घरों में घूमते लोगों को मशीनगनों से भूना गया। इतना कुछ करने के बाद बड़े-बड़े

शहरों में हिंदुस्तानियों की इज्जत धूल में मिलाई गई। सूबे में ही लोगों को पकड़कर आम जनता के सामने अलफ नंगा करके बेंत मारे गए। फिर बेगुनाहों को पकड़कर, सड़कों पर पेट के बल लिटाकर, रेंगने पर मजबूर किया गया।"

"बाबा, हमारे जिंदा रहने का कोई मतलब है फिर ?"

"बेटे, गुलाम के जिंदा रहने का कहीं भी कोई मतलब नहीं है। और लहू की कुरबानी दिए बगैर कभी भी, कहीं भी कोई कौम आजाद नहीं हुई। हमें अभी बहुत कुछ करना और सहना पड़ेगा।..इतना कुछ करने के बाद सरकार ने बहुत-से लोगों पर मुकदमे चलाए। कई को फांसी हुई, कई को उमरकैद और काले पानी की सजा हुई, कुछ को दस-दस, सात-सात, पांच-पांच साल की कैद हुई। सबका जुर्म एक ही था—कि वो गुलाम कौम के लोग थे, मगर अपनी आजादी की चाहत रखते थे।"

"पंजाब में इतना कुछ हो गया, पर गांधी न आए ?" सज्जन सिंह को उस समय महात्मा गांधी पर भी गुस्सा आ रहा था।

"महात्मा गांधी सुनकर रह सकते थे ? पर सरकार ने उन्हें पंजाब पहुंचने ही नहीं दिया। दिल्ली से पहले ही उन्हें पकड़कर बंबई ले गए। गांधी के मन पर इन अत्याचारों का बड़ा असर हुआ। उन्होंने उस वक्त सत्याग्रह करने का इरादा छोड़ दिया।"

"तब यह इतनी कुरबानी बेकार गई ?"

"कुरबानी कभी निष्फल नहीं जाती। इसका एक तो यह नतीजा निकला कि रॉलेट एक्ट लागू नहीं किया जा सका। सरकार की हिम्मत ही नहीं हुई। और दूसरा असर यह पड़ा कि सारा भारत पूरी तरह जाग उठा। बाद में चलनेवाले आंदोलनों में जितना बल और जोर था, सब इसी कुरबानी के सदके। असहयोग आंदोलन चला। विदेशी माल का बायकाट किया गया। दुकानों पर पिकेटिंग हुई। और विलायती कपड़े की होली जलाई गई। कई लोग कहते हैं, गांधी के खादी के प्रचार ने देश का क्या भला किया। खादी के प्रचार और विलायती माल के बायकाट की वजह से इंग्लैंड के कई कारखाने बंद हो गए। सच पूछो तो विलायत में हाहाकार मच गया था। असहयोग आंदोलन के साथ-साथ पंजाब में गुरुद्वारा आंदोलन भी बड़े जोरों से चला। गुरु गोविंद सिंह के पूतों ने कुरबानी की हद कर दी। उससे तो अंगरेजी सरकार का भय ही उठ गया। यह सारी कथा तुझे किसी और दिन सुनाऊंगा।"

"बाबा अकाली, आज तो तूने अंदर आग सुलगा दी। मेरे सारे शरीर में इस वक्त चिनगारियां फूट रही हैं," सज्जन सिंह ने सारे शरीर को जोर से हिलाते हुए कहा।

"बेटे, जिस दिन तेरी तरह भारत की जनता के पांचवें हिस्से का भी खून गरमा उठा, अंगरेज अपने आप कान लपेटकर चलते बनेंगे।"

"और किसी का हमें तो पता नहीं हैं...कोई भी मोर्चा लगे, आवाज लगा देना। अपन अब पीछे नहीं हटते।" सज्जन सिंह उस वक्त हर तरह की कुरबानी के लिए अपने-आपको तैयार महसूस कर रहा था।

"हमें हर वक्त तैयार रहना चाहिए। कहते हैं न—जब तक जिंदा हो, नित्य कोई-न-कोई मुसीबत आती ही रहेगी। अभी कई मोर्चे लगेंगे। कुरबानी देनेवालों के लिए मौके हमेशा आते रहते हैं। हमने तो हमेशा के लिए सिर पर कफन बांध रखा है। समझे ?" उस समय बाबा अकाली के चेहरे पर महान तपस्वियों जैसी लालिमा चमक रही थी।

दस

"इलमदीन, आज है फसल गाहने का मजा ! देख, कड़ाकेदार दिन लगा है," सज्जन सिंह ने तंगली[1] से 'वैरी'[2] को पुट देते हुए कहा।

"मैं कहूं, हद ही हो गई ! कहीं पत्ता तक नहीं हिलता। आंख तक खोलना मुश्किल हो रहा है," इलमदीन ने दाहिने हाथ की पहली अंगुली से माथे का पसीना पोंछते हुए कहा। वह आसपास से रोल फेंक रहा था।

"सयानों ने कहा है—वक्त रहते ही अनाज निकाल लेन चाहिए। गरमी से जान निकल रही है," सज्जन सिंह ने धूप से बचने के लिए सिर पर चौहरा करके खद्दर का साफा ठीक करते हुए कहा। "पर भूसा आज जल्दी महीन हो जाएगा।"

"ऐसे ही किसी वक्त में धन्ने शाह को फल्हे के पीछे लगाना चाहिए। वहीं पंखे के नीचे बैठा टके-टके की बातें ठेलता रहता है।" इलमदीन को अपने और धन्ने शाह के जीवन में प्रत्यक्ष अंतर नजर आ रहा था।

"धन्ने शाह ! हा हा हा हा !" सज्जन सिंह की जबरदस्त हंसी छूट गई। "उस दिन की बात याद है न ! वरना से आते-आते रास्ते में ही बेदिल हो गया था !"

"मैं कहूं, पानी को ऐसे टूटकर पड़ा था जैसे हिरियाल गाय रस्सी तुड़वाकर हरियाली को पड़ती है। कहीं कोस-भर और जाना होता, तो...।"

"बोलो—राम नाम सत्त है हो जाती !" इलमदीन का अधूरा छोड़ा हुआ वाक्य सज्जन सिंह ने पूरा कर दिया।

"कई आसामियां चैन की सांस लेतीं।" इलमदीन का खयाल था कि शाह के मरने से आसामियों को शायद कर्जा लौटाने से छुटकारा मिल जाता।

"आसामियों को क्या फरक पड़ता ? धन्ने शाह की जगह मदन शाह खाल छीलने लगता।"

"हां, यह तो है। भेड़ों की ऊन तो कोई छोड़ेगा नहीं।"

---

1. भूसा निकालने का/उपकरण।

2. गाहने का उपकरण।

"पर भाई, भेड़ें खुद ही जाकर ऊन उतरवाती हैं। शाहों का क्या दोष ? हमें ही देख लो—आज तक बचते-बचते भी जा फंसे हैं या नहीं ?"

तू तो भाई, न भी फंसता, तो गुजारा हो सकता था, पर मैं तो अंदर ही अंदर से थोथा हो गया था। इन भावों ने ही मार दिया। मामले चुकाने के बाद छमाही के खाने लायक भी नहीं बचते पैसे। घर में चांदी का छल्ला तक नहीं बचा है। अब तो पीतल-तांबे के भांडे बेचकर मिट्टी की कनालियां लाने की सोच रहे हैं। सच पूछो तो एक-एक बंदे के कर्जदार हैं हम।" इलमदीन ने अपने मित्र के सामने रखी गरीबी का रोना रोया।

"भाई, हर घर का यही हाल है। इस मंदी ने तो जाटों के दांतों पर रेख भी नहीं छोड़ी।" सज्जन के मुंह से छोटा किसान बोल रहा था, जिसके पास मुश्किल से एक हल की, या उससे भी कम, जमीन थी।

"तेरे सामने उस दिन खड़-खड़ करता सौ का नोट खर्च करके आया हूं और घर की सूअरनियों के थोबड़े फिर भी सीधे नहीं हुए। बस, दोनों में से एक की गर्दन टेढ़ी ही रहेगी"—इलमदीन ने किसी वक्त की हुई भूल पर सिर धुनते हुए कहा।

"हारे हुए जुआरी की तरह खामखाह मुबके जा रहा है, दो औरतों की मौज भी तो तुझे ही है न ! जिस गरीब की मर-मराकर एक ही बीवी हो और वह भी दस दिनों के लिए मैके चली जाए, तो रोटी के वक्त बंदा यों ही अकुलाकर दीवारों से टकराता फिरता है। दो वाले को यह खतरा तो नहीं है। एक गुस्सा-राजी होकर कहीं चली जाएगी, फिर भी एक तो पास ही रहेगी !" सज्जन सिंह ने बात को मजाक की तरफ मोड़ दिया।

"ओए, हमारी किस्मत में तो यह भी नहीं है। एक ने तो भला जाने-आने की जगह खुद ही गंवा ली, पर दूसरी कुलटा भी उसकी देखा-देखी कहीं नहीं जाती। मुझसे पूछो, तो बंदा कैद काट ले, मगर दो बीवियां न करे," इलमदीन ने अपने बारह-चौदह बरस के अनुभव के आधार पर कहा।

"हूं ! अब पता चला ! तब तो तू मिर्जे की तरह हवा के घोड़े पर सवार हुआ फिरता था !"

"अब तो नाक से लकीरें निकालने को तैयार हूं, लेकिन कलम का लिखा मिटता नहीं है।" इलमदीन अपनी भूल पर सचमुच पछता रहा था।

"चाचा ! इधर पप्पू को देख, फल्हा हांक रहे बशके ने पास आकर सज्जन सिंह का ध्यान दूसरी तरफ मोड़ा। वह अपने अधिकांश साथियों की तरह पिता को 'चाचा' कहा करता था।

"देख ओए इलमदीन ! फल्हे पर बैठा ऊंघे जा रहा है !" सज्जन सिंह ने पप्पू की तरफ देख मुस्कराते हुए कहा।

"हम इस उमर में क्या करते थे ? बाबा चंदा सिंह बरजता-घूरता रहता, पर हम दोनों जिद में आए सारा-सारा दिन फल्हे से न उतरते। कड़कती धूप, बारीक भूसा उड़-उड़कर सारा बदन भर देता था। सारी रात खुजलाते-खुजलाते खून टपकने लगता था। पर दिन

में फिर आकर फल्हे पर आ बैठते थे। फिर साथियों के बीच बैठकर तड़ी मारते थे, हमने बड़े झूंटे लिए हैं।"

"यह उमर ही ऐसी होती है। है किसी बात की चिंता-फिकर !"

"कहते हैं न—बच्चा बादशाह होता है।"

फल्हे पर भार के रूप में रखी हुई ईंटों पर सिर डाले-डाले पप्पू सो गया था। सुबह वह जिद करके भाई के साथ आ गया था।

"बशके ! फल्हा रोकके इसे आम के पेड़ के नीचे डाल आ, ओए ! अब इसे कभी साथ मत लाना," सज्जन सिंह ने बड़े बेटे को आदेश दिया।

"हो-हो, हो-हो-हो"—बशके ने पुचकारकर बैलों को रोक लिया।

एक-एक पांव पीछे हटाकर बैलों ने फल्हे के खिंचाव को ढीला कर दिया। अपने कानों का सेंक निकालने का इतना-सा ज्ञान तो पशुओं को भी था। ऊपरी बैल पूंछ उठाकर गोबर करने लगा। सज्जन सिंह ने झट से थोड़ा-सा चारा उस गोबर करते बैल के आगे डाल दिया। साथ ही 'तेगली' पर गोबर संभालकर उसने खलिहान से बाहर दे मारा।

निचला बैल शरीर को ढीला छोड़कर पेशाब करने लगा।

इस बीच बशका पप्पू को आम की छांव में सुलाकर लौट आया।

"रुक जा, पेशाब कर लेने दे इन्हें।" सज्जन सिंह ने बशके को टोक दिया। वह बैलों को हांकने को उतावला हो रहा था।

सज्जन सिंह और इलमदीन की जमीन छोटे-छोटे चार टुकड़ों में बंटी हुई थी। और हर जगह उन दोनों घरों की खेती पास-पास थी। छह-सात पीढ़ी की खोज की जाए, तो वे दोनों घर एक ही घर की औलाद थे—बाबा यात्री की। यात्री एक सौ तीस साल का होकर मरा था। रेती के किनारे उसकी समाधि की उखड़ी हुई नानकशाही ईंटें अब भी करील के तने के पास पड़ी थीं। आधे से ज्यादा सिख और मुसलमान उस स्थान को बुजुर्ग का स्थान समझकर पूजते थे। अंतर केवल इतना था कि सिख उसे धरती तक झुककर माथा टेकते थे और मुसलमान दोनों हाथ फैलाकर, थोड़ा-सा झुककर सिजदा कर लेते थे। बेटे के जन्म, सगाई और ब्याह के समय वहां की पूजा जरूरी समझी जाती थी। हर नववधू को वहां माथा टेककर अपना नया पूर्वज स्वीकार करना पड़ता था।

यात्री के दो बेटे थे : सुद्धू और बुद्धू। बड़े सुद्धू की औलाद सज्जन सिंह का परिवार और छोटे बुद्धू का वंश इलमदीन के पच्चीस घर थे। एक ही स्रोत होने के कारण सिखों-मुसलमानों की बहुत-सी रीतें-रस्में भी मिलती-जुलती थीं। सारे गांव का नेमाचार भी भाइयों जैसा था। मगर अब कुछ बरसों से कुछ-कुछ दरार पड़ती जा रही थी, हालांकि सज्जन सिंह और इलमदीन आज भी पुराने भाईचारे को उसी तरह निभाए चले आ रहे थे।

कसूर से कादीविंड-कतलूही को जानेवाले रास्ते पर पच्छिम की तरफ था उनका एक खेत। सज्जन सिंह के खेत में एक सघन छतनार आम का पेड़ खड़ा था। उसका बापू कहा करता था—"सज्जन बेटे, जिस साल तू पैदा हुआ था, उसी साल यह आम उगा था। यह

तेरा साथी है। इसका पालन भाइयों की तरह करना। यह भी तेरी बड़ी सेवा करेगा।" सज्जन सिंह ने पिता के वचनों को भुलाया नहीं था और आम भी अपनी घनी, ठंडी छांह से उसकी सेवा करता आ रहा था। उसके आम ज्यादा मीठे नहीं थे, लेकिन दाना मोटा होने के कारण अचार के लिए बहुत बढ़िया समझे जाते थे। वह पेड़ अपने नीचे घिरी धरती का मोल चुका दिया करता था।

आम की छांव का आसरा देखकर ही इलमदीन ने सज्जन सिंह के खेत में खलिहान लगाया था। और गांव इकट्ठा होने के कारण रखवाली का भी सुख था। साथ ही दोनों की राय भी मिलती थी।

दिन छह-सात घड़ी ढला था कि जैना और भजन कौर दोपहर-बाद की रोटी लेकर आती नजर आईं।

फाल्ही सुबह की रोटी खाकर घर से चले हैं। खूब अच्छी धूप चढ़ने पर नौ-दस बजे गाही का काम शुरू होता है। किसी उद्यमवाली ने दाल-भाजी बना दी, तो ठीक, वरना लस्सी के साथ ही दो रोटियां अंदर डालकर बेचारे चल पड़े। फिर दो-तीन बजे ताजा रोटियां पककर आ जातीं। फसल की कटाई करनेवालों और फाल्हियों में से कुछ के घरों से साथ में घी में तर की हुई शक्कर भी आ जाती। वरना चने की दाल तो चार दिन हरेक को मिल जाती। किसी को छोंक-लगी, किसी को बिना-छोंक लगी। दोपहर को एक बार गुड़ का शर्बत वे खुद ही बना लेते।

किसान लोगों के लिए आश्विन-कार्तिक और बैसाख-ज्येष्ठ बड़े सख्त काम के होते हैं। पंजाब के गरम मैदानों में ये महीने बहुत कठिनाईवाले होते हैं। रात को कई बार पानी लगाना, तड़के से दोपहर तक हल चलाना और दोपहर से शाम तक फल्हे चलाना। यही देखकर किसी ने कहा था—"जाट की जून न पाइयो रे, जाट की जून बुरी।"

सज्जन सिंह के खेत में खासी नमी थी। पौ फटने से पहले उठकर सज्जन सिंह और इलमदीन ने हल जोते थे। सूरज चढ़ने के साथ करमदीन और बशका भी खेत में आ गए थे। पहले उन दोनों ने अध-सूखा-सा 'चटाहला' काटा था। फिर दोनों ने खेत के कोने गोड़े थे। और फिर अपने-अपने गाह फैलाए थे।

सज्जन सिंह और इलमदीन की खेती अलग-अलग थी। मगर काम के भार के समय वे दोनों बंटाई कर लिया करते थे। खासतौर पर हलों की बंटाई, क्योंकि चार बैलों के बिना सुहागा अच्छा नहीं फिरता था।

जैना और भजन कौर के सुबह की रोटी लेकर आने तक उन्होंने आधे से ज्यादा खेत में हल चला लिया था। फिर भी सुहागा फेरते तक दिन के बारह बज गए थे। आम की छांव में दो-एक घड़ी पशुओं को चारा चरने देकर और बहते नाले से पानी पिलाकर उन्होंने फल्हे हांक लिए थे।

"इलमदीन ! काम पूरा जरूर करता है। जितनी घुटन है आज, किसी न किसी तरफ से आंधी जरूर आएगी"—सज्जन सिंह ने पड़ोसी से कहा था।

"आंधी की तो खैर है, कहीं चार छींटे पड़ गए तो··· ब्याह में बारिश और गाह में बारिश की तो मुसीबत ही बहुत होती है"—इलमदीन ने एक और बड़े खतरे की तरफ इशारा किया।

उसी समय से दोनों मारा-मारी करके फल्हे चलाए जा रहे थे। एक तरफ बशका फल्हा हांक रहा था और दूसरी तरफ करमदीन। सज्जन सिंह और इलमदीन तंगलियां पकड़े 'पुट्टें' दे रहे थे। तंगलीवाले का काम फल्हा हांकनेवाले से ज्यादा कठिन होता है।

बशका सदर दीवान के पिछले मेले से नए घुंघरू और घंटियां लाया था। बड़े चाव से उसने दोनों बैलों के गले में कंठियां डाल रखी थीं। उसके बैलों की देखरेख भी अच्छी होती थी। वह सोंटी जरा-सी छुआकर बैलों को आवाज देता तो दोनों बैल पूंछें घुमाते दौड़ उठते। उनके घुंघरूओं और घंटियों की आवाज कानों को बड़ी मधुर लगती थी। हलवारों का यही सबसे अधिक मनभाता साज है।

इलमदीन के बैल कुछ कमजोर थे। देखभाल ठीक न होने के कारण दुबले भी थे। जिस तरह वे गाह में धंसते-धंसते-से चलते थे, उसी तरह पीछे-पीछे करमदीन सुबह से घुटा-घुटा-सा, चुपचाप काम किए जा रहा था। सज्जन सिंह ने इलमदीन से एक बार पूछा भी था—"यह किस बात से गुस्सा हुआ फिरता है ?" तब इलमदीन ने आंख दबाकर कहा था, "दबी ही रहने दे बात। रात को बताऊंगा। मैं तो, ईमान से, बहुत ही तंग आ गया हूं।"

दोनों ने 'पैरियों' को दो-दो-पुट्टें' दे ली थीं। समय तीन बजे से ऊपर हो रहा था। हलवारों की भूख चमक आई थी। इतने में जैना और भजन कौर रोटियां लेकर आ गईं फाल्हियों ने फल्हे रोक दिए और हाथों से कपड़ों पर पड़ी भूसी झाड़ते हुए आम के पेड़ की तरफ चल पड़े।

"आज जोड़ियां कुबेला करके आई हैं"—सज्जन सिंह ने भुईं पर साफा फेंककर भजन कौर के सामने बैठते हुए कहा।

"चार कोस आना-जाना, और दूसरा फेरा। हालत हो गई है धूप में, और···", भजन कौर ने प्यार-भरी निगाह से पति की तरफ देखते हुए कहा। उसके कोमल चेहरे पर मीठी-मीठी मुस्कराहट फैली हुई थी।

"रोटियां लाने का काम मुश्किल है तो यहां फल्हे के पीछे लग जाओ"—सज्जन सिंह ने दोनों कामों की कठिनाई की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"ज्यादा रौब न मार, रे जाट ! तुझसे रोटियां नहीं पकाई जा सकेंगी, हम मां-बेटा तो फल्हा हांक लेंगे," भजन कौर ने अभिमान के साथ, जवान होते बेटे की ओर देखते हुए कहा।

"क्यों ! मैं और बेबे इक्कीस ! ओए बशके सुना तूने ? तेरे मान पर अब तेरी मां अकड़ती फिरती है !' सज्जन सिंह ने बशके को संबोधित करके कहा। बेटे पर जवानी चढ़ती देखकर उसे नशा चढ़ रहा था।

"अकड़ूं नहीं ? मेरा पूत तुमसे भी ज्यादा जवान निकलेगा !" जवान बेटे की मां होने का भजन कौर को बड़ा मान था।

"उठ, पप्पू ! रोटी खा ले !" मां-बाप की बातों का उत्तर देने के बजाय बशका छोटे भाई को जगाने लगा।

"सुना है, मालवे में सब लोग गांवों के पास ही खलिहान लगाते हैं। तुम भी वहां शहतूतों वाले कुएं के पास लगा लिया करो।" खलिहान दूर होने के कारण दो बार रोटियां लाने की मुश्किल अभी तक भजन कौर के सामने थी। इस मुश्किल से बचने के लिए उसने नई तजवीज रखी।

"मालवे की नकल न कर। वहां जट्टियों को गोबर-कूड़ा खुद फेंकना पड़ता है। कई खेतों से चारा काटकर भी लाती हैं। मंजूर है सौदा ?" सज्जन सिंह ने हाथ धोते हुए कहा।

"चारा काटने से तो मैं भी नहीं डरती। पर गोबरवाली बात झूठी। मैं रोटिया एक बार और ले आया करूंगी।" भजन कौर ने जैसे समझौता कर लिया।

"मालवे की जमीन ज्यादा रेतीली है न। इसलिए उन्हें गांवों के पास हमेशा पक्के बनाए गए खलिहानों में असाढ़ी इकट्ठी करनी पड़ती है। यहां तो हम कड़ी जमीन में जहां जी चाहे, खलिहान लगा लें।"

"फिर भी गांव के पास एक ही जगह सारी फसल इंकट्ठी कर लें, तो अच्छी बात नहीं है ?"

"इस तरह चारा ढोने से भूसा-दाने ढो लेना आसान होता है। साथ ही यहां हल चलाकर यहीं फल्हे डाल लिए, तो काम जल्दी निबट गया। यहीं से गांव जाकर गाह डालना होता, तो गाह में ही दिहाड़ी निकल जाती। अगर मुरब्बेबंदी होकर हमारे खेत एक ही जगह हो जाएं—मुरब्बों की तरह—तब तो हम बहुत सुखी हो जाएं। ज्यादा खेतोंवाली खेती होने की बड़ी मुसीबत है," सज्जन सिंह ने जाट की सबसे बड़ी दिक्कत के बारे में बताया।

भजन कौर ने मिला हुआ शक्कर-घी दो हिस्सों में बांटा और एक कटोरी पति के सामने तथा दूसरी बेटे के सामने रख दी। छोटा पप्पू भाई की कटोरी में से ही खाने लगा।

जैना ने रोटियोंवाली टोकरी चुपचाप मालिक के सामने रख दी। रोटियों के साथ सिर्फ अचार और गुड़ था। इलमदीन ने एक बार रोटियों की तरफ और एक बार जैना की तरफ देखा, मगर मुंह से कुछ नहीं बोला। रोटी के साथ कोई दाल-भाजी न होने के कारण वह नाराज लग रहा था।

करमदीन दो रोटियां और अचार की फांक लेकर मुंह घुमाकर खाने लगा। उन तीनों में से कोई एक शब्द भी नहीं बोला। वे अपनी-अपनी जगह अंदर ही अंदर घुटते-कुढ़ते बैठे हुए थे।

"जैना ! भला बशके की मां तो अकेली है। तुम तो, सुख से, दो जनी हो। तुम दोनों से बारी-बारी रोटी लेके नहीं आया जाता ?" सज्जन सिंह ने यों ही बात चलाने के इरादे से कहा। पड़ोसियों की इस तरह की अप्रिय चुप्पी से उसका जी दुखी हो रहा था।

"बशके की भी दो माएं होतीं, तो तुम्हें भी पता चल जाता। अलिए का बाप तो

बेचारा चुप किए रहता है, तुम तो डंडा ही उठा लेते !' भजन कौर ने दूसरे घर की हालत के बारे में जरा मनभाते ढंग से कहा। सारे रास्ते बेचारी जैना उसके आगे अपना रोना रोती आई थी।

"ओए, कभी दूसरे की भी सुनने दिया कर··· तू तो हर वक्त अपना ही घोड़ा ठेले रहती है !' सज्जन सिंह ने यों ही बनावटी-सी झिड़की देते हुए कहा। "हां, जैना, कुछ बोली नहीं ?'

"सज्जन सिंहा ! बोलना क्या है ? उस घड़ी को लेकर पछता रही हूं, जब मां-बाप ने तेरे भाई के साथ बांध दिया।" जैना सचमुच उस वक्त को लेकर पछता रही थी।

"अभी कौन-सी उमर बीत गई है ! नया घर ढूंढ़ ले !' इलमदीन की आवाज में गहरी घृणा और गुस्सा घुले हुए थे।

"मरद होकर ऐसी बात करते तुझे शरम नहीं आती ! ले पकड़," जैना ने दाहिनी बांह लंबी करके कहा, "अपने हाथों मेरी बांह, जिसे मर्जी हो, थमा दे। बहनों और बेटियों को तो सारा जहान विदा करता आया है, पर बीवी को कभी किसी ने दूसरा घर नहीं दिखाया। तू यह नई रस्म भी चला दे।"

"अपने शौक के लिए हर कोई नया घर ढूंढ़ लेता है। किसी और के बताने से कुछ नहीं होता।"

"मुझे तुझसे ज्यादा शौक नहीं चढ़ा हुआ था ! तब तू ही हर वक्त पीछे-पीछे दुम हिलाता घूमता था। मासी की दहलीजें खोद डाली थीं तूने !' जैना गुस्से में आपे से बाहर हो गई थी।

"अब तो मेरी असलियत का पता चल गया है न। अब संभल जा।" इलमदीन कुछ ज्यादा ही जिच हुआ लग रहा था।

"ओए, चुप करो दोनों। मैंने तुम्हें लड़वाने के लिए बात नहीं छेड़ी थी। मुझे क्या पता था तुम अंदर-ही-अंदर फोड़ों की तरह पके पड़े हो। पता होता, तो··· !' सज्जन सिंह को पूरा पता होता तो वह इस ढंग से बात न छेड़ता।

"जो ठंडे दूध को फूंकें मारे जाए, उसका क्या इलाज !' इलमदीन ने जैना के सिर बिना कारण शोर मचाए जाने का दोष मढ़ते हुए कहा।

"ठंडा दूध ? घर की बातें न छेड़ ऐसे। ढंकी ही रहने दे। मुट्ठी बंद ही रहने दे !' जैना ने माथे पर त्यौरियां डालकर सिर हिलाते हुए सख्ती से कहा।

"नहीं, तू ही बता दे। पूरा कर ले चाव !' इलमदीन ने दबने के बजाय उसे ललकारा।

"ले, सज्जन सिंहा !' जैना भी गुस्से में आकर दिल की बात बताने के लिए तैयार हो गई। "तू भाइयों जैसा देवर है। पंचोंवाला न्याय तुझ पर ही रहा। मेरी गलती हो तो मुझे नीचे खड़े कर लेना। और मैं इससे क्या कहूं ?'

" कह ले जो भी कहना हो।"

"तू अब चुप भी रह न भाई !' सज्जन सिंह ने हाथ के इशारे से इलमदीन को खामोश

रहने की सलाह दी।

"वो जब भी बोलेगी, कांख से ही बोलेगी। बस, हर वक्त ताने। अंदर-ही-अंदर छुरियां चलाती रहेगी" इलमदीन ने कहा। "मैं तो इस जिंदगी से तंग आ गई हूं। छोटे-छोटे बच्चों का मोह मारता है, नहीं तो किसी कुएं-तालाब में समा जाऊं।" आवाज से लगता था, जैसे जैना वाकई जिंदगी से बेजार थी।

"रोके दिखा देवर को," बगल से इलमदीन ने आग लगाई।

"रोती है मेरी जूती ! रो-रोकर दिखानेवाली एक है न घर में !' जैना फौरन भड़क उठी।

"ओए, चुप नहीं रहा जाता तुझसे ? एक तो बंदा वैसे ही दुखी, ऊपर से तू आग में तेल डालता है !' सज्जन सिंह ने जरा-से कठोर स्वर में कहा।

"ले, अब मैं नहीं बोलता। तुम दोनों देवर-भाभी कर लो न्याय।"

"बेचारी बहुत ही परेशान है, सचमुच," भजन कौर ने पति के कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से कहा। वह इलमदीन की तरफ पीठ करके बैठी थी ताकि घूंघट न करना पड़े।

"जैना !' सज्जन सिंह फतेह बीबी को तो भाभी कहा करता था, मगर जैना को उसके नाम से ही बुलाता था। "गुस्से-गिले की बातें छोड़ो। पानी को मथने से कुछ नहीं निकलता। तुम लोग वह बात करो, जिससे तुम्हारा झगड़ा निबट जाए। घर में नित्य का क्लेश अच्छा नहीं होता।"

"क्लेश तो एक बात से ही मिट जाएगा—यह हम दोनों को एक ही आंख से देखा करे।" जैना ने रोग का असली कारण बता दिया।

"दो आंखें होते हुए मैं अब बूटे नत्थूवालिए की तरह एक आंख से कैसे देखूं ?' इलमदीन ने एक तरह से अपनी मजबूरी प्रकट की।

नत्थूवालिए बूटे के घर में दो बीवियां थीं, मगर उसकी आंख एक ही थी। सौतनें आपस में लड़तीं तो बूटा रासलीला के मनसुख की तरह बड़ी ड्रामाई अदा से अपनी आंख की तरफ इशारा करके कहता—"भली लोको !मैं तो तुम दोनों को एक ही आंख से देखता हूं। ये झगड़े-रगड़े तुम आपस में ही निबटा लिया करो।"

इलमदीन का यह परोक्ष संकेत देखकर गंभीर वातावरण में थोड़ा-सा हलकापन आ गया।

"देखा, अब बात को टाल रहा है। कहीं टिकने भी देता है यह ?' जैना को इलमदीन का यह ढंग अच्छा नहीं लग रहा था। उसने सज्जन सिंह की तरफ देखकर शिकायत की थी।

"अच्छा, अब नहीं बोलेगा वह। और तू भी काटनेवाली बात मत कर।" सज्जन सिंह ने जैना को ठंडे दिल से बातें करने को प्रेरित किया।

"पहले आज की बात सुन ले। फिर खुद ही जांच लेना कि किसका कसूर है। यहां रोटियां देकर मैं कुएं पर बच्चों के कपड़े धोने जा बैठी। वहां मुझे दो घड़ियां लग गईं। दुपहर ढले मैं घर लौटी, तो न चूल्हे में आग और न हांड़ी में पानी। दोनों देवरानी-जेठानी लत्ते तानके सो रही थीं। गुस्से के मारे मैं भी कपड़े सूखने को डाल लेट रही। जब दीपो आवाज लगाने आई, तो हमारे घर में अभी आग का धुआं भी नहीं था। मैंने पूछा, तो आगे से मेरे सिर के बालों पर ही टूट पड़ीं—हमसे नहीं ले जाई जातीं किसी निकम्मे की रोटियां दोपहर में। ले जाए जिसे जरूरत है।" हां, उस नवाबजादी, परदे में रहनेवाली से धूप में रोटियां लाई जाती हैं ? और मैं ठहरी कर्मानों की बेटी ! गुस्सा तो बहुत आया, पर मुए कलेजे से रहा नहीं गया। जल्दी-जल्दी चार रोटियों का आटा मरोड़के मैं बहन के साथ चल पड़ी ! बता, क्या यह अब मेरा गुनाह है ? अब अचार देखके त्यौरियां चढ़ाता है—मैं इतनी जल्दी इसके लिए बकरा भून लाती ?"

"बकरा नहीं, तो गई-गुजरी ! तू हीर की तरह चूरमा ही बना लाती," देवर के नाते सज्जन सिंह ने मजाक में कहा।

"अरे, मैं तो हीर से कम नहीं थी, तेरा भाई ही रांझे की तरह चूल्हे का पत्थर निकला," जैना ने व्यंग्य से कहा।

"लो, अब सुन लो !" भजन कौर ने हौले से कहा।

"असल बात नहीं बताती, जिसकी वजह से छह महीनों से बखेड़ा खड़ा कर रखा है। और यों ही रोटियों का झगड़ा ले बैठी है," पास बैठे इलमदीन ने लंबी कहानियों से तंग आकर कहा।

"तू ही बता दे फिर।" जैना भी चाहती थी कि असल बात सज्जन सिंह के सामने आ जाए।

"उस दिन कपास बेचके आए हैं न ? बस, तभी से बखेड़ा उठा हुआ है"—इलमदीन ने पानी के घूंट के साथ सूखी बुरकी गले के नीचे उतारते हुए कहा।

"किस बात का ?" सज्जन सिंह ने असलियत तक पहुंचने के इरादे से पूछा।

"तुझे पता है, कपास मुश्किल से तीनेक बीसी की हुई। सौ रुपया शाह से लेके बाजार गए। पहले तो करमदीन ने सारे कुनबे के कपड़े बनवाए। फिर इन दोनों के बनवाए। मुझे तो खा लिया है इस सूअर-पसारे ने...।"

"सुन रहा है न ?" जैना ने सज्जन सिंह को संबोधित करते हुए कहा। "सूअर-पसारा मेरा अकेली का ही है, इसका नहीं।"

"भई तू कटखनी बात क्यों करता है ?" सज्जन सिंह ने इलमदीन को टोकते हुए कहा।

"मेरे जी में आया, यों ही मुंह फुलाए घूमेंगी—एक-एक सूट इनका भी बनवा ले चलूं। उसके सूट के लिए मैंने छह गज फड़वा लिया, तो...।"

"मेरे सूट के वक्त पैसे चुक गए," इलमदीन का अधूरा छोड़ा वाक्य जैना ने पूरा कर दिया। "ये भेद-भाव इसीलिए न कि मैं गरीबों की बेटी हूं। बल्कि सोचो, तो मेरे लिए इसका ज्यादा फर्ज बनता है।"

"क्यों भला ?" सज्जन सिंह ने मुस्कराते हुए पूछा।

"इसलिए कि उसे तो इसके मां-बाप ने जबरदस्ती इसके गले मढ़ दिया था। और मुझे यह आप पसंद करके लाया है। मासी की दहलीज पर नाक रगड़-रगड़कर। मैं अपने आप घर पूछते-पूछते नहीं आ गई थी।"

"ले, सारा गुस्सा इतनी-सी बात का था !' इलमदीन इस बात को बहुत मामूली समझ रहा था।

"गुस्सा न करूं ? सौतिया डाह किसमें नहीं होती ? और फिर जवान बेटा पास बैठा है, बाकी बातें कैसे बताऊं ?" सबसे ज्यादा जैना बशके की शर्म महसूस कर रही थी।

"ओए, बता दे तू सबकुछ।"

"बताए बगैर नहीं समझता वो ?"

"भई ? तुम फिर गरमी में आते जा रहे हो ! इलमदीन, सच कहूं, तुझे लाने थे तो दोनों के सूट लाता, नहीं तो आधे कुएं में जहर नहीं डालना चाहिए था।" सज्जन सिंह ने इन्साफ की बात की।

"पर लाता कैसे ? अपने-आपको गिरवी रख देता ?"

"फिर उसका भी न लाता। इसे यह तो न लगता कि इसके साथ भेदभाव बरता जा रहा है।"

"हां भई ! तू भी तो भाभी की ही तरफदारी करेगा। मरद की कौन सुनता है !'

"पर मरद को कानी-बांट नहीं करनी चाहिए। तू दोनों को एक-जैसा जान। मैं भूखी-प्यासी रहने को तैयार हूं, लेकिन यह भेदभाव नहीं सहा जाता"—जैना ने साफ शब्दों में दिल की बात कह दी।

"भई इलमदीन, भाभी सच कह रही हो, तो उसकी हिमायत करना भी बुरी बात नहीं है। तुझे दोनों के साथ एक जैसा बर्ताव करना चाहिए। यहां गलती तेरी है। दोनों को एक-जैसा खाने-पहनने को दे। एक-जैसा दोनों जनी काम करें। अब यह भी उसकी देखादेखी रोटी न लाती तो सांझ तक तुझे नानी याद आ जाती।"

"ओए, वो कुतिया न समझे तो क्या करूं मैं ? आदमी रोज-रोज मार पीट भी कैसे करता रहे !' इलमदीन ने जैना को खुश करने के इरादे से दूसरी के लिए कड़वा शब्द इस्तेमाल किया।

"दोनों को अलग-अलग कर दे। साल-भर का अनाज अलग-अलग तोल दिया कर। एक महीना मैं पकाया करूंगी, एक महीना वो पका ले। तेरी रोटी का ही झगड़ा है न। नहीं तो अपने-अपने बच्चों के लिए तो हरेक को पकानी ही है"—जैना ने तजवीज पेश

की, मानो इससे झगड़े को हमेशा के लिए निबटाया जा सकता था।

"जो चार हाथ जमीन है, वो भी न बांट दूं तुममें ?" इलमदीन ने चिढ़कर कहा।

"मंजूर है। मैं जट्टों की बेटी हूं, जुलाहों-मोचियों की नहीं। अपने-आप खेती कर लूंगी मैं। तू धुले हुए कपड़े पहनकर शहतूतों तले बैठा रहा करना। एक महीना मेरे जिम्मे, एक महीना वो जाने"—जैना ने छाती तानकर कहा, जैसे वह यह जिम्मेदारी उठाने को भी तैयार हो।

"शहतूतों तले क्यों, कह, फकीरों के तकिए में बैठे रहा करना," इलमदीन ने व्यंग्य से नाक सिकोड़ते हुए कहा।

"मैं तो अपनी बारी के छह महीने चौके में बिठाके खिलाया करूंगी। और उसकी बारी भले ही तकिया छोड़, मस्जिद में जा बैठना।"

"अच्छा भई, अब मेरी भी सुन लो," सज्जन सिंह ने हाथ के इशारे से दोनों को चुप कराते हुए कहा। "तुम्हारा रोग समझ में आ गया है। पर इसका इलाज जरा सोच-समझकर करना पड़ेगा। इस वक्त तुम दोनों गरम हो। तुम चार दिन अपनी-अपनी जगह ठंडे हो लो, और हम अनाज निकाल लें। तब तुम्हारा कोई पक्का बंदोबस्त करेंगे। जैना ! तुम देवरानी-जेठानी अब जाओ, और हम फल्हे हांकते हैं।" सज्जन सिंह ने दोनों पक्षों के तर्क सुनकर जैसे फैसले की तारीख डाल दी।

ग्यारह

"अच्छा भई शेरो ! तुम बैल लेके घर को चलो और मैं पैरी लगाकर आता हूं", सज्जन सिंह ने बशके से कहा। पप्पू के उसके साथ होने के कारण ही बेटों के लिए उसने बहुवचन 'शेरो' शब्द का इस्तेमाल किया था।

दिन छिप रहा था, जब इलमदीन और सज्जन सिंह ने फल्हे छोड़े। ये उनकी आखिरी पैरियां थीं। बशके ने पप्पू को कंधे पर बिठाकर बैलों को आगे लगा लिया। करमदीन भी बैलों के पीछे-पीछे गांव की ओर चल पड़ा, हालांकि इलमदीन की इच्छा थी कि वह उसके साथ पैरी इकट्ठी करवाके जाता।

इलमदीन और सज्जन सिंह ने फल्हे उठाकर खलिहानों से बांहर रख दिए और खुद तंगलियां पकड़कर जुट गए।

"बशका तो चलो अभी बच्चा है, पर करमदीन को नहीं चाहिए था कि वह मेरे साथ धड़[1] लगवाके जाता ? मैंने अकेले ने ही लहू निकलवा रखा है ?" इलमदीन ने सज्जन सिंह के सामने अपना गुस्सा प्रकट किया।

---

1. गाहने के बाद का अनाज और भूसे का मिश्रित ढेर।

"सब अपने मतलब के हैं, मित्तर !कहते हैं न : एथे कोई न किसे दा बेली[1]" — सज्जन सिंह ने आगे से साझा-सा उत्तर दिया।

"ठीक कह रहा है। बीवियां, बेटे, भाई, सब गरज के बंदे हैं।" इलमदीन ने थोड़ा-सा सिर हिलाकर सज्जन सिंह के कथन का समर्थन किया।

इलमदीन सज्जन सिंह की तुलना में कद का हलका और शरीर का कमजोर था। घर की ढेर सारी चिंताओं ने उसे कुचल डाला था। सारे दिन के काम से टूटा हुआ उसका बदन दर्द कर रहा था। उसका मन हो रहा था, वह पैरी इकट्ठी करने के बदले उसी तरह अनाज पर लंबा पड़ जाए। 'पर अगर रात को आंधी आ गई या चार छींटे पड़ गए तो'? यह सोचकर वह जाटोंवाले हठ के साथ काम में जुटा रहा।

खेती के काम में सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि दिल चाहे माने या न माने, शरीर में बल हो, चाहे न हो, फिर भी किसान को काम करना ही पड़ता है। वह बिना वेतन भी छुट्टी नहीं कर सकता। इसी मजबूरी के चलते इलमदीन काम कर रहा था। मगर उसका मन बुझा हुआ था। ऊहापोह में पड़ा वह सोचे जा रहा था : 'सज्जन सूंह का बशका तेरह- बरस का होगा, लेकिन कितने अच्छे स्वभाव का है। बाप के सारे कामों में हाथ बंटाता है। और दस बरस में पप्पू भी जवान हो जाएगा। तब सज्जन सूंह को किसी किस्म की फिकर नहीं रहेगी। दो लड़के और एक लड़की है। लड़की भी मां के साथ सारा काम करती है। भजन कौर भी अभी जवान लगती है। घर में सुख जो ठहरा। सारे परिवार के चेहरे पर रौनक है। और मैं ? मुश्किल से बरस, डेढ़ बरस बड़ा होऊंगा सज्जन सूंह से, पर कब्र में पड़ने जैसा हुआ पड़ा हूं। घर की चिंताओं ने मार डाला। और क्या !ठीक ही कहते हैं, बड़ी कबीलदारी भी क्षय रोग होती है। सब खाने के भाईवाल हैं, आग देनेवाला कोई नहीं है। दस बच्चे हैं, दस—मार रेवड़ का रेवड़। और काम करनेवाला कोई भी नहीं। एक अल्लापाक ने भी मारा। पहले पांच-छह लड़कियां ही हुईं। अभी दो को दरवाजे से उठाया है। जब सबसे पीछा छूटेगा, घर का दरवाजा दूसरी तरफ हो जाएगा। सबसे बड़ा लड़का अलिया, वह भी निरा-पूरा लुटेरा है। कुछ वह अल्ला की तरफ से उस तरह का था, बचे-खुचे को उसकी मां ने बिगाड़ दिया। बशके से बड़ा ही होगा, लेकिन तिनका तक दोहरा करके नहीं तोड़ता। भाई को भी बेटों की तरह पाला था, मगर वह भी मेरे सिर एहसान करता है हर काम का। यह है मेरी जिंदगी। क्या धरा है इस जीने में ? जी करता है, सबकुछ बेच-बाचकर फकीरों की किसी टोली के साथ निकल जाऊं। बस, हाथ में ठीकरा, और देस सारा पसरा हुआ... ।' न उसकी सोचें खतम होती थीं, न काम।

"ओए, रह गया ? सूरज उगने तक धड़ लगा लेगा कि नहीं ?" सज्जन सिंह ने इलमदीन की आन को छेड़ने के इरादे से कहा। मगर शरीर में जान हो, तब तो आन भी बुरा माने।

"तू जल्दी से काम समेटकर चल। हमारे लिए घर में कौन लकीरें खींच रहा है कि

---

1. यहां कोई किसी का संगी-साथी नहीं है.।

हम जल्दी मचाएं।" इलमदीन की आवाज में कोई जोश या उत्साह नहीं रह गया था।

"ओए, तेरी तो दो-दो राह देखती होंगी !" हंसते हुए सज्जन सिंह मित्र के साथ गाह इकट्ठा करवाने में आ जुटा। उसने अपना काम निबटा लिया था।

इलमदीन नें भी जरा जल्दी-जल्दी हाथ हिलाना शुरू कर दिया। मित्र के हौसले से वह भी कुछ तेज हो गया। एक तरफ से फेंक-फेंककर उन्होंने धड़ को गोल कर दिया।

"ले भई, आसपास झाड़ू भी मार ले," सज्जन सिंह ने सलाह दी।

"तू ही समेट ले भाई, अपन में तो कोई हिम्मत नहीं है।" इलमदीन ने हथियार डाल दिए।

"ओए, गए-गुजरे ! दिल मत छोड़, मैं तेरे साथ लग जाऊंगा।"

सज्जन सिंह ने बहुतेरी हिम्मत बंधाई, लेकिन इलमदीन हारकर बैठ गया। वह खलिहान की तरफ आड़ी पड़ी खटिया बिछाकर उस पर लेट गया। सज्जन सिंह ने लंबे-लंबे सरकंडों का झाड़ू फेरकर ऊपर-ऊपर से भूसी इकट्ठी करके धड़ के साथ लगा दी। फिर जरा कड़ा हाथ रखकर उसने खलिहान में पांच-सात जगह ढेर जमा कर दिए।

"चल उठ, अब चलें। तेरी हीर और साहिबां राह तकती होंगी" — सज्जन सिंह ने काम से फारिग होकर साफे से टांगें झाड़ते हुए कहा।

"अरे, सुलगते उपले लिए दहलीज पर खड़ी होंगी दोनों।" इलमदीन ने घृणा और व्यंग्य से कहा।

"क्यों, तुझे नजर लगी हुई है ?"

अनपढ़ लोगों के वहम। किसी कारण भैंस न मिलती हो, तो यह समझ लेना कि उसे किसी की नजर लग गई है। और फिर उस बुरी नजर का बुरा असर दूर करने के लिए शाम को बाहर से आती हुई भैंस के माथे में सुलगता हुआ उपला दे मारना। सज्जन सिंह का इशारा इसी रिवाज की तरफ था।

"सज्जन सिंहा, तू बातें करना जानता है। बशके की मां जैसी औरत हर घर में पैदा नहीं होती। किसी पिछले जनम में सोना दान किया होगा। अब चुपचाप चला जा"— इलमदीन सच्चे दिल से भजन कौर की तारीफ कर रहा था।

"और मुर्दार, तुझे नहीं चलना है ?"

"मुझमें हिम्मत नहीं है। रब कराए, तो रोटी पकड़ लाना।" इलमदीन का जाने का दिल ही नहीं था। उसे पता था कि घर जाते ही दोनों की सर्द-गरम सुननी पड़ेगी।

"अच्छा फिर; दलिद्दर के मारे हुए, उठके नहा-धो तो ले !"

"नहा लूंगा मैं दम लेके। तू अबेला न कर।"

सज्जन सिंह गांव को चल पड़ा। गांव वहां से दो मील के लगभग था। लेकिन कृषि-कर्मी के लिए दो मील क्या होते हैं। पैरों पर चढ़े रास्ते को वे गिनते ही नहीं। जो आदमी रोज एक घुमांव खेत जोत लेता हो, उसे आठ-दस मील के रास्ते का पता ही नहीं चलता।

घर पहुंचने तक उसे तेज भूख-प्यास लग आई थी। सारा परिवार उसकी राह देख रहा था। सज्जन सिंह को देखते ही भजन कौर ने चूल्हे में आग तेज कर दी। तीनों बच्चे

रोटी खा चुके थे। बशका और पप्पू आंगन में बिछी चारपाई पर लेटे बतिया रहे थे। दीपो चौके की दीवार के साथ टिककर बैठे भाइयों के जूठे बर्तन मांज रही थी। भजन कौर ने अपने लिए रोटी पका रखी थी, मगर अभी खाई नहीं थी। भूख उसे खासी महसूस हो रही थी, लेकिन पति से पहले खा लेने को उसका मन नहीं मानता था। सज्जन सिंह की रोटी के लायक आटा उसने रख रखा था।

"उठ री दीपो। अपने चाचा के नहाने के लिए पानी रख दे" भजन कौर ने बेटी को आदेश दिया। "मैं रोटी पकाती हूं।...आज इतनी अबेर कर दी ?" आखिरी सवाल उसने पति से किया।

"मैंने सोचा, धड़ लगाकर ही चलूं" — सज्जन सिंह ने भजन कौर की स्वागत में मुस्कराती आंखों की तरफ देखते हुए कहा। साथिन की मीठी-सी नजर से ही हलवाहे की थकान उतर गई।

"जा ओए बशके ! इलमदीन की रोटी ले आ मेरे नहाने तक" — सज्जन सिंह ने कपड़े उतारते हुए कहा।

"वह नहीं आया ?" भजन कौर ने चकले पर रोटी बेलते हुए पूछा।

"तेरी जेठानियों के डरके मारे वह वहीं जमकर बैठा हुआ है।"

"सच कहूं, उनका घर तो नरक बना पड़ा है। सारे प्राणी एक-दूसरे की तरफ सेह के कांटों की तरह तने रहते हैं।"

"भली लोक, जिस घर में भी दो औरतें होंगी, यही हाल होगा।"

"और क्या ! सयानों ने कहा है — सौत तो मिट्टी की हो, तब भी सही नहीं जाती।"

"पर अब ओखली में सिर दिया है, तो मूसलों का डर कैसा ! कहते हैं न—जो गाजरें खाएंगे, पेट भी उन्हीं का दुखेगा।"

"बेचारी जैना सारे रास्ते ये बड़े-बड़े आंसू रोती आई है, घर के दुखड़े सुनाते-सुनाते !"

"जैना स्वभाव की तो बुरी नहीं है। उसमें और फतेह-बीवी में जमीन-आसमान का फर्क है"—सज्जन सिंह ने सहमति जताई।

दीपो ने गरम पानी की बाल्टी भरकर आंगन के एक कोने में पड़ी चौकी के पास रख दी। सज्जन सिंह चादर झाड़ता पानी की तरफ चल पड़ा।

"यह चादर मत बांधना" — भजन कौर ने पति को सलाह दी। "दीपे ! जा, अंदर से धुले हुए कपड़े ला दे अपने चाचा को। इसे कल धो दूंगी।"

सज्जन सिंह के नहाने तक भजन कौर ने रोटी पकाकर परोस दी। कोठे की दीवार के साथ खड़ी नई चारपाई उसने चौके के पास बिछा ली। दिन-भर अलग रहने के बाद वह पति को आंखों के सामने बिठाकर रोटी खिलाना चाहती थी। उसकी अपनी रोटी अभी टोकरी में चीथड़े के नीचे ढंकी पड़ी थी। उच्च वर्ग की भाषा के अनुसार उनका 'प्रेम-विवाह' नहीं हुआ था, लेकिन उनमें सारी उम्र निभनेवाला प्रेम अवश्य था। अनेक पड़ोसिनें मन ही मन भजन कौर के दांपत्य जीवन से ईर्ष्या करती थीं।

"जैना ताई लेके आ रही है रोटी।" बशका संदेसा देकर राह देखते पप्पू के पास लेट गया।

"भाऊ, तू बड़ी जल्दी लौट आया !" पप्पू ने खाट की एक बांहीं की तरफ करवट बदलकर भाई के लेटने के लिए जगह बनाते हुए कहा।

"मैं दौड़ा-दौड़ा गया और दौड़ा-दौड़ा लौट आया। मैंने सोचा, मेरा पप्पू राह देखता होगा। ठीक कह रहा हूं न ?" बशके ने लेटकर भाई को खींचकर छाती से लगा लिया। दोनों भाई छोटी-छोटी बातों में लीन हो गए।

सज्जन सिंह धुले हुए कपड़े पहन चारपाई पर बैठकर रोटी खाने लगा। भजन कौर ने मसूर की दाल के साथ कद्दू की सब्जी भी बनाई थी। साथ ही उसने एक कटोरी में घी-शक्कर मिलाकर रख दिया था।

"दाल-सब्जी थी न, फिर शक्कर की क्या जरूरत थी ?" सज्जन सिंह ने यों ही रस्मी तौर पर कहा।

"सारा दिन धूल उड़-उड़कर छाती में जमती रहती है। मीठे से वह जरा नीचे हो जाती है।" भजन कौर को अपने साथी का कितना खयाल रहता था।

"जैना ! खुद क्यों तकलीफ की, बशके के हाथ रोटी भिजवा देती। आ, बैठ !" सज्जन सिंह ने जैना को आया देख उसका स्वागत करते हुए बैठने का इशारा दिया।

"रोटी तो बशके के हाथ ही भिजवा देती, पर इस बहाने दो-चार बातें करने आई हूं। ईमान से, दिल भरा पड़ा है" — कहते हुए जैना सज्जन सिंह के पैताने बैठ गई। "...और, वह नहीं आया ?"

"मैंने तो बड़ा जोर लगाया था, पर वह थकान के मारे वहीं बैठा है।"

"अच्छा ही किया, नहीं आया। वहां तो — वह जाने — चार कौर खा भी लेगा, पर घर आकर तो उसे ये भी नसीब न होते।" जैना दिल से पति का सुख चाह रही थी। "तेरी बड़ी भाभी तो लोहे की तरह तपी बैठी है। बोली : मैं नहीं लेकर गई, तो तू शाम को यार के लिए क्यों ले गई ? जवान बेटी पास है। मुझे तो बताते हुए भी शरम आती है जो पलीते वह सारा दिन बोलती रही है।" जैना ने मुंह घुमाकर पल्लू से आंखें पोंछ लीं।

"जैना ! तेरे जैसी दिलेर औरत भी रोने लगी तो आम औरतों का क्या हाल !" एक तरह से जैना की बड़ाई करते हुए सज्जन सिंह ने कहा।

"उनके सामने अब भी नहीं रोती," जैना ने अपने आप पर काबू पाते हुए कहा— "पर तुम दोनों के सामने कलेजा उछल पड़ता है। तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है। सज्जन सिंहा! तू देवर है। मुझे तेरा गुरुओं जैसा आसरा है। मेरे छोटे-छोटे बच्चों पर तरस कर। जैसे भी हो, हमारे घर का क्लेश मिटा। नहीं तो मैं तो कुछ खाके मर जाऊंगी।"

"ओ छोड़ ससुरी, पगली न हो ! मर जाएगी यह कुछ खाके ! किस घर में लड़ाई-झगड़ा नहीं होता ? चौके के बर्तन भी किसी वक्त आपस में टकरा जाते हैं। हौसला रखना चाहिए" — सज्जन सिंह ने अपनी तरफ से धीरज बंधाते हुए कहा।

"हमारे घर जैसा लड़ाई-झगड़ा—अल्ला करे—किसी घर में न हो। कसम ले ले अगर मैंने कल रात से मुंह भी जूठा किया हो तो। ये भी सिर्फ उसके वास्ते दो रोट थापके ले आई हूं, नहीं तो कुनबे के किसी और जीव के लिए न पकी हैं, न किसी ने खाई हैं। वह आ जाता, तो पता नहीं, आज हमारे घर में कौन-सा गुल खिलता। बड़ी एक ही जिद पकड़े बैठी है। कहती है : इसे घर से निकलवाकर ही रोटी खाऊंगी।"

"बेचारी बहुत ही परेशान है," भजन कौर ने जैना के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा। "और रोटी दूं ?"

"नहीं" – सज्जन सिंह ने कटोरे में बचे पानी से हाथ धोते हुए कहा।

"बस ?" भजन कौर ने पति के कम रोटी खाने पर हैरानी जाहिर की। "खाया ही कितना-सा है !"

"ओह-हो ! मैंने तो आकर तेरी रोटी भी हराम कर दी। अल्ला मुझे कैसे बख्शेगा, ?" जैना ने पछतावे में सिर हिलाते हुए कहा— "मेरा खयाल था, तू रोटी खा चुका होगा।"

"अच्छा, अल्ला नहीं बख्शेगा, तो मैं बख्श दूंगा। जा, तू घर जाकर आराम कर। कोई पैदा हुआ है तुझे घर से निकालनेवाला ? तू बेटे-बेटियों की मां है--तुझे कौन निकालेगा घर से ? मैं देखता रहूंगा सब।" सज्जन सिंह ने जैना का दिल रखने के लिए उसे पूरा भरोसा दिलाया।

"खुदा से इधर अब तेरा ही आसरा है मुझे ! तुम्हारे गुरु ने जिसकी बांह पकड़ी थी, उसकी लाज के लिए दिल्ली में सिर कटवा दिया था। अब मेरी लाज तेरे हाथ है। मुझे भजन कौर की बहन समझकर तुझे मेरी मदद करनी होगी।" खटिया पर रोटियां रखकर जैना उठ खड़ी हुई।

"कोई बात नहीं, घबरा मत, बेबे ! हमें चाहे यहां अपनी हवेली में कोठा बनवाकर देना पड़े, हम तुझे और तेरे बालकों को भटकने नहीं देंगे"—पास बैठी भजन कौर ने भी हौसला देते हुए कहा।

मन-ही-मन दोनों प्राणियों को असीसें देती जैना घर लौट गई।

बाद में पांच-सात मिनट भजन कौर और सज्जन सिंह जैना के घर की बातें करते रहे। ज्यादा दोष उन्हें फतेह-बीबी का ही लगता था। एक तो वह मुंह की बड़बोली थी, और दूसरे उसे मायके वालों का गुमान भी था।

"चलूं फिर ? बेचारा गऊ का जाया रोटी का इंतजार करता होगा" —कहते हुए सज्जन सिंह चारपाई से उठ खड़ा हुआ।

"ऊंह ! गऊ का जाया !" भजन कौर ने व्यंग्य से कहा। "निरा लाई-लग। कहते हैं न : लाई-लग न होवे घरवाला ते चंदरा गवांढ न होवे।[1] एक की सुनकर पल्ले बांध लेते हैं, सच-झूठ को निथारते ही नहीं !" भजन कौर यह मानती थी कि ज्यादा बड़ा कसूर इलमदीन का है।

---

1. घरवाला दूसरों की बात में आ जानेवाला न हो और पड़ोस दुष्ट न हो।

इलमदीन की रोटी उठाकर सज्जन सिंह खेत की तरफ चल पड़ा। दाहिने हाथ में उसने मेख-जड़ी लाठी ले ली।

"दीपो, ताला पकड़ाना, लगा आऊं।" बाहर वाले दरवाजे को ताला लगाने के बहाने वह पति के साथ चल पड़ी।

वह द्वार पर खड़े होकर जाते हुए साथी को रस्मी तौर पर 'टा-टा' करना नहीं जानती थी, लेकिन जाते हुए पति की पीठ देखकर मन में सुख जरूर मांगना चाहती थी। सज्जन सिंह आंखों से ओझल हो गया तो भजन कौर दरवाजे को ताला लगाकर लौट आई।

"कौन... सज्जन सूंह है ?" धरम सिंह ने जानेवाले की चाल पहचानकर पूछा।

"सुना रे, छड़े[1] ! इस वक्त दरवाजे में खड़े होकर किसकी राह देखी जा रही है ?" सज्जन सिंह ने ठट्ठा करते हुए सवाल किया।

"अरे भाई ! तेरे सिवा हमें और किसकी राह देखनी है ! कहते हैं न : वारिस शाह जहान ते जेहे आए, असीं तेरे जहान तो चल्लड़े वे।"[3] धरम सिंह ने मायूस-से स्वर में कहा—यह जाने बिना कि किस कवि की पंक्ति है, उसने तो वारिस शाह के नाम के साथ जोड़कर अपने दिल की कह दी।

"ओए, रब के घर से निराश नहीं होना चाहिए। वह जब देने पर आए तो छप्पर फाड़के देता है," सज्जन सिंह ने उसका मन रखने के लिए कहा।

"खुश रह, भाई ! तेरे बच्चे जीते रहें। वे जानें, हमारे हक में तूने सुख तो मांगा है ? ले पकड़, तू भी क्या याद करेगा"—धरम सिंह ने चादर की डब्ब में से कोई चीज निकालकर सज्जन सिंह को थमा दी।

सज्जन सिंह का दिल खिल उठा। चादर में लपेटकर उसने वह चीज कंधे के पीछे डाल ली और आंखों ही आंखों में धरम सिंह को धन्यवाद देते हुए खेत की ओर चल पड़ा।

धरम सिंह को लोग जन्मजात छड़ा कहा करते थे। एक तरह से वह शिष्ट समाज से बहिष्कृत था। उसके बाप के हिस्से में सिर्फ पांच बीघा जमीन आती थी। पैंतीस साल की उम्र तक पहुंच जाने के बाद भी उसका ब्याह नहीं हो सका था। इतनी कम जमीन वाले जाट को रिश्ता कौन देता ? अंत में उसने खुद ही हिम्मत की। बीस बरसों की कमाई का जमा किया हुआ सात सौ रुपया देकर वह बीस बरस की एक काली-सी परदेसन ले आया। कोई उसे काली मिट्टी की बताता था, कोई ग्वालियर की, और कोई काशी की। रूप-रंग और बोली से उसे पंजाबिन किसी भी तरह नहीं माना जा सकता था। वह आठ साल तक धरम सिंह के बाप काला सिंह के घर में रही और अंत में पांच बरस के धरम सिंह को पीछे छोड़ हैजे से मर गई। धरम सिंह पंद्रह बरस का था जब उसका बाप भी उसे छोड़ अगले जहान चला गया। बाप की पांच बीघा जमीन से धरम सिंह अपनी गुजर करता आ रहा था। उसकी उम्र भी तीस-बत्तीस साल की हो चली थी। मगर जितनी जायदाद

---

1. अकेला, अविवाहित पुरुष।
2. वारिस शाह कहता है, हम जैसे इस दुनिया में आए थे, वैसे ही तेरी दुनिया से जा रहे हैं।

सहारे काला सिंह का ब्याह नहीं हो सका था, उतनी के सहारे धरम सिंह का कैसे हो ता, जबकि उसके साथ एक बहुत बड़ी सामाजिक विकृति भी जुड़ी हुई थी। हां, जायदाद ादा होती, तो सारी बुराइयां ढंकी जातीं। सरमायादार समाज में संपत्ति सबसे पहले देखी ती है।

रात का अंधेरा खूब पसरा हुआ था। धरम सिंह छड़ा द्वार पर खड़ा किसी का इंतजार र रहा था। और इंतजार कर रहा था उस अध-भूखे पंजर का, जिसे नाममात्र के लिए । स्त्री कहा जा सकता था, वरना स्त्रीवाला कोई भी रस उसमें नहीं रह गया था। सारे ांव में उसे चाहनेवाला और कोई भी नहीं था। मगर धरम सिंह के लिए उस समय वह ी राजा इंदर के अखाड़े की अप्सरा थी। बहरहाल, कभी वह स्त्री जरूर हुआ करती थी।

हौले-हौले गुनगुनाता सज्जन सिंह खेत पहुंच गया। धरम सिंह की दी हुई भेंट से वह शरीर में काफी गरमाहट महसूस कर रहा था।

"इलमदीन !... ओए इलमदीन !' पहली बार की तुलना में सज्जन सिंह ने जरा ऊंची आवाज में पुकारा।

"हुह् !' इलमदीन ने जैसे चौंककर जवाब दिया।

"उठ, रोटी खा ले। नहा आया तू ?"

"हां।"इलमदीन उठ बैठा।

"कुएं पर गया था ?"

सज्जन सिंह के खलिहान से एक फर्लांग की दूरी पर खेतों के बीच मक्खन सिंह का कुआं था। उन्होंने बनाया भले ही खेती के लिए था, लेकिन पानी के खारा होने के कारण जमीन ने उसे स्वीकार नहीं किया था। खारे माझे में सिर्फ रेतीले इलाके की सीमा पर ही कुओं का पानी कुछ मीठा था, जो फसलों के काम आ सकता था।

"यहीं बड़े नाले से ही नाम के लिए नहा लिया है। कुएं तक जाने की हिम्मत किरा में थी ?'

"ले, खा रोटी।" सज्जन सिंह ने रंगीन खद्दर के चीथड़े में बंधी रोटियां इलमदीन के सामने रख दीं।

"रोटी के लिए तो, सज्जन सिंह, कटी हुई रूह मानती ही नहीं। यों ही तकलीफ की तूने।" इलमदीन उसके जाने के बाद काफी देर तक घर के क्लेश के बारे में सोचता रहा था। इसीलिए उसकी भूख मर गई थी।

"ओए चार कौर खा ले रे। फिर तेरा जी करारा करते हैं। देख, पांच मिनटों में तेरे सारे गम दूर कर देंगे"—सज्जन सिंह ने देशी शराब का अद्धा उसके सामने छलकाते हुए कहा।

"यह कहां से मार लाया ?" देखकर इलमदीन का मन भी ललचा आया था।

"रब दाता है। कोई चेला-बाला मिल गया।" मुफ्त मिली शराब को सज्जन सिंह परमात्मा की देन समझ रहा था।

इलमदीन चीथड़े को खोलकर रोटी खाने लगा। साथ में काबुली चने की सूखी सब्जी थी। इस बीच सज्जन सिंह आम के पेड़ के नीचे से पानी का घड़ा उठाकर खलिहान में ले आया। दो-तीन बार पानी फेरकर उसने सिल्बर (अल्यूमीनियम) की कटोरी को ठंडा किया। फिर कोई आधी छंटाक शराब और आधा पानी डालकर वह दांत भींचकर एक ही सांस में पी गया।

"भई, है तो खासी तेज। ले देख स्वाद।" दो बार कटोरी को धोकर उसने उतनी-सी ही शराब डालकर इलमदीन की तरफ बढ़ा दी।

"ओए, मौलवी से पूछ आना था, हराम तो नहीं होती ?" इलमदीन ने एक तरह से मौलवी के उपदेश का मजाक उड़ाते हुए कहा।

"पूछने जाता तो यह चीज मौलवी से बची कैसे रहती ? मुफ्त की हराम नहीं होती।"

"हां—" —इलमर्दीन ने लगभग दो छंटाक कड़वा पानी अंदर उड़ेलते हुए कहा— "बचा लिया रे, सज्जन सिंह, नहीं तो आज मैं गम से ही मर जाता।"

"ओए, यह घूरा ब्रांड गम को पास फटकने भी नहीं देती। बस एक कटोरी और लेने की देर है।" सज्जन सिंह ने अद्धे को एक बार फिर छलकाकर देखा।

एक-दो कटोरियों तक तो वे एक-दूसरे की जूठी कटोरी धो लेते रहे, मगर पूरा सुरूर आ जाने के बाद शुचिता और जूठेपन का भरम पूरी तरह जाता रहा। सज्जन सिंह की बची हुई इलमदीन और इलमदीन की बची हुई सज्जन सिंह बड़ा स्वाद लेकर और होठों पर जीभ फेरकर पीता रहा।

"जैना आई थी रोटी देने। वह बहुत रो रही थी घर की बातें करके।"

"गोली मार, ओए, घर की बातों को ! घूंट भर और बची हो तो पकड़ा।"

आधी रात तक वे थोड़ी-थोड़ी करके वही डेढ़ पाव पीते रहे। पीते रहे और बातें करते रहे। आदमियों-जैसी नहीं, शराबियों-जैसी बातें। और वे बातें कर रहे थे। सज्जन सिंह और इलमा। सरदार सज्जन सिंह या चौधरी इलमदीन वहां कोई नहीं रह गया था।

बारह

भजन कौर के जन्म के आठ साल बाद उसके माता-पिता के घर लड़के ने जन्म लिया। ढाई-तीन साल की उम्र से ही भजनो प्रार्थनाएं करने लगी थी—"रब्बा ! वीर दे, एक वीर।"

कोई पड़ोसन पूछती— "अरी भजी ! तुम्हारे कोठे पर क्या है—चिड़िया या कौवा ?" भजी फौरन उत्तर देती—"कौवा।" खुशी के मारे उसका गुलाब के फूल जैसा चेहरा तपकर लाल-सुर्ख हो जाता। वह इतना जान गई थी—चिड़िया का अर्थ है लड़की और कौवे का लड़का।

एक दिन ताई ने उसे एक बुझारत सुनाई थी– "घर विच घर, तैनूं की वादी। मुंडे दी अक्खीं सुरमा, कुड़ी साद मुरादी।–ले बूझ।"

भजी सोच के घोड़ों को बहुत दौड़ा रही थी, लेकिन उसे बुझारत का जवाब नहीं सूझा था। आखिर ताई ने खीजकर कहा था– "तू भी निरी बुद्धू है ! वह खूंटी पर क्या बैठा है ?"

"चिड़िया"–भजी ने जवाब दिया था।

"चिड़िया नहीं, चिड़ा," ताई ने उसकी गलती सुधारते हुए कहा था। "चिड़िया वह रही, रस्सी पर बैठी हुई। ध्यान से देख, चिड़े की आंखें काली हैं। उसने सुरमा डाल रखा है। और बेचारी चिड़िया साद मुरादी। सो चिड़िया हुई लड़की और चिड़ा हुआ लड़का। अब याद रखना।"

और भजी ने फिर यह बात भुलाई नहीं थी कि चिड़िया लड़की को कहते हैं। उसे जरूरत थी एक भाई की, लड़के की, लड़की या बहन की नहीं। वह कभी नहीं मानती थी कि उनके कोठे पर चिड़िया है। मगर चिड़िया के मुकाबले में कौवे का नाम सुनकर वह हैरान जरूर होती। एक दिन उसने ताई से पूछ ही लिया–"ताई ! कौवा या चिड़ा ? चिड़िया और चिड़ा, जिसकी आंखों में सुरमा है।"

तब ताई ने उसकी तेज बुद्धि पर हैरान होते हुए कहा था : "कैसे-कैसे सवाल करती है यह लड़की ! अरी बछेड़ी, कौवा क्या और चिड़ा क्या ! एक ही बात है। तू बता, तुम्हारे कोठे पर चिड़िया है या कौवा ?"

"कौवा"–भजी ने पूरे विश्वास के साथ उत्तर दिया था। उसका शंका-निवारण हो गया था कि वह चाहे चिड़ा कहे या कौवा, उसका अर्थ लड़का ही है–भाई।

उसके बाद दो-ढाई बरस तक भजी चीथड़ों का बना बड़ा-सा गुड्डा कंधे से लगाए घूमती रही। वह गुड्डे को एक पल के लिए भी अपने से अलग न करती। रात को भी उसे छाती से लगाकर सोती। ताई की बेटियां पूछतीं तो भजी अपने भोलेपन में उत्तर देती–"यह तो मेरा वीर है।"

भजी कुछ बड़ी हुई, तो सहेलियों के साथ नाचती-खेलती एक 'बोली' गाने लगी–"इक वीर देईं वे रब्बा। सहुं खाण नूं बड़ा जी करदा।"* यह बोली उसे बड़ी अच्छी लगती थी। लेकिन भाई के पैदा हो जाने के बाद उसने कभी भी वीर की सौंह (सौगंध) नहीं खाई थी। हमजोली सहेलियों के खेल में कभी किसी बात पर झगड़ा हो जाता, तो वे एक-दूसरे से कहतीं– "खा वीर की सौंह।" सब लड़कियां भाई की कसम खा लेतीं, लेकिन भजी अड़ जाती। कहती–"क्यों खाऊं सौंह ? मेरा तो एक ही वीर है। और वह भी तरनतारन वाले बाबा की मन्नत का है।" मगर हमजोलियों के बीच नाचती वह बोली अब भी डाल लिया करती---"इक वीर देईं वे रब्बा...।" यह कहते हुए उसे बचपन याद आ जाता।

आखिर परमात्मा ने भजी की सुन ली। पूरे आठ वर्ष बाद उसकी मां प्रसूति-गृह में

---

* एक भाई दे दे रे परमात्मा, सौगंध खाने को बड़ा मन करता है।

गई। उस वक्त भी भजी दरवाजे पर हाथ जोड़कर बैठी जाप कर रही थी—"इक वीर देईं वे रब्बा...।"

बीच-बीच में मां की हाय-हाय की आवाज कान में पड़ जाती, तो भजी हौले से द्वार खटखटाकर दाई से पूछ लेती, "अम्मा जीवां ! मैं अंदर आ जाऊं ?" दाई उसकी मांग स्वीकार न करती तो बेचारी भजी मन मसोसकर रह जाती। अपना मंतर वह फिर तेज-तेज दोहराने लगती—"इक वीर देईं वे···।"

रात खासी ढल गई थी। भजी अभी तक जागती बैठी थी। नवजात शिशु की 'हुआं-हुआं' उसके कान में पड़ी, तो वह अचानक खुशी से उछल पड़ी। "अम्मां जीवां ! वीर है वीर, देख ले चाहे"—उसने पूरे विश्वास से कहा था।

"लो, भजी की जबान सुलक्खनी हुई है। लड़का है, सुख से। बधाई हो, बेबे !' दाई की आवाज भी खुशी-भरी थी। अब उसे उस घर से ज्यादा कुछ मिलने की आस हो गई थी।

"अब आ जाऊं ?" भजी ने जरा जोरदार आवाज में कहा था। वह खुशी से पागल हो रही थी। थिगलियों के गुड्डे को लोरियां दे-देकर प्रार्थनाएं करनेवाली भजी सचमुच के भाई को गोद में डालकर खेलाने की हकदार बन गई थी।

"आ जाने दे, री, उसे !' भजी की ताई की आवाज आई। वह नहीं चाहती थी कि दाई फिर 'न' कर दे।

ताई ने उठकर दरवाजा खोल दिया, और भजी ने भागकर उस मांस के लोथड़े को पीढ़ी से उठाकर गोद में ले लिया। "यह मेरा वीर है। मैं नहीं उठाने दिया करूंगी किसी को" —भजी ने मान-भरे दावे के साथ कहा था।

"इधर देखो री ! यह तो बावरी हुई जा रही है" —भजी को बच्चे का मुंह चूमते देख ताई ने कहा था।

"बहना ! इसी की प्रार्थनाओं को ईश्वर ने भाग लगाए हैं — नहीं तो हमारे भाग में कहां था !' भजी की मां ने बेटी के प्रति आभार-सा प्रकट करते हुए कहा था।

भजी हर वक्त उसे 'वीर-वीर' कहती रहती थी। इसलिए बच्चे का नाम, बिना रखे ही, वीर सिंह पड़ गया। मां सत्कार के तौर पर ही नन्हें-से बेटे को वीर सूंह कहके बुलाया करती। बाप लाड़ से 'वीरया' और गुस्से से 'ओए वीरू' कहकर पुकारता। लेकिन भजी हमेशा खाली 'वीर' कहकर ही संबोधित करती। भजी से भजन कौर बनकर भी वह भाई को वीर ही कहती थी। हां, बड़ी बहन होने के नाते वह कभी-कभी 'वे वीर' कहकर भी बुला लेती।

वीर सिंह के जन्म के ढाई साल बाद एक और लड़की हुई। उसका नाम भाई के नाम से मिलता-जुलता जसबीर रखा गया। जसबीर भी पलकर इक्कीस साल की जवान हो गई। भजन कौर के माता-पिता भले ही पहले बेटे का ब्याह करना चाहते थे, मगर वीर सिंह की ससुरालवाले मंदी के कारण ब्याह के लिए तैयार नहीं हुए। उधर जसबीर

की ससुरालवाले ब्याह के लिए जोर डालने लगे। आखिर लंबे सोच-विचार के बाद भजन कौर के मां-बाप ने जसबीर का ब्याह आषाढ़ की बाईस का निश्चित कर दिया।

इसी ब्याह के बारे में सज्जन सिंह के घर में चर्चा हो रही थी।

"देखो न ! चौदह-पंद्रह बरस की थी मैं, जब से उस घर से लेती आ रही हूं। जब भी गई हूं, उन्होंने खाली हाथ कभी नहीं आने दिया। तुम कुछ भूले हुए तो हो नहीं। बशके के वक्त मुरकियां दोहते को और डंडियां[1] मुझे देके गए थे। फिर..."

"ओ, दोहते को मुरकियां, बेटी को डंडियां-और जवांई को क्या ?" सज्जन सिंह ने जरा मजाक की रौ में कहा।

"जंवाई को दे गए थे पंज-कापड़ी। जो भूल जाए उसका क्या इलाज ?" भजन कौर ने आगे से आंखें मटकाकर जवाब दिया।

"तो फिर भेद-भाव हुआ न ! बेटी को तीन कपड़ों के साथ डंडियां और जवांई को खाली पंज-कापड़ी !' सज्जन सिंह ने पंज-कापड़ी के साथ हलका विशेषण लगाकर उसकी कीमत और कम कर दी।

"जंवाई को तो उन्होंने कुछ नहीं दिया होगा"![2] गुप्त-सा संकेत देते हुए भजन कौर के सारे चेहरे पर मृदुल-सी मुस्कराहट फैल गई।

"भई, उस बात के मामले में तो मैं उनका एहसान मानता हूं। तू बेशक हर महीने बापू को थेई[3] रखा कर। मैंने तो सिर्फ भेदभाव की बात की थी... कि बेटी को सब लोग जंवाई से बेहतर मानते हैं।"

"यह तो फिर शुरू से ही होता आया है। कल को हम भी दीपो को अच्छा नहीं मानेंगे ? पर यह भी यों ही एक बात-सी बनी हुई है, वरना जंवाइयों का आदर तो, बल्कि, ज्यादा ही करना पड़ता है। उन्हें भी बेटियां देकर बेटा बनाया जाता है। फिर, मेरे मां-बाप ने तो भेदभाव कभी जाना ही नहीं। बापू के मरने पर तुम्हें भी पगड़ी पर अंगूठी रखकर दे गए थे। फिर दीपो पैदा हुई, तब भी वो लड़कों-जैसा सब कुछ कर गए। अभी तो कल की बात है, पप्पू की बारी भी मां सौ रुपया लगा गई थी। उनके घर एक दिन आया है, तो इतनी बातें बनाते हो... !"

"मैं बातें बनाता हूं ?... और मेरे बातें बनाने से फर्क क्या पड़नेवाला है ? सब कुछ तो तेरे हाथ में है। औरत तो, कहते हैं, बालिश्त-भर की भी बहुत होती है—तू तो सुख से कोठे जितनी है !'

"यों ही हंसी में बात मत टालो। ये गाड़ी के पहिये अलग-अलग नहीं जाएंगे। कहीं पंद्रह-सोलह बरसों के बाद तो खुशी का मौका मनाने जा रहे हैं। और मुझे ताइयों-चाचियों से बातें नहीं करवानी हैं। मुंह जोड़-तोड़कर एक-दूसरी के कानों में कहती

1. एक प्रकार का आभूषण
2. पांचों कपड़े
3. दूध-दही आदि इस्तेमाल न करने का नियत दिन।

फिरेंगी— 'हैं री !बड़ी बहन है। क्या कुछ लाई है" ! जितना उन्होंने अब तक दिया है, मैं उसका आधा तो लौटाऊं। और तुम्हारा जी किस बात पर ऊपर-नीचे हो रहा है ? वो तुम्हारा हक नहीं मारेंगे। सच्ची बात है, छोटी बहन के ब्याह में मैं कुछ लानेवाली नहीं, और भाई के ब्याह की बारी कोई कसर नहीं छोड़ूंगी।"

"बशके की मां !' दो मिनट चुप रहने के बाद सज्जन सिंह ने गंभीरता से कहा— "तेरी बात ठीक है, लेकिन समय का रंग देख ले। वो एक बरस और ब्याह को रोक लेते, तो अच्छा होता।"

"उन्होंने तो बहुतेरा जोर लगाया था, पर लड़के वाले ने माना ही नहीं। अंत में बेटी वालों के ही सिर झुकते हैं।"

"पर जानती है, हमें कितनी परेशानी होगी ? अनाज तो सारा तकरीबन दो गाड़ी ही आया है न। सारा भी बेच दें, तब भी डेढ़ सौ रुपयों से ज्यादा नहीं मिलेगा। और धन्ने शाह के, याद है, कितने देने हैं ?'

"सब याद है। धन्ने शाह कहीं भागा नहीं जाता। श्रावणी पर उसे भी निबटा देंगे। अब तक बिना-ब्याज का था, आगे अपना ब्याज लगा लेगा।"

"पर जबान क्या दे रखी है उसे ?'

"जबान से कहीं हम मुकर तो नहीं जाएंगे। पाई-पाई चुकाएंगे उसकी। तुम्हें कहते शरम आती है, तो मैं साथ चलूंगी। वो कहता है न, बीबी मेरी धरम की बहन है—तो अब बहन के कहने पर चार महीने रुकेगा भी नहीं ?'

"रुक तो कहने-सुनने से जाएगा ही, पर...। तब भैंस न लेते तो अच्छे-बुरे दिन निकल ही गए होते।"

"ऊंह !भैंस न लेते !बच्चों की तो खैर थी, सरदारजी की ही अब तक हड्डियां निकल आई होतीं।" भजन कौर ने ऐसा जाहिर किया जैसे बेटे-बेटियों की तुलना में पति की खुराक का उसे ज्यादा खयाल था, और उसने खास तौर पर सज्जन सिंह के लिए ही भैंस खरीदने पर जोर दिया था।

तीन-चार महीनों के लिए खाने लायक रखकर बाकी सारा अनाज सज्जन सिंह ने आढ़त में डाल दिया। हिसाब करते समय उसने झिझकते-झिझकते कहा— "धन्ने शाह ! तेरे (पैसे) भी देने हैं—और एक और मुसीबत भी आ पड़ी है। बशके की मासी का ब्याह आ गया है।"

"सरदार सज्जन सिंहा !इस तरह के शुभ कारज को तू मुसीबत बताता है ! बहन जी सुनेंगी, तो क्या कहेंगी ! —तुझे भी और मुझे भी !' धन्नेशाह ने शातिरोंवाली बोली में उत्तर दिया।

"बात तो तेरी ठीक है, पर मार तो दिया इन भावों ने। जब तक तेरे पहलेवाले (पैसे) न चुका लें, और किस मुंह से मांगें ? फिर वो रिश्तेदार भी छोड़नेवाले नहीं !' एक रुपया

ग्यारह आने मन बिके गेहूं ने सज्जन सिंह का हौसला तोड़ दिया था।

"सज्जन सिंह ! उदास किस बात से होता है ? धन्ने शाह ने एक बार जिसकी बांह थाम ली, उसे किसी चीज की कमी वो नहीं होने देता। फिर बीबी भजन कौर को तो हम बहन कह बैठे हैं। उसकी बहन, हमारी बहन। जिंसों की मंदीवाली तेरी बात ठीक है। पर ये दिन तो बीत जाएंगे, परीक्षा का समय रोज-रोज नहीं आएगा। छोटी बहन का ब्याह है, बीबी-भजन कौर को किसी बात से नाराज नहीं करना है"—धन्ने शाह ने बड़े खुले दिल से प्रोत्साहन देनेवाले स्वर में कहा।

"पर तेरे तो अभी पहलेवाले (पैसे) भी खड़े हैं !' सज्जन सिंह ने शाह का एहसान मानते हुए कहा।

"देख, वो तेरे-मेरे अन-ब्योहार के है। धन्ने शाह जो जबान कर ले, सिर चला जाएगा, पर जवान से नहीं मुकरेगा। उन पैसों की कोई लिखत-पढ़त भी नहीं है।"

"लिखत-पढ़त नहीं है, तो क्या हुआ ? ईश्वर तो जामिन है" —धन्ने शाह की बात को टोककर सज्जन सिंह बीच में ही बोल उठा।

"ओहो, मेरा यह मतलब नहीं कि तू मुकर गया है। मेरा मतलब यह है कि हिसाब करके रोकड़ा काट लेते हैं—और जितने की जरूरत है, तू अभी ले जा। ये जरा बही-खाते में लिखने पड़ेंगे। इनकम टैक्सवाले आके गले में रस्सी डाल देते हैं न ! बीस तरह के तो झंझट रखे हैं सरकार ने। बता, कितने चाहिए ? ये धन्ने शाह हैं, निहाले शाह नहीं!'' शिकार को फंसते देखकर धन्ने शाह चुग्गा डालने को दिलेर हो गया था।

"जरूरत तो—दो सौ से कम में गुजारा नहीं होगा—" सज्जन सिंह ने सकुचाते हुए कहा।

"ओए, परायों की तरह झिझकते हुए क्यों कहता है ? खुलकर बोल ! सिर्फ एक बात याद रहे कि रकम लौटाते वक्त भी आंखें ऐसे ही रहें।"

"शाह ! सज्जन सूंह की आंखें कभी नहीं फिरेंगी। इस बात से बेफिकर रहना।"

"मुझे एतबार है, सरदारा ! नहीं तो हम लोग तो किसी पर टके-आने तक का भी भरोसा नहीं करते। ले पकड़ !' धन्ने शाह ने सौ-सौ के दो नोट पकड़ाते हुए कहा— "बता, ब्याज क्या लिखूं ? लोगों से तो कम-अज-कम टका रुपया और कइयों से एक आना रुपया भी लगाते हैं, तू बता।"

"मैं क्या बताऊं ? जो तेरी मर्जी हो।" ऋण लेनेवाले हर जाट की तरह सज्जन सिंह ने भी बात शाह पर डाल दी।

"मुझ पर डालता है, तो तुझसे दो रुपए महीना। पता है, क्या हिसाब बनता है ? डेढ़ पैसे से भी कम। डेढ़ पैसे के हिसाब से दो रूपए साढ़े पांच आने बनते हैं। सज्जन सिंह ! तेरे साथ भाइयोंवाली साझेदारी बना ली है, साहूकार और आसामीवाली नहीं।"

"शाह ! हम भी किसी बात से पीठ दिखानेवाले नहीं हैं।" इतनी रियायत सुनकर सज्जन सिंह अपने-आपको शाह के एहसान के नीचे दबा हुआ महसूस कर रहा था।

"चल, अब अनाज का हिसाब करें।" दो सौ के नामे पर सज्जन सिंह का अंगूठा लगवाकर धन्ने शाह ने बही संभालते हुए कहा।

अनाज का हिसाब करके धन्ने शाह ने भैंस के पैसे काटकर बाकी की रकम सज्जन सिंह की झोली में डाल दी। सज्जन सिंह बहुत खुश था। एक तो शाह ने वायदे के मुताबिक भैंस के पैसों पर ब्याज नहीं लिया था, और दूसरे मुंह-मांगा कर्ज भी मिल गया था।

"सज्जन सिंह ! भई, एक संदेश लेता जा।"

"बताओ, शाहजी।"

"बहनजी से कहना कि जब ब्याह के लिए कपड़े लेने इधर आएं, तो मिलके जरूर जाएं।"

"क्यों, उसका भी अंगूठा लगवाना है ?" सज्जन सिंह ने अपने स्वभाव के अनुरूप मजाक में कहा।

"ओ सरदारा ! अंगूठे बेगाने पूतों के लगवाए जाते हैं, बहनों के नहीं ! धन्ने शाह ने इस ढंग से कहा जैसे भजन कौर उसकी सगी बहन हो। "तू मेरा संदेसा दे देना।"

कपड़े बनवाने के लिए शहर गई भजन कौर पति के साथ धन्ने शाह की आढ़त पर गई। धन्ने शाह ने ब्याह वाली लड़की के लिए एक सूट अपनी तरफ से दिया, जिस पर उसके सवा चार रुपये खर्च हुए। साथ ही उसने भजन कौर को भरोसा दिलाया कि वह खर्च को लेकर बिलकुल न हिचकिचाए और ब्याह में सब अच्छा ही अच्छा करके आए। इस प्रेरणा का असर यह हुआ कि भजन कौर का हाथ जरा खुला हो गया।

जसबीर का ब्याह हो गया। मायके में भजनकौर की वाह-वाह हो गई। और सज्जन सिंह का तीन सौ पर अंगूठा लग गया।

तेरह

असाढ़ी की फसल संभालने तक इलमदीन के घर की हालत कुछ ज्यादा ही खराब हो गई। न फतेह बीबी और जैना की सुलह हुई और न ही करमदीन में कोई बदलाव आया। करमदीन के घर से सराज बीबी हर वक्त मालिक के कान भरती रहती : "अरे मूरख ! तुझे कब समझ आएगी ! साझा घर में छिल-छिलकर मरता फ़िरता है, पर तेरे हाथ-बस में है क्या ? एक छिलका तक लेना हो तो मजूरों की तरह भाइयों के सामने हाथ पसारना

पड़ता है। उसने कभी हिसाब दिया है तुझे कि क्या कमाया और कहां खर्च किया ? कहेगा, मेरे तो पांच पांचे पूरे नहीं होते। नहीं होते तो न हों ! हमने किसी का ठेका ले रखा है ? कहेगा : इकट्ठा पकाओ, और साझे रहो। उन्हें तो साझे में फायदा हुआ। दो औरतें और दस बच्चे। मार रेवड़ का रेवड़ ! और हमारी ये ढाई टहनियां !' अपने पांच बालकों को सराज बेगम हमेशा 'ढाई टहनियां' ही गिनती थी। "सारी सावनी उनके पेट में पड़ गई। फिर भी हमारे सिर पर एहसान। कहेंगे—तुमने, सारे कुनबे ने, पहले कपड़े बनवा लिए !" हमारा कुनबा है ही कितना-सा ? मेरे बच्चे एक-एक टिक्कड़ खाएंगे मर के। और उसकी जैना अकेली ही हम सबके बराबर समेट जाएगी। बस, सौ हाथ रस्सी और सिरे पर गांठ। हमें नहीं रहना है अब उनके साथ। खलिहान से आनेवाले अनाज को बांट लेना है। तुझे शरम आती है बात करते, तो तू घघरी पहनके अंदर घुस जा, मैं अपने आप कर लूंगी। सुन लिया ? और अगर तेरे लिए तेरा भाई ही सबकुछ है, तो यह संभाल अपना चींगड़बोट* । मुझे नहीं रहना है इस घर में। कोई-न-कोई कुआं-तालाब झेल ही लेगा मुझे भी। हां ! फिर रोते रहना जांघों पर हाथ मार-मारके !'

रोज-रोज के इस उकसावे ने करमदीन को पक्का कर दिया। वह भी कभी-कभी अकेला बैठा सोचने लगता : "रफी की मां की बात तो ठीक है। घर में मैं आधे का हकदार हूं। काम भी मैं बराबर का करता हूं। बल्कि आधे से भी ज्यादा। वह हल की चार लकीरें बनाएगा और ठलुओं की तरह शहतूतों के नीचे बैठ सारा दिन ताश खेलता रहेगा और मुझ पर आठों पहर नौकरों की तरह हुक्म चलाता रहेगा— 'उठ रे करमदीन ! कुआं जोत।...चल रे करमदीन, चारा काट। करमदीन ! बैलों का जुआ उतार ले। ओए, चारा डाला पशुओं को ?...पहले उन्हें पानी तो पिला लेता।'... उंह ! जबान पल भर के लिए भी नहीं रुकती। जैसे मैं उसका जर-खरीद गुलाम होऊं। फिर घर की दोनों बेगमें—दोनों एक-दूसरी से बढ़कर। 'वे, भाई की रोटी तो पकड़ा आ।..यह कपास की गठरी उठा ले जाना घर को।...ईंधन ले आना रे, कुएं से।...जा, भागकर दो बाल्टी पानी तो ला दे, ये चार लत्ते धो लूं।' कुएं पर खुद जाते हुए इनकी टांगें टूटती हैं। बड़ी नवाबजादियां, बुरकों में रहनेवाली। मैं खेत में फांसी पर चढ़ा होऊंगा, तो पीछे से मेरी घरवाली पर हुक्म चलाएंगी। बस, हमें जरूर अलग हो जाना चाहिए। बहुत देर लोगों की गुलामी कर ली। मैं कोई लंगड़ा-लूला हूं ? मुझसे अपने लायक भी कमाई न होगी। हमारा खर्च ही कितना है ? कुल मिलाकर चार पेट। इस दोजख से परे ही अच्छे हैं हम। इस बार चाहे सारा गांव कहता रहे, मैं किसी की नहीं मानूंगा।

और सचमुच ही करमदीन ने किसी की नहीं मानी। इलमदीन की तरफदारी करनेवाले सारे लोग बारी-बारी करमदीन को समझाते रहे, और वह अपने हठ पर अड़ा रहा।

---

* छोटे-छोटे बच्चे

आमवाले खेत का अनाज जमा हुआ तो करमदीन झगड़ा करने लगा। वह इस बात की जिद पकड़े बैठा था कि उसके हिस्से के आधे दाने उसे खलिहान में ही दे दिए जाएं। सज्जन सिंह और इलमदीन उसे प्यार से समझाते रहे— "देख करमदीन, इकट्ठे रहने जैसी बरकत नहीं। और भाइयों जैसा और कोई रिश्ता नहीं। यों ही लोगों के उकसावे में आकर घर में फूट मत डाल। मुश्किल से एक हल की तो खेती है, उसमें दोनों अलग-अलग हल चलाकर क्या कमा लोगे ? पशुओं का चारा भी पूरा न होगा। अभी तो कान ढंके रहने से परदा बना हुआ है। और फिर हिसाब करके देख—धन्ने शाह के पैसे देकर और मामला चुकाकर बाकी क्या बचता है।" करमदीन इस बार काफी सख्त हो चुका था। उसने इलमदीन के बजाय सज्जन सिंह को संबोधित करते हुए कहा— "भाऊ सज्जन सिंहा, जब मैं आधे दाने बांट लूंगा तो अपने हिस्से का मामला भी चुकाऊंगा। मामले के बारे में मैं जानूं और लंबरदार जाने। कोई मेरा जामिन है ? बाकी रही धन्नेशाह की बात। न मैंने हाथ बढ़ाकर उससे लिए हैं, न ही देने का जिम्मेदार हूं। मुझे तो आधा खलिहान अभी चाहिए।"

इलमदीन ने युक्ति सोची कि आमवाले खेत का अनाज सीधा शहर में फेंककर धन्नेशाह का पिछला कर्ज उतार दिया जाए। बाकी, कुएंवाले अनाज की बांट-वांट होती हो, तो होती रहे। मगर करमदीन उससे भी पक्का निकला। वह इलमदीन की चाल ताड़ गया था। ढेर उठाकर इलमदीन ने गाड़ी सीधे शहर की तरफ हांकी, तो करमदीन सामने लाठी लेकर आ खड़ा हुआ। बड़े भाई को उसने बुरा-भला तो कुछ नहीं कहा, लेकिन सज्जन सिंह को संबोधित करके चेतावनी देते हुए वह बोला, "भाऊ सज्जन सिंहा ! दानों की गाड़ी शहर नहीं जाएगी। मैं यहीं मर जाऊंगा, पर अपना हिस्सा नहीं जाने दूंगा। मेरे बांटकर, अपना हिस्सा जिधर किसी की मर्जी हो, उधर ले जाए।"

"सुनता है, सज्जन सिंहा ! मैं अब 'कोई' हो गया हूं। मैंने इसे छुटपन से पाला, इसका ब्याह कराया—क्या इसलिए कि मेरे सामने लाठी पकड़कर खड़ा हो जाए ! इससे कह, मार मेरे सिर में !' —इलमदीन ने गुस्से से सिर झुका दिया।

"इलमदीन ! गाड़ी गांव की तरफ मोड़ ले। चाहे भूखा रह, प्यासा रह, इसके हिस्से का बांट दे चलके। यों ही लोगों को मत सुनाओ। वरना वही बात होगी : कुक्कड़ खेह उड़ाई ते अपणे सिर पाई।* तू बड़ा है। सब तुझे ही झूठा बनाएंगे। चल मोड़।"

सज्जन सिंह के कहने पर इलमदीन ने गाड़ी को गांव की तरफ मोड़ लिया। समझदारी से की गई इस पहल से भाई-भाई के बीच का झगड़ा टल गया।

घर पहुंचकर करमदीन ने आंगन में अनाज का ढेर लगवाया। उसे खतरा था कि अगर एक बार इलमदीन ने उसे अपने कोठे में डाल लिया, तो फिर उसे कुछ नहीं मिलेगा। दो दिन तक अनाज बाहर आंगन में ही पड़ा रहा। दो बार सारा गांव इकट्ठा हुआ, मगर

---

* मुर्गे ने धूल उड़ाई और अपने ही सिर में डाली

उनका झगड़ा खत्म नहीं हुआ। इलमदीन का कहना था कि जो भी लोगों से हाथ-उधार लिया गया है, वह सारे घर पर खर्च हुआ है, करमदीन उसका भी बराबर का हिस्सा दे। करमदीन यह शर्त मान नहीं रहा था। वह कहता था कि घर की सारी आमदनी इलमदीन के हाथ में रहती थी, इसलिए लेन-देन का भी वही जिम्मेदार है। इलमदीन ने निकट-पास के रिश्तेदार भी इकट्ठे किए, जो दोनों भाइयों के साझा थे। लेकिन करमदीन ने अपनी जिद न छोड़ी। वह अपनी बात पर अड़ा रहा कि खरगोश की तीन ही टांगें हैं, चौथी है ही नहीं।

"ओए इलमदीना !' आखिर सज्जन सिंह ने खीजकर कहा— "रब देनेवाला है सबको। आदमी की क्या बिसात ? कर दे अलग करमदीन को। बांट दे सबकुछ।"

"बांट दो, भाई !' इलमदीन ने तुनककर कहा— "बाहर का खेत भी बांटकर दे दो इसे।"

दोनों भाइयों का सब कुछ बंट गया। खेतों के भी दो-दो टुकड़े कर दिए गए। यह काम करमदीन को ही सौंपा गया। उसने मनमर्जी से खेतों के दो-दो हिस्से बना दिए और बाद में गांव की पंचायत ने पांसे फेंककर दोनों के हिस्सों का फैसला कर दिया। शहतूतों वाले कुएं के खेत की ढेरियां बनाते वक्त करमदीन ने कुछ बेईमानी की। उसका खयाल था कि दूसरे खेतों पर, मैं कहूंगा, इलमदीन कब्जा कर ले, तो कुएं पर मैं पहले कब्जा कर लूंगा। मगर पंचायत ने पांसे फेंककर फैसला करने की ठान ली। कुएंवाली अच्छी ढेरी इलमदीन के हिस्से आ गई। इस पर करमदीन शोर मचाने लगा। बोला— "पंचायत ने इलमदीन की हिमायत की है। मैं फिर ढेरियां बनाऊंगा। या फिर यह पहले मुझे ढेरी पर कब्जा करने दे !'

पंचायत ने करमदीन का यह दावा नहीं माना। सब लोगों ने एक आवाज में कहा— "ढेरियां बनानेवाले को खुद कब्जा करने का कोई हक नहीं है। अगर कब्जे की बात है, तो करमदीन ने ढेरियां बनाई हैं, इलमदीन कब्जा कर ले। वरना पंचायत ने पांसे फेंककर फैसला किया है। यह तो अपनी-अपनी किस्मत है। जो फैसला पंचों ने कर दिया, वही पक्का रहेगा।"

इलमदीन के हिस्से कुएं के खड्डे के निकट की जमीन आ गई और करमदीन के हिस्से जरा दूरवाली। करमदीन खासा उबलता रहा। मगर वह झूठा था। इसलिए उसकी एक न सुनी गई।

एक झगड़ा निबट गया। लेकिन इलमदीन के सामने दूसरी दिक्कत इससे भी बड़ी थी। फतेह बीबी ने घर के सारे जीवों का जीना हराम कर दिया था। इस घरेलू झगड़े में उसके मायकेवाले खुल्लमखुल्ला उसकी मदद करते थे। फतेह बीबी की वास्तविक इच्छा तो यह थी कि इलमदीन जैना को घर से निकाल दे। मगर वह यह बात खुले शब्दों में नहीं कह सकती थी। वह कहती थी—"मैं आधे की मालिकन हूं। मेरा आधा बांटकर मुझे अलग कर दे।" वह उज्र पेश करती थी कि जैना के मुकाबले उसके बच्चे कम हैं, इसलिए

उसका खर्च भी कम है।

इस बात से जैना भी खुश थी कि उन दोनों के चूल्हे अलग-अलग हो जाएं। अब मामला यह था कि इलमदीन का क्या हो। उसने खीजकर पंचों से कहा— "ओ भाइयो ! इन दोनों में आधा-आधा बांट दो, और इनसे कहो, मेरे लिए एक थिगली सिल दें।"

इलमदीन के लिए यह उलझन सुलझाना वाकई बड़ा कठिन था। पूरे दो महीने घर में क्लेश रहा। आखिरकार कुछ सयानों ने एक रास्ता ढूंढ़ ही निकाला, जिसे लगभग सभी ने स्वीकार कर लिया। फैसला यह हुआ कि घर के आमद-खर्च का सारा हिसाब इलमदीन अपने हाथ में रखे। जैना और फतेह बीबी को हर महीने घर के खर्च के रूप में एक जितनी रकम दी जाए—फिर अपना हिस्सा कोई दस दिनों में खतम कर दे, चाहे पूरा महीना चला ले। इलमदीन एक महीना एक के पास से रोटी खाए और एक महीना दूसरी के पास से।

पास से मिलखा सिंह ने मजाक में कहा— "ओ इलमदीन ! पार साल हरनाम सूंह-वरियाम सूंह दोनों भाइयों ने मंगल ईसाई को साझा मजूर रखा था। वह एक महीना एक के घर रोटी खाता था, और एक महीना दूसरे के घर। और जिसके घर से खाता था, दूसरे घर के लिए बाहर से ईंधन की लकड़ी तक लाकर नहीं दिया करता था। फट मुंह पर जवाब दे दिया करता था — सरदारनी ! यह महीना मैं बड़ी सरदारनी का नौकर हूं ...सो तुझे भी अब सोच-समझकर चलना पड़ेगा। जिधर से रोटी खाएगा, बच्चे भी उसी के खेलाने पड़ेंगे।"

"मिलखा सिंह ! सीधी बात कह, बिना बात बच्चों के पेंच क्यों डालता है !" जैना ने कुछ गुस्से से कहा। वह मिलखा सिंह का परोक्ष व्यंग्य समझ गई थी। "पर बेगाने घर में आग लगाकर तमाशा देखने के बजाय अपनी जलाकर सेंकनी चाहिए। खुद एक और ब्याह करवा ले, अगर स्वाद लेना हो तो !"

"भाभी जैना ! तौबा मेरी !" मिलखा सिंह ने कानों पर हाथ धरते हुए कहा। "बड़े भाई को देखकर ही समझ लिया सब कुछ।"

एक इलमदीन को देखकर अनेक को ज्ञान हो गया था। इलमदीन की कठिनाइयों का कोई पारावार ही नहीं था। वह घर-घर का कर्जाई था। तीन दुकानें थीं गांव में, और तीनों का वह ऋणी था। धन्ने शाह का कर्ज भी वह चुका नहीं सका था। ऊपर से आ गई मामले की बारी। अब वह कहां जाए ? बाहर खेती का काम पूरी तरह औंधा हुआ पड़ा था। एक जोड़ी बैल थे उनके पास। वो भी मुश्किल से गुजारे लायक। उनमें से एक करमदीन के हिस्से आ गया और एक इलमदीन के पास रह गया। अब एक से वह हल कैसे चलाए ? वही एक भी बढ़िया होता, तो वह एक के बदले दो कमजोर खरीद लेता। मगर अब क्या करे ?

करमदीन के ससुरालवालों ने उसकी मदद की। वह एक मरियल-सा बूढ़ा बैल वहां से हांक लाया। इस तरह उसने किसी तरह अपना अच्छा-बुरा हल खड़ा कर लिया।

अब इलमदीन क्या करे ? ले-देकर उसका एक ही ठौर रह गया—धन्ने शाह। पीरों-फकीरों को याद करता वह एक दिन धन्ने शाह की आढ़त की तरफ चल पड़ा।

धन्ने शाह पीरूवाला की पल-पल की खबर रख रहा था। इलमदीन के घर की बुरी हालत सुन-सुनकर वह मन-ही-मन खुश हो रहा था। खारे और अठीलपुर की आसामियों से उसने बड़ी सख्ती से पैसा उगाहना शुरू कर दिया था। वह पुराने, घाघ शिकारी की तरह शहतूतोंवाले कुएं पर आंख गड़ाए बैठा था। चांदी की गोलियां इकट्ठी करके वह पूरी ताकत से कुएं के कमजोर मालिकों पर धावा बोलना चाहता था।

इलमदीन उसके पहुंचा तो धन्ने शाह बड़े आदर से उससे मिला। उसने बड़े अपनत्व भरे निहोरे के साथ कहा— "ओ आ चौधरी इलमदीना !अरे निकम्मे !तूने तो हमारी दुकान ही छोड़ दी है। वो कहते हैं न : गल लगणो तां गई मैं, मुंह लगणो वी गइयों ?* बुरे आदमी, तूने तो कभी शक्ल भी नहीं दिखाई ! शाबाश है, उस सरदार सुजान सूंह को। दानों के निकलते ही खलिहान से सीधा आढ़त पर लाया है। भले ही आगे की जरूरत के लायक दूने ले गया है, पर एक बार पिछला हिसाब चुकता कर गया है। भई, बरतने पर पता लगता है, आदमी बड़ा खरा है।" धन्ने शाह एक के मुंह पर दूसरी आसामी की प्रशंसा करना बहुत जरूरी समझता था।

"आदमी तो, धन्ने शाह, हम भी बुरे नहीं थे, पर घर की फूट ने मार डाला। नहीं तो, जानते हो, बाप के रहते कोई हराम का कहलवाता है ? बस, कोई पेश नहीं चली। हम तो मजबूरी में तेरी तरफ से झूठे पड़ गए हैं—" इलमदीन ने निराश-से स्वर में, सिर झुकाए कहा।

"क्यों... क्या बात हो गई ?" सबकुछ जानते हुए भी धन्ने शाह ने पूछा।

इलमदीन ने अपनी सारी व्यथा-कथा धन्ने शाह को सुना दी। अपनी परेशानियों को उसने काफी बढ़ा-चढ़ाकर बयान किया।

"और नामुराद ! तू इतनी-सी बात से घर के अंदर छुपकर बैठा रहा ? तूने मुझे क्यों याद न किया ? ओए, जो मुसीबत के समय काम न आए, उस सज्जन-मित्तर को गोली मारनी है ! भाड़ में गई धन्ने शाह की साहूकारी, अगर तुझे मामले से परेशान होना पड़े या एक बैल की कमी की वजह से तेरा हल खड़ा रहे ! बोल, कितने चाहिए ?...पर एक बात है, मर्दोंवाली जबान पर पक्के रहना। इस वक्त को याद रखना।"

"धन्ने शाह !इलमदीन इस वक्त को भूल जाए तो उसे चरागदीन का पूत मत समझना। बता, इससे बड़ी कौन-सी हद है ? अभी भी विश्वास न होता हो, तो दो बीघे खेत लिखवा ले।" जरूरत का मारा इलमदीन उस समय हर शर्त मानने को तैयार था।

"देख, मुझसे कोई चार कड़वी-कसैली सुन बैठेगा। पहले खेत लिखवाकर

---

* गले लगना तो तूने छोड़ा ही था, सामने आने से भी गई।

दिए थे तुझे ? जिसे भाई कह दिया, मीत बना लिया, उस पर बे-एतवारी कैसी ? जा, बही पर अंगूठा भी मत लगाना। और बता ?' धन्ने शाह ने भारी तड़ी मारते हुए कहा। पिंजरे का दरवाजा खोलकर शिकारी फंसनेवाले पंछी के साथ अपनत्व जता रहा था।

किस्सा कोताह, इलमदीन का मामला भी तर गया, बैल भी आ गया और घर के प्राणियों के लिए जरूरी कपड़ा-लत्ता भी। लेकिन अनपढ़ इलमदीन को यह पता नहीं था कि बही में लिखी कितनी रकम पर उसने अंगूठा लगाया था।

चौदह

इसी साल एक और घटना हो गई। पीरूवाले का नंबरदार (अलमबरदार) बाबा चेत सिंह मर गया। उस समय उसकी उम्र साठ साल से ऊपर थी। अलमबरदार की एक बेटी ही बेटी थी—बीबी परतापी—जो वलटोहे में ब्याही हुई थी। दस साल हो गए थे, अलमबरदार की घरवाली भी गुजर चुकी थी। कोई लड़का न होने के कारण उसका जीवन बड़ा उदासी भरा था। लड़की का ब्याह हो जाने के बाद उसने एक बार दूसरा विवाह करने की इच्छा प्रकट की। मगर उसका विरोध नंबरदारनी, उसकी बेटी और दामाद ने मिलकर किया, जिसके चलते नंबरदार का दूसरे ब्याह का चाव बीच में ही रह गया। अपने पक्ष में नंबरदार सबसे बड़ी दलील यह देता था कि शायद दूसरे ब्याह से उनके घर में जायदाद का वारिस पैदा हो जाए। परतापी की मां इसका उत्तर बड़े जोर से देती—"हम परतापी के बेटे को गोद में लेंगे। पोता क्या और दोहता क्या ?... और अगर इस बहाने तेरा मौज लूटने का इरादा हो, तो मैं तेरी वो चालाकियां चलने नहीं दूंगी—हां ! "

परतापी और उसकी मां खासी मुंहजोर थीं। फिर उनके समर्थन में परतापी का स्वामी भी खड़ा हो गया। उसने एक दिन सबसे बड़ी धमकी देते हुए कह दिया—"बापू ! अगर तुझे दूसरा ब्याह करवाके ही रहना है, तो अपनी बेटी के लिए भी दूसरा घर ढूंढ़ लेना। मेरा-तुम्हारा फिर कोई रिश्ता नहीं रहेगा।"

दरअसल यह धमकी परतापी और उसकी मां की सलाह से दी गई थी। उसे आधार बनाकर मां-बेटी ने खूब शोर मचाया। यहां तक कि परतापी की मां ने आमरण व्रत करने का ऐलान कर दिया। घर में कई दिन महाभारत के युद्ध-कांड का पूर्वाभ्यास होता रहा। अंत में उन्होंने लाल झंडे को तब नीचे उतारा, जब चेत सिंह ने कान पकड़कर तौबा कर ली।

परतापी के घर एक के बाद एक तीन लड़के हुए। बड़े लड़के सरवन को नानी ने ले लिया। इस तरह दूसरी शादी का सवाल हमेशा के लिए खत्म हो गया।

नंबरदार चेत सिंह की रिश्तेदारी में ज्यादा नजदीकी कोई नहीं था। फिर भी अपनी

पुश्तैनी जायदाद सीधी दोहते के नाम करने के बजाय उसने एक नई युक्ति सोच ली। उसने अपने पास सिर्फ पांच बीघे जमीन रख ली, जिससे उसकी नंबरदारी बची रहे, बाकी सारी जमीन बेचकर उसने वलटोहे में बेटी के नाम अलग जमीन खरीद दी। बाद में उस पांच बीघे की उसने अपने दोहते सरवन सिंह के नाम वसीयत कर दी।

नंबरदार चेत सिंह का गांव में दबदबा जरूर था, लेकिन आदर नहीं था। उसका जीवन ऐसा नहीं बीता था कि कोई उसका सत्कार करता। सारी उम्र गरीबों को सताने और पुलिस की झूठी गवाहियां देने के सिवा उसने नेकी का कोई काम नहीं किया था।

जिंदगी के आखिरी तीन महीने उसने खटिया पर हाड़ रगड़ते हुए बिताए थे। परतापी और सरवन उसके पास जरूर थे, मगर केवल लोक-दिखावे के लिए। उसने कई बार बेटी से मिन्नतें कीं—"बेटे, कोई अच्छा डागदर बुलवाके मुझे दिखलाओ। क्या पता मैं बच ही जाऊं। पैसों की कंजूसी मत करो।"

"बापू, पैसे कहीं पेड़ों पर तो लगते नहीं," परतापी ने बड़े रूखे स्वर में उत्तर दिया था। "और फिर डागदर यहां आके क्या करेगा ? सत्तर बरस से ऊपर के हो गए हो। अब और कहीं किसी चौखटे में टांगें अड़ाकर बैठे रहोगे ?"

वैसे हर दूसरे-चौथे दिन सरवन कसूर से दवा लाने जरूर जाता था। नंबरदार के सिरहाने दवा की कुछ रंगीन शीशियां पड़ी भी रहती थीं।

लोक-दिखावे के तौर पर ही गांव के कुछ लोग नंबरदार का हालचाल पूछने भी जाते रहते थे। आने वाले हर आदमी के सामने नंबरदार एक ही शिकायत करता—"इस लड़की से कहो रे, मेरी दवा-दारू अच्छी तरह करे। मुझे इलाज के बगैर अंदर डालके न मारे। मैं बच गया, तो बची हुई पांच बीघे और यह सिर छुपानेवाले दो कोठरे भी बेचकर इसे दे दूंगा।"

"सुनते हो भाऊ !" पास से परतापी बुरा-सा मुंह बनाते हुए कहती— "बस, रात-दिन इसी तरह हाय-तौबा मचाए रखता है। दिमाग चल गया है इसका। और हम हैं कि दोनों मां-बेटा इसकी बांही के पास बैठे सूख गए हैं। बेचारा सरवन न दिन देखता है, न रात। हर बखत कसूर सयानों से मिलने भागा फिरता है। देखो, दवाई की सीसियां भरी पड़ी हैं। मैं तो तंग आ गई हूं। सुननेवाले क्या कहते होंगे ? यही न कि क्या पता दवा-दारू भी करती है या नहीं। और उधर पराया पूत मेरी खाल उधेड़ता है—कहता है, तूने मेरा घर उजाड़ दिया है बाप की बीमारी पर। बताओ, मैं कौन-से कुएं में पड़ूं ? मैं तो दोनों बखत हाथ जोड़ती रहती हूं कि रब मुझे उठा ले और यह बच जाए।"

लोग परतापी के कथन की सच्चाई को समझते थे, लेकिन मुंह पर हर कोई "हां-हां" कह देता था। खरी-खरी कहने की जरूरत कोई भी महसूस नहीं करता था। आंगन से निकलकर हर कोई नंबरदार के बारे में एक ही बात कहता— "भई, किसी का क्या दोष ? अपनी करनी भोग रहा है।"

जिस नंबरदार को सारी उम्र किसी पर तरस नहीं आया था, अंत में मौत को उस

पर तरस आ गया। तीन दिन बेहोश रहने के बाद बड़ी कठिनाई से प्राण ने शरीर का साथ छोड़ा। परतापी और सरवन ने आसमान सिर पर उठा लिया। उनके ऊंचे विलाप ने सारे गांव को खबर दे दी। लोकाचार के नाते सारा गांव इकट्ठा हो गया।

परतापी ने मरे हुए बाप के मुंह में ताजा मक्खन लगाया—"अरी, मेरा बाप घी खाते मर गया।" जाने किस युग से चला आ रहा यह विलाप उसने व्यावहारिक तौर पर सच्चा कर दिया। फिर उसने बाप के सिरहाने चारपाई खड़ी करके उस पर धुली हुई चादर फैला दी। "इधर से लीड़ा ठीक करो, री !मेरे बापू को धूप न लगे। हाय, मैं मर जाऊं !' आंखों के आंसुओं की तुलना में वह नाक से पानी ज्यादा सिनक रही थी।

बागा माहंसी को उसी वक्त वलटोहे भगाया गया। दिन ढले जाकर कहीं परतापी का पति आया, तो बाबा चेत सिंह के दाह-संस्कार की तैयारी हुई।

गांव के बहुत सारे स्त्री-पुरुष टेक सिंह को विदा करने के लिए श्मशान तक पहुंचे। श्मशान के अधबीच पहुंचकर कंधा देनेवालों ने कंधा बदलने के लिए अरथी को भुईं पर रख दिया। परतापी ने बाप के सिरहाने पानी की मटकी फोड़ी और एक बार फिर उसकी छाती पर सिर रखकर विलाप किया।

पांच तत्व के पुतले का अंतिम पड़ाव आ गया। नंबरदार की अरथी चिता पर रख दी गई। बेटे के स्थान पर परतापी ने पिता की चिता को आग दिखाई। लपटों ने चारों तरफ से अपने सिर ऊंचे किए। लोग आग के सेंक से बचने के लिए जरा पीछे हट गए। लेकिन परतापी वहीं पिता के सिरहाने धूप में ही बैठ गई। उसे संभालने के लिए उसका पति और सरवन भी पास खड़े रहे। बाकी सब लोग बीसेक कदमों के फासले पर खड़े बरगद की छांह में जा बैठे। स्त्रियां जरा और परे होकर बेरी की छाया में जा बैठीं।

"ले रे नंबरदार !आज खतम हो गए सारे दावे। वो कहते हैं न : काहनूं करदा एं मेरी-मेरी, होणा अंत खाक दी ढेरी"*—गहने लुहार ने सिर हिलाकर कहा। उसके मन पर वही स्वाभाविक असर था जो हर मृत शरीर के साथ जानेवाले ईर्ष्या-रहित मनुष्यों के मन पर होता है।

"बेचारा अच्छा आदमी था"— महंदे कुम्हार ने रस्मी तौर पर कहा।

"कोई अंत है ? तेरे खिलाफ कोई गवाही नहीं दी होगी न !' चंदा सिंह ने घोर घृणा से कहा।

फिर क्या था ? वहां बैठे लोगों में नंबरदार के जीवन पर टीका-टिप्पणी शुरू हो गई। नंबरदार का अपना सगा वहां कोई नहीं था। इसलिए यह समीक्षा बड़ी निष्पक्ष और खरी बोली में थी।

"शराब चाहे किसी की भी पकड़ी जाए, सरकारी गवाह हमारा नंबरदार ही होता था"—दीपे ने घुटनों पर लपेटे हुए साफे को कसते हुए कहा।

---

* मेरी-मेरी क्यों कहता है, आखिर तो खाक की ढेरी ही बन जाना है।

"भई, सरकार ने नंबरदार, सफेदपोश बनाए ही गवाहियां देने के लिए हैं"—बाबा अकाली ने अंगरेजी सरकार की नीति पर रोशनी डालने के इरादे से कहा।

"बाबा अकाली !तेरे खिलाफ नंबरदार ने कितनी बार गवाही दी थी ?" दीपे ने बाबा अकाली से बातें सुनने की इच्छा से कहा।

"जितनी बार सरकार ने मुझे गिरफ्तार किया"—बाबा अकाली ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"बिना बात...हाथ धोकर पीछे पड़ गया था,...पास से मिलखा सिंह ने दाहिनी मूंछ को रा-सा ताव देते हुए कहा

"भई, यह उसका फर्ज था। वह सरकार का पिट्ठू था और हम सरकार के बागी। सबसे पहले उसने गदर आंदोलन के मुकदमे में हमारे खिलाफ गवाही दी। सिर्फ मेरे खिलाफ ही नहीं, कई और लोगों के खिलाफ भी। जिन्हें वह जानता तक नहीं था, उनके विरुद्ध भी उसने बहुत कुछ कहा।"

"मैं कहूं—गवाही बड़ी ठोककर देता था," चंदा सिंह ने थोड़ा-सा आगे झुकते हुए कहा।

"देखो तो, इसे भी हाथ लगे हैं"— दीपे ने दबी-सी मुस्कराहट के साथ कहा।

"भई, घायल भी वैद हो जाता है न !छह महीने सरकारी लंगर से खाके आए थे हम।" चंदा सिंह को लाहौर सेंट्रल जेल की याद हो आई।

चंदा सिंह देसी शराब बनाने के दोष में पकड़ा गया था और नंबरदार चेत सिंह की मौके की गवाही के आधार पर उसे छह महीने की कैद हुई थी।

"ओ यार, बाबा अकाली से सुनने दो कोई असरवाली बात"--सज्जन सिंह ने चंदा सिंह और दीपे को चुप रहने का इशारा करते हुए कहा— "हां फिर बाबा, भाइयों के साथ बैर कमाके उसे क्या मिला ?"

"मिल गई होगी किसी अफसर से सिफारिशी चिट्ठी—और क्या जमीनें मिल जातीं !" गहने लुहार ने थोड़ा-सा आगे सरकते हुए कहा।

"जमीनें भी उन्हें कौन-सी विलायत से लाकर देनी थीं ? बस, हमारा सिर और हमारी ही जूतियां"—इलमदीन ने भी अपनी राय पेश की। टोली में बैठा हर व्यक्ति कुछ-न-कुछ कहने का इच्छुक होता है।

"उसे मिली थी डिप्टी कमिश्नर की तरफ से नेकनामी की चिट्ठी। बस, इतने से ही वह भाइयों से बहुत दूर हो गया।" बाबा अकाली का भी मन बन गया था बातें करने का।

"वही बात—कहा करते हैं न कि गधी थाना हो आई है"—बीच में से दीपा बोल उठा।

"वह चिट्ठी क्या मिली, नंबरदार की झूठी गवाहियां देने की झिझक ही जाती रही"—बाबा अकाली ने हाथ के इशारे से दीपे को चुप कराते हुए अपनी बात जारी रखी।

"कौमी आंदोलन में उसने सबसे ज्यादा गवाहियां दीं— खास तौर पर गुरुद्वारा आंदोलन में। वह तो सिर्फ सिखों का आंदोलन था न। पर हमारा नंबरदार और सिख सफेदपोश सरकारी गवाहों में सबसे आगे होते थे—जबकि अभी जैलदार ने किसी की डायरी नहीं दी थी...।"

"वह अभी मुसलमान था"— उमरदीन ने मुसलमान जैलदार की दिल से तारीफ करते हुए कहा।

"मुसलमान या सिख का सवाल नहीं है, उमरदीन ! यह तो देश के साथ थोड़ा-बहुत प्यार होने की बात है। जैलदार अच्छा आदमी था, पर इस मामले में सरकार की नीति को भी जरा समझने की जरूरत है। सरकार—खास तौर पर धार्मिक आंदोलन में—किसी जत्थेबंदी के विरुद्ध उसी मजहब के लोगों का ज्यादा इस्तेमाल करती है। सो गुरुद्वारा आंदोलन में भी इसी चाल को मुख्य रखा गया। सबसे ज्यादा गुरुद्वारों के महंतों को हमारे खिलाफ खड़ा किया गया। सरकार शह न देती, या प्रोत्साहन देकर उन्हें खुद खड़ा न करती, तो इतना कुछ न होता। गुरुद्वारों के सुधार के लिए सन् बीस (पंद्रह नवंबर) में अकाल तख्त साहिब में पंथ की शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी बनी। उसका इतना असर पड़ा कि बहुत सारे महंतों ने अपने आप ही गुरुद्वारे कमेटी के हवाले कर दिए गए।"

"बाबा अकाली ! पर ये मोर्चे लगे क्यों ? पुराने महंतों को भी तो पंथ ने ही प्रतिष्ठित किया था"—सज्जन सिंह ने शंका-निवारण के लिए पूछा।

"पहले महंत होते भी अच्छे थे। वो सुमिरन करना, संगतों की सेवा करना और सिक्खों का प्रचार करना अपना धर्म समझते थे। बाद में गद्दियों के मालिक बननेवाले अपने फर्ज भूल गए। पूजा के धन ने उनकी मति मार दी। बिना मेहनत किए मिले धन ने उनके मन मलिन कर दिए। कई महंत कुकर्मी हो गए। जिनका धर्म को नेकी का उपदेश देना था, वो व्यभिचारी हो गए। फिर वो देशभक्तों के विरुद्ध सरकार की मदद करने लगे। हमारे सबसे बड़े धर्मस्थान ननकाना साहिब और अमृतसर हैं न ? गदर पार्टी के शहीदों को अमृतसर के पुजारियों ने पतित होने का फतवा दिया। बाबा गुरदित्त सिंह के कामा गाटा मारू के लोगों की भी पुजारियों ने भर्त्सना-निंदा की। और सबसे बुरी करतूत—दरबार साहिब के प्रबंधक और पुजारियों ने जलियांवाला बाग में गोली चलवाने वाले जेनरल डायर को दरबार साहिब में बुला कर सिरोपा दिया...!" कहते-कहते बाबा अकाली का चेहरा गुस्से और घृणा से लाल हो गया।

"हत् तुम्हारा बेड़ा डूबे !" सज्जन सिंह के शब्दों में सभी श्रोताओं की आत्मा घुली हुई थी।

"बताओ, कोई भी जिंदा कौम इस तरह के नीच लोगों को अपने धर्म-मंदिर कैसे सौंपे रखती ? बात समूची सिख संगत के बरदाश्त से बाहर हो गई थी। फिर महंत सिक्खी के किसी नियम का पालन भी नहीं करते थे। गुरु महाराज ने सिखों में छुआछूत को दूर किया था। और पुजारी छुआछूत को वहमी पंड़ितों से भी ज्यादा मानते थे। अछूतों में से सजे सिंहों का चढ़ावा—खासकर कड़ाह प्रसाद—पुजारी दरबार साहिब में स्वीकार नहीं

करते थे। मजहबी सिंहों का जत्था कड़ाह प्रसाद लेकर गया। उनके साथ पंथ के प्रसिद्ध अगुआ भी थे। अकालतख्त के पुजारी छोड़कर भाग गए। सिंहों ने अकालतख्त पर कब्जा कर लिया और मजहबी सिंहों का लाया हुआ प्रसाद अरदास करके बांट दिया। यह बात अक्तूबर महीने की बारह तारीख की है। इसके कोई महीना भर बाद पंथ के चुनिंदा सिखों और संगतों ने मिलकर गुरुद्वारों के प्रबंध के लिए शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी बना ली (15-16 नवंबर, 1920)। अगले महीने (14 दिसंबर) शिरोमणि अकाली दल बनाया गया। यहीं से गुरुद्वारा आंदोलन शुरू हुआ।" बाबा अकाली दो पल के लिए सांस लेने के लिए रुक गया।

सभी श्रोताओं की आंखें बाबा अकाली के चेहरे पर टिकी हुई थीं। हुंकारे के रूप में कुछ आदमी थोड़ा-थोड़ा सिर हिला रहे थे।

"असल में... असल में...अंगरेजों के विरुद्ध सिखों में अथाह जोश भरा हुआ था, जो इस बहाने फूट निकला। गदर आंदोलन की कुरबानियों और मार्शल लॉ के समय की ज्यादतियों—खासकर जलियांवाला बाग के हादसे—ने अंग्रेजी सरकार के बरखिलाफ सिखों के अंदर कहर का गुस्सा भर दिया था। दूसरी तरफ सिंह सभा आंदोलन ने सिखों में धार्मिक और भाईचारे की सूझबूझ पैदा कर दी थी। इस सारे इकट्ठे हुए जोश का झुकाव गुरुद्वारा सुधार की तरफ हो गया। अकाली दल बने अभी महीना-भर हुआ था, जब तरनतारन का हादसा हो गया। कुछ गुरुद्वारे, जैसे बाबे की बेर, स्यालकोट और पंजा साहिब आदि सिखों के कब्जे में आ चुके थे। अकाली दल का भेजा एक जत्था जत्थेदार तेजा सिंह भुच्चर की जत्थेदारी में तरनतारन के सुधार के लिए आया (25 जनवरी, 1921)। तरनतारन के पुजारियों को सरकार की पूरी शह थी। वो कुछ दिन पहले लाहौर के अंगरेज कमिश्नर मिस्टर किंग से मिले थे। किंग ने पुजारियों को अकालियों के खिलाफ खूब भड़काया और वादा किया कि जरूरत पड़ने पर सरकार पुजारियों की मदद करेगी। इस उकसावे में आकर पुजारी बहुत अकड़े हुए थे। एक तरफ तो उन्होंने जत्थेदार भुच्चर के साथ सुलह की बातचीत शुरू कर दी और दूसरी तरफ हमले की तैयारी में जुट गए। सारा दिन बातचीत चलती रही। शाम को पुजारियों ने जबानी-जबानी मान लिया कि हमें पंथ की सब शर्तें मंजूर हैं। इस खुशी में दीवान सज गया और अकाली जत्थे के सिंह जरा असावधान हो गए। तभी जाने किसने या पुजारियों ने निकट की हवेली से दीवान में तीन-चार गोले फेंक दिए, जिनसे कई सिंह जख्मी हो गए। संगत में भगदड़ मच गई। ऊपर से पुजारियों ने ईंट-रोड़े बरसाने शुरू कर दिए। कुछ पुजारी, जो दरबार साहिब में बैठे थे, बरछियां-गंड़ासे लेकर टूट पड़े। पलों में सब तरफ लहू की नदियां बहने लगीं। दो सिंह—सरदार हजारा सिंह और हुक्म सिंह—शहीद हो गए और सत्रह बुरी तरह जख्मी हुए। छोटी-मोटी चोटें तो अनेक को लगीं। इतनी कुरबानी देकर पंथ ने गुरुद्वारा तरनतारन साहिब पर कब्जा किया।"

"फिर जानते हो, कुरबानी के बगैर तो कुछ भी नहीं होता न"—पास से गहने लुहार ने श्रद्धा से सिर हिलाते हुए कहा।

"इस घटना से सिखों में और जोश भर गया। और ननकाना साहिब के शहीदी हादसे

ने तो जलते में तेल डालकर आग की लपटें ही उठा दीं।"

"वह हादसा भी उन्हीं दिनों हुआ था शायद," सज्जन सिंह ने अपनी याददाश्त पर जोर डालते हुए कहा।

"मुश्किल से बीस-पच्चीस दिन बाद "— बाबा अकाली ने टूटे हुए सूत्र को फिर पकड़ते हुए कहा। "ननकाना साहिब का महंत नारायण दास सारे पुजारियों से बड़ा माना जाता था। वह अपने आपको 'सिरी महंत' कहलवाता था। ननकाना साहिब की आमदन सारे गुरुद्वारों से ज्यादी थी—सो, जिसके पास सबसे ज्यादा माया, वही सिरी महंत। उसकी बदमाशियां सारी हदें पार कर गईं। एक बार उसने गुरुद्वारे के द्वार पर वेश्याएं नचवाईं। जड़ांवाले की मत्था टेकने आई छह बीबियों की उसके मुस्टंडों ने आबरू लूटी। एक सिंधी सिख की कुंआरी कन्या का गुरुद्वारे में शील भंग किया गया। उसने खुद एक मिरासिन को घर में डाल लिया!"

"तौबा ! अल्लाह के घर में शैतान !' गहने लुहार ने दोनों हाथों से कान पकड़ते हुए कहा।

"किसी ने उसे उतारा नहीं ?" दीपे की भवें गुस्से से तनी हुई थीं।

"बच्चू ! पाप का बेड़ा भर जाने पर ही डूबता है," बाबा अकाली ने दीपे की ओर देखते हुए कहा। और शहीदी हादसे से वह बेड़ा भर गया। हर जगह सिंहों में अथाह जोश था। कुछ उत्साही सिंहों ने ननकाना साहिब के सुधार का बीड़ा उठाया। फागुन का पहला पक्ष ही था। भाई लछमन सिंह, तेजा सिंह समुंदरी, करतार सिंह झब्बर आदि लायलपुर गुरुद्वारे में इकट्ठा हुए। उन्होंने अलग-अलग जगहों से तीन जत्थे ननकाना साहिब भेजने का फैसला किया। फागुन का दसवां दिन निश्चित किया गया। बाद में कुछ कारणों से प्रबंधकों की तरफ से वह तारीख बदल दी गई। दो जत्थों को उस तब्दीली की खबर मिल गई, पर जत्थेदार लछमन सिंह को नहीं पाई। वह अपना जत्था लेकर धारोवाल से चल पड़ा। दस फागुन (20 फरवरी 1921 ई.) को सवेरे ही जत्था गुरुद्वारा जन्मस्थान जा पहुंचा। मत्था टेककर जत्थेदार लछमन सिंह गुरुग्रंथ साहिब की ताबिया में बैठ गया और बाकी के सिंहों में से कुछ प्रकाश-स्थान की कोठरी के अंदर और बाकी बाहर बरामदे में सज गए। सारे सिंह मिलकर शबद पढ़ने लगे। उसी वक्त महंत नारायण दास अपने आदमी लेकर आ गया। उन्होंने आते ही दीवारों से गोलियों की बरखा शुरू कर दी। सिंह वैसे ही पालथी मारे बैठे रहे। बाहरवाले सिंह जख्मी होकर गिर पड़े, तो महंत के आदमी दीवारों से उतरकर नीचे आंगन में आ गए। प्रकाश-स्थान का दरवाजा तोड़कर उन्होंने अंदर गोलियां बरसाईं। तीन गोलियां गुरु ग्रंथ साहिब की देह में लगीं और चौथी जत्थेदार लछमन सिंह के सीने में।"

"हे परमात्मा ! बख्श देना !' श्रोताओं में से एक दर्द-भरी हूक उठी।

"जत्थेदार के हुक्म से सिंहों ने अंदर से दरवाजा खोल दिया, जिसे पहली गोली की आवाज सुनकर उन्होंने बंद कर लिया था। दरवाजे में खड़े होकर पापियों ने अंदर बैठे सारे सिंहों को गोलियों से भून दिया। सबके सब जख्मी होकर गिर पड़े, तो फिर हत्यारे बरछियां, गंड़ासे और टोके लेकर टूट पड़े। सात-आठ बरस का एक बच्चा डरकर गुरु

महाराज के नीचे छुप गया था। कसाइयों ने उसे केशों से पकड़कर घसीट लिया और वहीं टोके से उसका कीमा बना डाला।"

"होए ! तुम पर गुरु की मार, दुष्टो !' किसी भरे हुए कंठ की आवाज आई।

"परिक्रमा में एक जंड* हुआ करता था। अब भी है। जत्थेदार लछमन सिंह को जिंदा ही उस पर लटकाकर, तेल छिड़ककर आग लगा दी गई।"

"अति ही हो गई !'

बाकी के जख्मी लोगों के छोटे-छोटे टुकड़े करके वहीं तेल डालकर आग लगा दी गई। समझो, गुरु महाराज की गोद ही जलने लगी। दलीप सिंह उस वक्त किसी मित्र के घर में बैठा चाय-पानी पी रहा था। बंदूक की आवाज सुनकर वह भी गुरुद्वारे की तरफ दौड़ पड़ा। वह महंत का अच्छा जानकार था। वह दर्शनी ड्योढ़ी के निकट पहुंचा, तो सामने घोड़े पर सवार महंत नारायण दास नजर आया। महंत अपने चेलों-चांटों का उत्साह बढ़ा रहा था—सबको फूंक दो। नामोनिशान भी बाकी न रहे।... दलीप सिंह सब कुछ समझ गया था। परिचित होने के भाव से उसने निकट पहुंचकर जरा निहोरे के साथ कहा—महंत जी ! यह क्या किया आपने ! गुरु का वास्ता है, यह कत्लेआम बंद करो !.. उसकी सलाह मानने के बजाय आगे से महंत कड़ककर बोला—दलीप सिंहा ! आज एक भी सिंह जिंदा नहीं छोड़ा जाएगा। तू भी गुरु का सिंह है। सो, यह तेरा हिस्सा है। यह कहते हुए महंत ने खुद गोली मारी। दलीप सिंह घायल होकर वहीं गिर पड़ा। उस समय उसके मुंह से वाहिगुरु-वाहिगुरु की आवाज आ रही थी। उसे जिंदा ही पास जल रही भट्ठी में फेंक दिया गया।"

"बाबा अकाली ! क्या इतना जुल्म करनेवालों को रब नहीं पूछेगा ?' सज्जन सिंह ने अंदर की भड़ास निकाली।

"पूछेगा क्यों नहीं ? वहां हरेक को अपने किए कर्मों का फल भोगना पड़ता है। सुनो, सिंह शहादतें प्राप्त करके गुरुद्वारा आजाद करवा गए।"

"कितने सिंह शहीद हुए थे ?" बाएं हाथ बैठे मक्खन सिंह ने पूछा।

"ठीक-ठीक कुछ पता नहीं है। कोई कितने बताता है, कोई कितने। कम-से-कम छियासी और ज्यादा-से-ज्यादा दो सौ सुने जाते हैं। सरकार ने एक सौ तीस माने थे। सारे शहर में हाहाकार मच गया। उसी वक्त लाहौर, अमृतसर, लायलपुर तार खड़क गए। उसी दिन शाम को डिप्टी कमिश्नर ननकाना पहुंच गया। अगले दिन लाहौर का कमिश्नर किंग और बहुत सारे सिख इकट्ठे हो गए। अधजली लाशें अभी वैसे ही पड़ी हुई थीं। सिंह बड़े जोश में थे। लोग मुंह पर कह रहे थे—यह करतूत किंग की शह पर हुई है। महंत की इतनी हिम्मत नहीं थी।... मिस्टर किंग के विरुद्ध रोष बढ़ रहा था। वह बंदूकोंवाले डेढ़ सौ जवान लेकर गुरुद्वारे का दरवाजा घेरे खड़ा था। कुछ सयानों और सरकार के साथ संबंध रखनेवाले सज्जनों ने किंग को समझाया कि लोगों का जोश ठंडा करने के लिए वह गुरुद्वारा सिखों के हवाले कर दे। बिगड़ती हुई हालत को समझकर किंग ने अकल से काम लिया और गुरुद्वारे की चाबियां सरदार हरबंस सिंह अटारी के हवाले कर दीं।

(* पेड़ की एक जाति।)

अपने सिपाहियों को भी उसने वहां से हटा लिया। अगले दिन (22 फरवरी) पंजाब का गवर्नर कौंसिल के मेंबरों समेत ननकाना साहिब पहुंच गया। देखकर उसके दिल पर भी बहुत असर हुआ। उस दिन शाम को शहीद हुए सिंहों की अधजली लाशों का पंथ ने संस्कार किया। इस हादसे की गूंज सारे हिंदुस्तान में फैल गई। महात्मा गांधी भी खबर सुनकर ननकाना साहिब पहुंचे (3 मार्च)। उन्होंने तकरीर करते हुए कहा—यह कांड सरकार के जिम्मेदार अफसरों की शह से हुआ है, अकेला महंत यह नहीं कर सकता था। और बात भी सच्ची थी। सरकार ने सब कुछ खुद करवाया था। इतने कत्ल करने के लिए महंत को फांसी का हुक्म सुनाया, पर महज लोगों की आंखें पोंछने के लिए। बाद में अपील में उसकी फांसी की सजा माफ करके सिर्फ सात साल की कैद रहने दी गई—जिसमें से उसने लगभग चार साल भोगी ।..पर लोगों पर इस सबका जो असर हुआ, उसका नतीजा यह था कि गुरुद्वारा आंदोलन ने अंगरेजों का तख्त हिला दिया था। जितने मोर्चे आज तक लगे हैं, वह उन सबसे सख्त था। सारी सिख कौम के मन में गुस्से की लपटें भड़क उठी थीं। गुरु के बाग और जैतो के मोर्चे में ऐसा प्रतीत होता था, जैसे सारे के सारे सिख घरबार छोड़कर जेलों की तरफ चल पड़े हों।"

"सिख तो छोड़ो, मैं मुसलमान हूं, फिर भी तेरे मुंह से यह किस्सा सुनकर मेरा दिल करता है कि तुम लोगों के साथ जेल की तरफ चल पड़ूं"—गहने ने अपने दिल की आवाज सुनाई।

"गहने मियां !सिख क्या और मुसलमान क्या, हर नेक इंसान जुल्म के खिलाफ उठकर खड़ा हो जाता है। तब हिंदुओं और मुसलमानों, सबने किसी-न-किसी बहाने हमारा साथ दिया था।"

"मैं कहूं, जैतो को जानेवाले जत्थे जब हमारे गांव से गुजरा करते थे, तो वे हमारे तूतोंवाले कुएं पर रुका करते थे। अपने लंबरदार ने चौकीदार को साथ लेकर कुएं की गरारी जा उतारी।"

"भई, कहीं सिख भाई पानी न पी लें !' इलमदीन की बात टोककर दीपा बीच में ही बोल उठा।

"और कह ! मैं और सज्जन सूंह सीना तानके खड़े हो गए। हमने कहा—लंबरदार !तू क्या लगता है कुएं का ? कुआं हमारा है, और जो ऊभ-चूभ होगी, हम अपने आप सिर पर झेलेंगे। ..मैंने बैल लाकर कुआं जोत दिया था।" इलमदीन का भाव था कि उस कौमी आंदोलन में उसने भी योगदान किया था।

"जैतो के और गुरु के बाग के मोर्चे ने अंगरेजी सरकार की नींव हिला दी थी। यह वार्ता तुम्हें किसी और दिन सुनाऊंगा"—बाबा अकाली ने यह बात यह सोचकर कही कि श्रोता शायद ऊबने लगे होंगे।

"न भई, बाबा अकाली !ऐसा मत कर। लंबरदार का संस्कार होने तक सभी को यहां बैठना तो है ही—सो, बात को अधबीच में मत छोड़"— गहने लुहार ने बड़ी विनम्रता से विनती की।

"सुना दे ! सुना दे, बाबा अकाली ! लंबरदार कौन-सा रोज-रोज मरनेवाला है !" दीपे ने अपने स्वभाव के अनुसार कुछ विनोदी लहजे में कहा।

"भई बाबा, दिल तो सबका करता है सुनने को। तेरे मुंह से सुनकर हमारा रोआं-रोआं खड़ा हो गया है। आज मोर्चा लग जाए, तो हम सब तेरे साथ चल पड़ें"— सज्जन सिंह ने जैसे सबके मन की कह दी।

"लो सुनो फिर सब प्रेम से। बाबा ने कब न कही है !" पास से चंदा सिंह ने खुद ही जैसे बाबा की तरफ से स्वीकृति दे दी।

"अच्छा ?" बाबा अकाली ने एक मिनट आंखें मीच, चुप रहने के बाद कहा— "सुनो भई फिर।" बाबा अकाली अच्छी तरह पसरकर बैठ गया।

पंद्रह

"असल में इस आंदोलन की शुरुआत तो हुई थी गुरुद्वारा रकाब गंज की दीवार ढहने से"—बाबा अकाली ने जैसे नए सिरे से बात शुरू की।

"रकाबगंज ? वह कहां है ?" गहने लुहार ने जानकारी हासिल करने के लिए पूछा।

"नई दिल्ली में, जहां गुरु तेगबहादुर महाराज के धड़ का दाह-संस्कार किया गया था। अंगरेजों ने वाइसराय के महल तक सीधी सड़क बनाने के लिए गुरुद्वारे की दीवार ढहा दी। इस बात से सिखों के मन में नाराजगी पैदा हो गई। और ननकाना साहिब के हादसे से तो सबके दिलों में एक ज्वाला भड़क उठी। कोई डेढ़ महीने बाद (पांच अप्रैल को) सारे देश में तो शहीदी दिन मनाया गया। पंथ का हुक्म हुआ कि सारे सिख सोग में काले दस्तारे सजा लें। तब से अकालियों में काली पगड़ी बांधने का रिवाज चल पड़ा। बाद में धीरे-धीरे काली की तरह नीनी दस्तार ने ले ली। नहीं तो पहले सिर्फ निहंग सिंह ही नीले दस्तारे सजाते थे। शहीदी दिन को चारों तरफ काले दस्तारे और काले दुपट्टे ही नजर आते थे। अनेक लोगों को तो अंगरेजों ने काली पगड़ी बांधने के जुर्म में नौकरी से भी निकाल दिया।"

"उन दिनों तो काली पगड़ी गोली की तरह लगती थी अंगरेजों को"—पास से टहल सिंह ने कहा। वह भी भाई फेरू के मोर्चे में कुछ दिन कैद काट आया था।

"मैं कहता हूं, जिस-जिस काम से अंगरेज सख्ती करके दबाते रहे, सिंह ललकारकर वही काम करते रहे। असल में निशाना तो था अंगरेजों का कानून मानने से इनकार करने का—कि हम तुम्हारी हुकूमत नहीं मानते," बाबा अकाली ने एक बार चारों तरफ झांकते हुए कहा।

"और अंगरेज भी तो कई कामों में यों ही टांग अड़ा देते थे न ! भला गुरुद्वारों में

उनका क्या काम था ?' दीपे ने अपनी राय पेश की।

"बस यों ही सरकारी रोब। और अंत में सरकार ने पूरी तरह चित होकर इस आंदोलन में हार मानी। मोर्चे तो कई गुरुद्वारों में लगे, पर सबसे शानदार गुरु के बाग का और जैतो का मोर्चा था, जिनकी और कोई मिसाल नहीं मिलती। ननकाना साहिब के बाद अमृतसर दरबार साहिब में चाबियों का मोर्चा लग गया। शिरोमणि कमेटी बन जाने के बाद दरबार साहिब की चाबियां कमेटी के प्रधान के पास रहती थीं। डिप्टी कमिश्नर ने बिना किसी कारण पुलिस भेजकर चाबियां प्रधान से छीन लीं (7 नवंबर, 1921)। बस, वहीं से मोर्चा लग गया। सिख लीडरों ने कहा—ओए, तुम क्या लगते हो चाबियों के ? हमारे गुरुद्वारे और हम चाबियों के मालिक ! सरकार ने इतनी-सी बात पर बाबा खड़क सिंह और कई दूसरे लीडरों को पकड़ लिया। उनके बाद दूसरे लीडर गिरफ्तार होने के लिए मैदान में आ गए। गार दीवान होने लगे और कवि कविताएं पढ़ने लगे . "सज्जे हत्थ नाल चाबियां रख ऐथे/ साडा कौण है इक्क दबौण वाला !'* इस मोर्चे में कोई दो सौ लीडर गिरफ्तार हुए। आखिर सरकार हार गई। उसने लीडरों को छोड़ दिया और भरे दीवान में बाबा खड़क सिंह को चाबियां लौटा दीं (19 जनवरी, 1922)। समझो, कि यह सिर्फ लीडरों का मोर्चा था। फिर लगा गुरु के बाग का मोर्चा।"

"हां, उसकी कहानी जरा प्रेम से सुनाओ"— बाबा अमर सिंह ग्रंथी ने नीली पगड़ी का ढीला हो रहा पेंच संवारते हुए कहा। गुरु के बाग के मोर्चे में वह भी जत्थे के साथ गया था। हट्टे-कट्टे शरीर होने के कारण उसे बहुत मार पड़ी थी।

"गुरु के बाग का महंत था सुंदर दास। उसने ननकाना साहिब के हादसे से पहले ही गुरुद्वारा पंथ के हवाले कर दिया (31 जनवरी, 1921)। पंथ ने महंत की पेन्शन बांध दी। बाद में सरकारी अफसरों की शह पर वह किए हुए समझौते से मुकर गया। उसने सरकार को दरखास्त दी कि अकालियों ने जबरदस्ती मेरी जमीन पर कब्जा कर लिया है। इतने-से बहाने का सहारा लेकर सरकार मैदान में आ गई। गुरुद्वारा पंथ के कब्जे में आ जाने की वजह से वहां आठों पहर लंगर चलता रहा था। एक दिन पांच सेवादार गुरुद्वारे की जमीन से ईंधन के लिए सूखा कीकर काटकर ले गए। अगले दिन (9 अगस्त, 1922), सरकार ने उन पांचों सिंहों को गिरफ्तार करके छह-छह महीने की कैद सुना दी। यहां से मोर्चा शुरू हो गया। अमृतसर से जत्थे जाने लगे। कुछ दिन तो सरकार जत्थों को गिरफ्तार करके छोड़ देती रही, पर फिर मार-पीट शुरू हो गई—26 अगस्त से। गुरु के बाग का गुरुद्वारा उस वक्त पंथ के कब्जे में था। गुरुद्वारे की जमीन पर पुलिस ने कब्जा कर रखा था। गुरुद्वारे के लंगर के लिए जत्था ईंधन लेने जाता था, तो पुलिस लाठियां मार-मारकर बेहोश कर देती थी। असल में तो वही जगह थी, जवानों का हौसला देखने की। कैद काट लेना आसान है, पर लाठियों की मार सहना बड़ा मुश्किल।"

"बाबा अकाली, सुना है तुझे भी बहुत मार पड़ी थी।" दीपे ने सुनी हुई बातों की पुष्टि करने के लिए पूछा।

---

* सीधे हाथ से चाबियां दे दे/हमारा हक मारनेवाला कौन है ?

"वहां कम किसे पड़ती थी ? मुझसे भी ज्यादा मार खानेवाले कई सूरमा थे।" बाबा अकाली ने सबके बीच अपनी बड़ाई करना ठीक नहीं समझा। "मार-पिटाई करवाने पर पुलिस का सबसे सख्त अफसर बी. टी. लगा हुआ था। उसे भरम था कि वह मार-पीट करके सिखों को डरा लेगा और मोर्चा फेल हो जाएगा। पर वह क्या जाने कि जो चर्खियों और आरों से नहीं डरे, जिन्होंने हंस-हंसकर शीश कटवा लिए और बंद-बंद कटवा लिया, वो लाठियों की मार से क्या डरेंगे ! सत्नाम वाहिगुरु का जाप करता जत्था आगे बढ़ता, पुलिस रोक लेती और जत्थे के सिंह पालथी मारकर बैठ जाते। बी. टी. अपने सिपाहियों को ललकारता और वो निहत्थे बैठे सिंहों पर लाठियां लेकर टूट पड़ते। बी. टी. पागल कुत्ते की तरह काट खाने को दौड़ता—और मारो ! जोर से मारो ! सिंह लाठियां खाते जाते और वाहिगुरु-वाहिगुरु जपते जाते। आखिर बी. टी. खुद लाठी पकड़ लेता। वह घायल होकर गिरे सिंहों की छाती पर चढ़ जाता और उनके गुप्त अंगों पर ठोकरें मारता, मुंह पर कीलोंवाले बूट मारता और केश और दाढ़ियां खींचता। फिर बेहोश हो चुके योद्धाओं को घसीटकर पास के गंदे पानी के जोहड़ों में फेंक दिया जाता। दो-एक दिन तो उसने बेहोश पड़े सिंहों के ऊपर से दौड़ते हुए घोड़े भी गुजारे।"

"किसी असल का पूत नहीं होगा वो !' मिलखा सिंह ने बड़ी घृणा से कहा।

"महाराज ! बहुत मारा करता था वह"— अमर सिंह ग्रंथी ने किसी अनुभवी व्यक्ति की तरह सिर हिलाते हुए कहा।

"बाबाजी ! आप भी जत्थे में गए थे। आप तो भुक्तभोगी हैं !' दीपे ने ग्रंथी की तरफ देखकर कहा। उस समय उस शरारती जवान की आंखों में भी श्रद्धा थी।

"मार बेहद पड़ी थी। पर गुरुमुखो ! फौजें डोली नहीं थीं"— ग्रंथी ने फख्र से सीना फुलाकर कहा।

"वहां कोई भी माई का लाल नहीं डोलता था"— बाबा अकाली ने फिर बात का सिरा थाम लिया। "बी. टी. ने जुल्म की हद नहीं रहने दी और सिंहों ने सिदक की ! मैं कहूं, खालसा ने बता दिया कि शांतिमय मोर्चा किसे कहते हैं। इस मोर्चे की सारे हिंदुस्तान में धूम मच गई। कांग्रेस के प्रसिद्ध लीडर मदन मोहन मालवीय भी आए। उन्होंने गुरु के बाग जाकर अपनी आंखों सिखों को मार खाते देखा। मालवीयजी की आंखों में पानी आ गया। उन्होंने श्रद्धा के साथ कहा—किसी को शांतिपूर्ण आंदोलन का सबक सीखना हो तो सिखों से सीखे। ज्यादा क्या कहूं, बी. टी. ने पशुता की हद ही कर दी। पर उसकी सख्ती से भी जत्थे नहीं रुके।"

'बी. टी. को किसी ने उठाया नहीं ?' दीपा अपने अंदर के गुस्से को संभाल नहीं पा रहा था।

"पंथ का हुक्म शांत रहने का था। पर बाद में बब्बरों ने हिसाब निबटा दिया था। अभी थोड़ा ही अरसा हुआ है। रियासत पटियाला में बी. टी. अपनी कोठी बनाकर रहता था। एक दिन बब्बर करतार सिंह, कुंठा सिंह और बचन सिंह जा पहुंचे। शेरों ने गोलियों से बी. टी. को ढेर कर दिया।" बाबा अकाली की आवाज जोश से ऊंची हो गई थी।

"पापी के मारने को पाप महाबलि है"— ग्रंथी अमर सिंह ने तसल्ली महसूस करते

हुए कहा।

"इन्सान समझता नहीं है, वरना किए हुए कर्मों का फल जरूर भुगतना पड़ता है," पास बैठे गहने ने भी ग्रंथी के कथन की पुष्टि की।

"उसने अत्याचार भी बहुत किया था। अगर सोचा जाए तो बी. टी. ने सारी अंगरेज कौम का सिर नीचा कर दिया था और सिखों के शांतिमय मोर्चे ने सारे देश की शान चमका दी थी। कांग्रेस ने हमारे समर्थन में प्रस्ताव पास किए। मुसलमान लीडरों ने हमदर्दी प्रकट की। हिंदुओं ने धन देकर और अपने हाथों घायलों की सेवा करके हमारी सहायता की। उस वक्त सारी दुनिया में हमारी ही बातें होती थीं। एक पादरी (एंड्रयूज) ने पंजाब के गवर्नर सर एडवर्ड मैक्लेगन को लिखा कि वह खुद आकर मोर्चे का हाल देखे। गवर्नर ने खुद आकर गुरु के बाग का मोर्चा देखा (13 सितंबर)। उस दिन से मारपीट बंद हो गई। फिर सरकार ने जत्थों को गिरफ्तार करके कैद करना शुरू कर दिया। मेरे जख्म भी कुछ ठीक हो गए थे। सो मैं फिर जत्थे में चल पड़ा। जाते ही डेढ़-डेढ़ साल की सजा सुनाकर उन्होंने हमें अटक जेल में भेज दिया। हमारे जाने के एक दिन बाद पंजा साहिब का शहीदी कांड हुआ था। भई देखो, कितनी कुरबानी है। पेन्शनियों का जत्था अटक जेल की तरफ जा रहा था। पंजा साहिब की संगत ने सुना, तो जत्थे के लिए प्रसाद-पानी लेकर स्टेशन पर जा पहुंचे। स्टेशन मास्टर ने जरा अंहकार भरे ढंग से कहा कि गाड़ी यहां रुक सकती। इस पर जत्थे ने कहा कि हम अरदासा सोध कर आए हैं, सो गाड़ी आई और योद्धाओं की हड्डी-पसली चूर कर गई। दो सिंह—सरदार करम सिंह और सरदार प्रताप सिंह—शहीद हो गए और छह सिंह जख्मी हुए (30 अक्तूबर)। गाड़ी डेढ़ घंटा रुकी रही। संगतों ने कैदियों को प्रसाद-पानी दिया, पर यह खूनी हादसा देखकर कोई क्या खा पाता!"

"वाह! शहीदों की कौम है, बाबा, तुम्हारी!' गहने लुहार ने सत्कार में सिर झुकाते हुए कहा।

"शेरों की कुरबानियों के सामने सरकार के स्तंभ हिल गए। लाठियां खानेवालों के अलावा साढ़े पांच हजार से ऊपर सिंह कैद हुए। अंत में सरकार ने पल्लू छुड़वाने के लिए लाहौर के सर गंगा राम के नाम जमीन लिखकर वहां से पुलिस उठा ली (17 नवंबर, 1922)। फिर धीरे-धीरे कैद किए हुए सिंहों को छोड़ना शुरू कर दिया—और आखिर पांच महीनों में सबके सब रिहा कर दिए गए।"

"आफरीन हैं मर्दों के!' गहने की आवाज आई

"और जैतो का मोर्चा? कुछ जत्थे हमारे गांव से भी गुजरे थे"—सज्जन सिंह ने बाकी कहानी सुनने की इच्छा से कहा।

"वह लगा था महाराजा नाभा के बदले के लिए। नाभा का महाराजा रिपुदमन सिंह पंथ के साथ बड़ी हमदर्दी रखता था। नाभा-पटियाला के झगड़े का बहाना बनाकर अंगरेजों ने उसे गद्दी से उतार दिया (9 जुलाई, 1923)। शिरोमणि कमेटी और अकाली दल ने इस बात पर रोष प्रकट करने के लिए जैतो में सम्मेलन किया (26-27 अगस्त)। पुलिस ने

सम्मेलन में पहुंचकर सेवा में बैठे सिंह—इंदर सिंह मौड़—को गिरफ्तार कर लिया। संगतों को बहुत गुस्सा आया। महाराज को गद्दी से उतारे जाने के बाद सरकार ने वहां का राज-प्रबंध एक अंगरेज अफसर, विल्सन जान्स्टन, के हाथों में दे दिया था। उसके हुक्म से पुलिस के संगतों को गुरुद्वारा गंगसर में आने-जाने से रोकना शुरू कर दिया। संगतों ने उद्यम करके गंगसर में अखंड पाठ शुरू किया। पुलिस ने आकर सारे पाठियों को गिरफ्तार कर लिया, जिनमें पाठ करनेवाला भी शामिल था। इस तरह अखंड पाठ खंडित हो गया। इस खबर ने सारी कौम में रोष भर दिया। अगले दिन (15 सितंबर, 1923) से मोर्चा शुरू हो गया। अकालतख्त से पच्चीस-पच्चीस सिंहों के जत्थे चलने शुरू हो गए। जत्थे जैतो पहुंचते, तो गंगसर गुरुद्वारे तक पहुंचने से पहले ही गिरफ्तार करके कुछ लोगों को नाभा के बीहड़ में भेज दिया जाता और कुछ को बावल काटीं ले जाकर छोड़ दिया जाता। कुछ दिन बाद, गुरु के बाग की तरह, मार-पीट करके भूखे-प्यासे सिंहों को पुलिस बायल कार्टी ले जा कर छोड़ आती। मोर्चा लगे कोई महीना भर हो गया तो सरकार ने अकाली दल और शिरोमणि कमेटी को कानून-विरुद्ध संस्थाएं करार दे दिया (13 अक्तूबर)। अनेक प्रमुख लीडरों को पकड़कर जेलों में बंद कर दिया गया। सरकार का खयाल था कि लीडरों के पकड़े जाने से मोर्चा हल्का पड़ जाएगा। पर वह तो जोश से और भी ज्यादा गरम हो गया। ज्यों-ज्यों पुलिस की सख्ती बढ़ती जाती, त्यों-त्यों सिखों का रोष भी बढ़ता जाता। मोर्चे का हाल अपनी आंखों देखने के लिए कांग्रेस के बड़े लीडर पंडित जवाहरलाल नेहरू और प्रोफेसर गिडवानी जैतो आए। पुलिस ने उन्हें पकड़कर हवालात में बंद कर दिया। बाद में झूठ-मूठ का मुकदमा चलाकर उन्हें ढाई-ढाई साल की सजा सुना दी। पर एक महीने के अंदर ही उन्हें छोड़ भी दिया। मोर्चा अपनी रफ्तार से चल रहा था कि अगला साल चढ़ने के साथ भाई फेरू में नया मोर्चा लग गया (जनवरी, 1924)। उधर भी जत्थे जाने शुरू हो गए। सिंहों ने सोचा, जैतो के मोर्चे को जल्दी ही फतह कर लेना चाहिए। सो, अकालतख्त से पांच सौ का शहीदी जत्था रवाना किया गया (9 फरवरी, 1924)। मुझे उस जत्थे में जगह नहीं मिली। जत्था जाना था कुल पांच सौ सिंहों का और वहां जाने के इच्छुक थे हजारों। मैं फिर दूसरे जत्थे में गया था। वह नजारा भी बस देखने लायक होता था। गांव-गांव पड़ाव करता जत्था पैदल ही जाता था। आगे-आगे बैंड-बाजा होता। उसके पीछे पांच सिंह निशान साहिबवाले होते। फिर गुरु महाराज की सवारी और पीछे पांच सौ का जत्था। सबके नीले दस्तारे और केसरिया चोले पर कमरबंद बंधे हुए। ऐसा लगता था मानो गुरु गोविंद सिंहजी की शहीदी फौज जा रही हो। फिर वे मीठी-मीठी धारणा पढ़ते—'तेरी आ गई फौज अकाली, हुण बहुड़ पंथ दे वाली।' पांच सौ का जत्था होता और हजारों की संख्या में संगतें साथ आ मिलतीं। लोग जोड़ियां बनाकर गाते—"हो जो सभ अकाली हुण रुत आ गई जे।* मैं कहूं, सब तरफ धूम मच जाती थी !'

"वह रुत भी थी अकाली बनने की। अब तो..." दीपे ने कहते-कहते वाक्य को अधूरा ही छोड़ दिया।

---

* अब सब अकाली हो जाओ, मौसम आ गया है।

"बारहवें दिन जत्था जैतो जा पहुंचा। आगे से सरकार ने पूरी तैयारी कर रखी थी। गुरुद्वारा गंगसर और जैतो मंडी को जानेवाले रास्तों पर कांटेदार बाड़ लगा रखी थी। किले पर मशीनगनें लगी हुई थीं। सब तरफ पुलिस और फौज खड़ी थी। रियासत के सारे ही बड़े-बड़े अफसर मौके पर मौजूद थे। जत्था सत्नाम-वाहिगुरु का जाप करता गुरुद्वारा टिब्बी साहिब की तरफ जा रहा था। जत्थे के साथ-साथ दोनों तरफ हजारों संगतें भी जा रही थीं। जत्था अभी टिब्बी साहिब से डेढ़-एक सौ गज की दूरी पर था कि एक अंगरेज अफसर ने आकर रास्ता रोक लिया। वह कड़ककर बोला—आगे मत बढ़ो ! नहीं तो हम गोली चलाएगा, फायर करेगा। जत्था रुकने के बजाय अपनी चाल से चलता गया। तभी तीनों तरफ से तड़-तड़ गोलियां चलने लगीं (21 फरवरी)। गोलियों से जख्मी या शहीद होनेवाले गिर रहे थे और बाकी जत्था उसी तरह शबद पढ़ता चला जा रहा था। सिंहों के कदम रुके नहीं। तीन बार गोली चली। इस तरह गोलियों की बारिश के बीच जत्था टिब्बी साहिब जा ही पहुंचा। सिर्फ जत्थे के सिंह ही नहीं, संगतों में से भी बहुत-से लोग गोलियों से शहीद हो गए। कितने शहीद हुए—ठीक-ठीक कोई नहीं जानता। सरकार ने कहा कि इक्कीस सिंह शहीद हुए थे और तैंतीस जख्मी। शिरोमणि कमेटी का बयान है कि सौ सिंह शहीद हुए और दो सौ जख्मी। पर लोगों का खयाल है कि इससे ज्यादा सिंह शहीद हुए थे। शहीद होनेवालों की कुछ लोथें जत्था अपने साथ उठाकर टिब्बी साहिब ले गया था। बाकी सरकार ने गुम कर दीं। जत्थे के कई सिंह गिरफ्तार करके बावल के किले में भेज दिए गए। इस खूनी कांड ने सारे देश में हलचल मचा दी। कांग्रेस और दूसरी पार्टियों की तरफ से संदेसे पहुंचे कि वो हर तरह से सिखों की सहायता करने को तैयार हैं। पंथ अनुमति दे तो वे अपनी तरफ से जत्थे भेजना चाहते हैं। पर जत्थों के साथ जानेवालों की तो पहले ही बारी नहीं आ रही थी। मैं भी बड़ा हठ करके गया था। नहीं तो, वे तो कहते थे—तू पहले ही गुरु के बाग के समय दो बार जा चुका है। मैंने कहा—ओए, मैं शहीद करतार सिंह सराभा का साथी, गदर पार्टी में कैद काटनेवाला बंदा—मुझसे ज्यादा हक किसका बनता है ? खैर, पहले जत्थे पर गोली चलने के एक हफ्ता बाद—28 फरवरी को— अकाल तख्त से पांच सौ का दूसरा जत्था चल पड़ा।"

"वाह रे, सूरमाओ !" दो-तीन आवाजें एक साथ आईं।

"उस वक्त कितना जोश था संगतों में—बस, पूछो मत ! सब लोगों को यकीन था कि दूसरे जत्थे पर भी गोली चलेगी। सारा जत्था नहीं, तो बहुत सारे भाग्यवान शहीद होंगे। इसलिए हर कोई चाहता था कि उसका भी शहीदों में नाम हो जाए। और धर्म के लिए शहीद होने से ज्यादा अच्छा और काम हो भी क्या सकता है ? हमारे साथ एक भाई हरनाम सिंह था। उसके भाइयों ने पांच सौ रुपए भेंट करते हुए विनती की—अगर हमारा भाई जैतो में शहीद हो जाए, तो हम इसके हिस्से की सारी जमीन-जायदाद भी शिरोमणि कमिटी को दे देंगे। और हम खुद तीसरे शहीदी जत्थे में जाएंगे...सो, इस तरह..."

'सुब्हान अल्लाह !' गहना लुहार बीच में ही बोल उठा।

"अकालतख्त से जत्थे के चलते समय एक सिंह ने कविता पढ़ी :

'कलगी वालया जी, तेरा नाम लैके
असीं निकल आए हां मैदान अंदर।
अंग-संग हो करीं सहायता तूं
अपने बच्चेयां दी इमतिहान अंदर।
सारे मर मिटिए, भावें रहे कोई ना
नाम लैण जोगा वी जहान अंदर।
फरक वाल जिन्ना पर ना औण देइए
सच्चे साहिब ! सिखी दी शान अंदर।'*"

"बाबा अकाली ! काश, हम भी तब जवान रहे होते !" दीपे ने अंगड़ाई लेते हुए कहा। उसके मन में हसरत थी कि उम्र में छोटा होने के कारण तब किसी मोर्चे में नहीं जा सका था।

"बच्चू ! तब तो सबके मन में ऐसा ही जोश था—बल्कि इससे भी ज्यादा। और जोश के बगैर कुरबानी होती भी कब है ? हजारों की गिनती में थी संगत उस वक्त। सबकी आंखों से पानी बह रहा था। हर कोई चाहता था कि जानेवालों के बदले आगे होकर वह गोलियों के सामने सीना बिछा दे। उस वक्त लीडर हुक्म देते तो सारा देश ही चल पड़ता। एक उदासीन साधू भी था हमारे साथ। उसने अपनी सारी पूंजी पंथ के हवालेकर दी और खुद जत्थे के साथ चल पड़ा। एक सिंह ने संगत में खड़े होकर कहा—खालसा जी ! मेरे दो बेटे थे। एक पहले जत्थे में शहीद हो गया है। दूसरे को मैं इस जत्थे में भेज रहा हूं। इसके शहीद होने के बाद अगले जत्थे में मैं चलूंगा।...उसके बाद एक जवान बीबी उठी। उसके हाथों में फूलों का हार था। उसका पति हमारे साथ जत्थे में जा रहा था। उस बीबी ने पति के गले में हार डालकर चरणों में माथा टेकते हुए कहा—आप हिम्मत के साथ जाइए। देखिए, कहीं मन न डोल जाए।... देखने-सुननेवाले रो रहे थे, पर वह..."

"धन्य है उसकी हिम्मत !" सज्जन सिंह ने आंखें पोंछते हुए कहा।

उस समय कई अन्य सुननेवाले भी आंखें पोंछ रहे थे।

"बेटे सज्जन सिंह ! उस वक्त मेरे दिल में आया, कहीं..."

बाबा अकाली का दिल भर आया और उसने चुप होकर आंखें बंद कर लीं। उस समय वह अंदर बसी खेम कौर के साथ बातें करने में लीन हो गया था—'खैम कौरे ! कहीं... कहीं...तू भी पास होती, तो उस बीबी की तरह.. फिर मुझे कितनी खुशी होती ! मेरा सिर कितना ऊंचा होता पर...पर... अब भी मेरा सिर ऊंचा है। अब भी मैं तुझसे खुश हूं। तू शहीद है। मेरे प्यार के लिए शहीद हुई है।"

---

* ऐ कलगीवाले, तेरा नाम लेकर हम मैदान में निकल पड़े हैं/इस परीक्षा में तुम संग-संग रहकर अपने बच्चों की सहायता करना/हम सब मर मिटें और भले ही सारी दुनिया में हमारा कोई नामलेवा न रहे/फिर भी, ऐ सच्चे साहिब, हम सिक्खी की शान में बाल-बराबर भी फर्क न आने दें।"

श्रोताओं की आंखें बाबा अकाली पर टिकी हुई थीं। अधिकांश महसूस कर रहे थे कि उस समय उस बूढ़े देशभक्त के मन पर क्या बीत रही थी।

"उस वक्त महात्मा गांधी का तार आया"— बाबा अकाली ने अपने-आपको संयत करते हुए फिर कहना शुरू किया। "तार का मतलब था कि पहले जत्थे की तरह इस जत्थे पर भी गोली चलने का डर है, सो जत्था न भेजा जाए। कुछ लीडरों की भी यही राय बन गई थी। उन्होंने हमसे रुक जाने के लिए कहा। लेकिन हमने आगे से ठोककर जवाब दिया। हमने कहा—अरदासा सोधा जा चुका है। अब हम नहीं रुक सकते। जत्था सत् श्री अकाल के जयकारे लगाता चल पड़ा। पहला पड़ाव हमने बहोडू में किया। फिर झबाल, सुरसिंघ, दयालपुरा, मक्खी—मक्खी का नाम बदलकर हमने मरगिंदपुरा रख दिया—और फिर समरावां के पत्तन से नदी पार करके कोट ईसे खां, मोगा, कोट कपूरा के रास्ते होता हुआ जत्था जैतो जा पहुंचा। इस जत्थे को लेकर देश में हलचल मची हुई थी। हम भी कहते थे, हम पर गोली जरूर चलेगी। सरकार भी घबरा रही थी। पंजाब के नए गवर्नर सर मैल्कम हेली ने असेंबली में ऐलान किया कि असेंबली और कौंसिल के मेंबर जाकर जत्थे को समझा-बुझाकर रोकें और सरकारी सिख अखंड पाठ धर लें। तब सरकार पाबंदी हटा लेगी। नाभा के अंगरेज अफसर विल्सन ने भी ऐलान किया कि जत्थे के पचास-पचास सिख जाकर पाठ कर सकते हैं। पर सिख किसी किस्म की कोई शर्त मानने को तैयार नहीं थे। उस वक्त मदन मोहन मालवीय और कुछ दूसरे माननीय सज्जन जैतो पहुंचे हुए थे। उन्होंने दोनों धड़ों में समझौता करवाने का काफी जतन किया। हमें बाद में पता चला कि सरकार सब कुछ मानती भी थी और अपना वकार भी कायम रखना चाहती थी। उस वक्त हमें यही यकीन था कि गोली जरूर चलेगी। चौदह मार्च को जत्था जैतो जा पहुंचा। चारों तरफ पुलिस और फौज बंदूकें और मशीनगनें ताने खड़ी थी। हम सत्नाम वाहिगुरु जपते चले जा रहे थे। जत्था गंगसर से डेढ़-एक सौ गज की दूरी पर जा पहुंचा। समझो उसी जगह, जहां पहले जत्थे पर गोली चली थी। विल्सन ने खुद आकर हमें रुक जाने का हुक्म दिया। हम उसकी बात का जवाब देने के बजाय अपनी चाल से चलते रहे। उस वक्त मालवीयजी और उनके साथी भी विल्सन के पास खड़े थे। मालवीयजी ने बड़े रौब से कहा—मिस्टर विल्सन! देख लीजिए, जत्थे के पास कोई हथियार नहीं है। आप निहत्थे, शांत सिखों पर गोली नहीं चला सकते। आधा मिनट खामोशी से सोचते रहने के बाद विल्सन ने जत्थे को गिरफ्तार करने का हुक्म दे दिया। बस, हमें गिरफ्तार करके नाभा जेल में भेज दिया गया। जेल में अकालियों पर कितनी सख्तियां की गईं, उनके बारे में या तो हम जानते हैं, या परमात्मा। बस, कुछ मत पूछो। पर जिन्होंने सिर हथेली पर रखे हुए हों, वे कभी सख्तियों से भी डरे हैं? दूसरे के बाद तीसरा, और तीसरे के बाद चौथा—शहीदी जत्थे आते ही रहे। सोलह-सत्रह शहीदी जत्थे निकले। पच्चीस-पच्चीस के जत्थे इससे अलग थे। किसी और जत्थे पर गोली तो नहीं चली, पर गिरफ्तारियां और मार-पिटाई होती रही। अंत में, पीछेवाले जत्थे अभी रास्ते में ही थे कि मोर्चा फत्तह हो गया। सरकार सब पाबंदियां हटाकर, फौज और पुलिस को लेकर चली गई। अमृतसर से स्पेशल जत्था

गाड़ी से जैतो पहुंचा। उसने जाकर अखंडपाठ रख दिया। उसके एक हफ्ता बाद गवर्नर ने गुरुद्वारा एक्ट को मंजूरी दे दी (28 जुलाई 1925) जिसके तहत सारे गुरुद्वारों पर पंथ का हम कान लिया गया। धीरे-धीरे सारे अकाली कैदी रिहा कर दिए गए। इस तरह गुरुद्वारा आंदोलन समाप्त हो गया। इतनी कुरबानियां देकर सिंहों ने गुरुद्वारा एक्ट प्राप्त किया, जिसके कारण सिखों में सदा के लिए फूट पड़ गई।"

"वाह बाबा अकाली ! खुश कर दिया"—मिलखा सिंह ने जरा-सा पहलू बदलते हुए कहा।

"मैं कहूं, लंबरदार का मरना संवार दिया !' दीपे की बात सुनकर अधिकतर लोगों का ध्यान जलती हुई चिता की तरफ चला गया।

सोलह

धन्ने शाह आठों पहर एक ही बात सोचता रहता : 'तूतोंवाले कुएं पर दोनों घरों की आठ-आठ बीघे जमीन है। वैसे, ऐन चौकोर, मुरब्बे की तरह। बाग के लिए बहुत बढ़िया लगती है। बगीचा लगाकर बीच में छोटी-सी कुटिया डाल लें। सचमुच स्वर्ग का नमूना बन जाए। फिर पार्वती की मां को स्पेशल तांगे में बिठाकर ले जाएं—तांगा भले ही किराए का हो। 'जोत रे इलमे, कुआं। तेरी शाहनी आई है ! इलमा क्या, सज्जन सूंह क्या, सबके सब सिर झुकाके मेरे हुक्म के इंतजार में खड़े हों। अंगरेज का राज है। खेत-मजूर की क्या हस्ती है मालिक के सामने ! 'ला रे वशके के पुत्तर, शाहनी के लिए कुर्सी ला।' भजन कौर और जेना भी शाहनी के पैर छूकर कहें—'शुकर है, आज तो च्यूंटी के घर नारायण आए हैं।' उधर करमू और अलिया घर से रंगीन पायोंवाले पलंग और नीली किनारीवाली चद्दरें लेकर दौड़ आएं। फिर मैं कहूं, देखा पार्वती की मां, तू मुझे कंजूस समझा करती थी। लोगों ने खा-पहन लिया है। खा-पहन क्या, गंवा दिया है, मैंने तेरे लिए ये कुछ बना दिया है। है या नहीं, बिलकुल स्वर्ग का नमूना ! भली मानुस, कंजूसी किए बगैर कुछ नहीं जुड़ता। तू क्या जाने कि यह सब कुछ बनाने के लिए धन्ने शाह ने क्या-क्या झूठ, अपराध किए हैं, कितने छल-फरेब किए हैं ! अब मेरे बेटे, पोते, मौज करने रहेंगे पीढ़ियों तक। लेकिन··· लेकिन··· जिस चाल से वे दोनों नामुराद चल रहे हैं, उससे तो मंजिल बहुत दूर है। साल भर होने को आया और सज्जन सिंह का कर्ज तीन सौ से ऊपर नहीं बढ़ा। अगर इस बार की फसल में से भी उसने कुछ रुपये लौटा दिए, तब तो बेड़ा ही गर्क ! इस मामले में ये सिख बहुत बुरे हैं। बड़ी मुश्किल से फंसते हैं। हां, फौजदारी का कोई रगड़ा-झगड़ा पड़ जाए, तब आगा-पीछा भी नहीं देखते। और अगर कहीं, रब करे, कत्ल हो जाए, तब तो साहूकारों के पौ बारह। और वकीलों और पुलिसवालों की पांचों घी में।

ये मुसलमान इस मामले में तो अच्छे हैं। शहरों के व्यापारी तबके को छोड़कर गांव के मुसलमान कर्ज लेने में तगड़े हैं। फिर ब्याज जितना जी में आए लगा लो। पास में देने को कुछ होना चाहिए, लौटाने में भी 'न' नहीं करते। ये हिंदुओं, सिखों जितना जायदार का मोह नहीं करते। इलमदीन पहले दिन ही कहता था— मुझसे चाहो, तो बीघा भर जमीन लिखवा लो। पर धन्ने शाह ने कच्ची गोलियां नहीं खेली हैं। सयानों ने कहा है, बगुला पकड़ना हो तो पहले उसके सिर पर मोम रख दो। धूप से पिघलकर मोम उसकी आंखों में पड़ जाए तो चुपके से जाकर पकड़ लो। तब वह बेचारा पंख भी नहीं फड़फड़ाएगा। पंख हिलाने लायक रहेगा ही नहीं। यही हाल साहूकारी का है। धीरे-धीरे मकड़ी की तरह चारों तरफ तार का जाल बुनते जाओ। जिस वक्त सामनेवाला हिलने-तड़पने योग्य न रहे, तो एक ही वार में पकड़कर गर्दन मरोड़ दो। यहां भी सज्जन सिंह जरा मुश्किल से ही काबू आएगा। ज्यादा चिंता उसी की है। इलमा बेचारा तो खासा रास्ते पर आ गया है। दो सौ के नजदीक उससे छोटा करमू भी पहुंचने को हो रहा है। खैर, ये दोनों तो चार-पांच साल से ज्यादा पार नहीं कर पाएंगे। दूसरे के बारे में कोई और तरीका सोचना पड़ेगा।

और तरीका उसे सूझ गया। नंबरदार चेत सिंह की मौत की खबर सुनकर वह यकायक उछल पड़ा। 'धन्ने शाह ! हर एक का रब दाता है न ! उसने अपने-आपसे कहा। 'इससे बेहतर मौका फिर नहीं मिलेगा। और किसी दूसरे मौके का इंतजार शिकारी करे भी क्यों ? जो मौका मिले, उसी का फायदा क्यों न उठाए ? बस, एक बार खेल छिड़ जाए, फिर ये अपने-आप तैरते हुए आते हैं। जाटों का स्वभाव ही ऐसा है। एक बार दो नातेदार—चाहे बात कितनी ही छोटी क्यों न हो—आमने-सामने खड़े हो जाएं, फिर वे आगा-पीछा नहीं देखते। झोंपड़ी में चाहे तिनका तक न बचे, पर मूंछ नीचे नहीं होने देंगे। भला हो अंगरेजों का, जिन्होंने वड़ा हिसाब लगाकर इस कौम को अनपढ़ रहने दिया है। अगर जाट कहीं पढ़-लिख जाएं, तो न अंगरेज को तेरह रुपयों के पीछे गोली के सामने सीना बिछाने वाला मिले, और न साहूकारों और वकीलों की कोठियां बनें। जो लीडर इन लोगों को तालीम देने की बातें करते हैं, मेरा बस चले, तो उन सबको काले पानी भेज दूं ! गुस्से से धन्ने शाह की मुट्ठियां अपने आप ही भिंच गईं।

अपने लक्ष्य पर पहुंचने के लिए धन्ने शाह बड़ा उद्यमी था। वह रात-दिन एक कर देता था। सबसे पहले वह मुसलमान तहसीलदार के मुंशी से मिला। उसकी मुट्ठी गरम करके धन्ने शाह ने जरूरी जानकारी हासिल कर ली। फिर इलमदीन का इंतजार करने लगा।

"ओ, आ चौधरी इलमदीन ! कभी-कभी तो यार, तू ईद का चांद बन जाता है। मेरा खयाल है, पंद्रह दिन से ऊपर हो गए होंगे तुझे आढ़त में पांव रखे।" काफी दिनों के बाद आए इलमदीन से धन्ने शाह ने ऐसे निहोरे से कहा, जैसे वह मित्र के विछोह में बेहद उदास हो गया हो।

"इतने दिन कहां, शाह ! पिछले जुम्मे को ही तो आया था !" कहते हुए इलमदीन

शाह के बिछे हुए गद्दे के कोने पर बैठ गया।

"और आज है गुरुवार। चौदह दिन हो गए न फिर भी। एक बार किसी को कोई काम आ पड़ा था। वह कहने लगा—यार के, पहाड़ों से ही नहीं उतरते...। वही बात हुई न !' धन्ने शाह ने हाथ की कलम को कान में टूंगते हुए कहा।

"ओ शाह ! हुकम कर। ऐसी भी क्या आफत आ पड़ी ?" इलमदीन जरा उत्साहित होकर बोला। उसने सोचा, शाह को मुझसे ही कोई खास काम है—इसलिए वह जरूर मुझे कुछ और रकम देने को तैयार हो जाएगा।

"कोई बड़ा काम तो नहीं है"— धन्ने शाह ने दाएं हाथ से गर्दन खुजाते हुए कहा। "यह अपना नया तहसीलदार आया है न, चौधरी रहीमुल्ला खां—यह अपना ही बंदा है। भई, बड़ा मिलनसार और पक्का मुसलमान है। आते ही उसने अपना चपरासी भिजवाया है कि शाहजी एक बार जरूर दर्शन दे जाएं। अब तू जानता है, वह ठहरा वक्त का हाकिम—इलाके का राजा। हमारे जाटों, जमींदारों के लिए पटवारी और तहसीलदार ही सब कुछ होते हैं। इनकी चली कलम को कोई उलट जो नहीं सकता। तू सयाना है—किसी अफसर से खाली हाथ मिलने जाना भी शोभा नहीं देता न ! भले ही अपना आदमी है, पर आखिर है तो अफसर ही। ज्यादा नहीं तो एक कनस्तरी घी और दो-चार दर्जन अंडे ही सही।"

"तो शाह ! तू किसी आते-जाते के हाथ ही कहलवा भेजता। तेरा तो कौवे के हाथ भेजा संदेसा ही काफी था !'

"एक दिन सज्जन सिंह मिला तो था, पर उससे कहने का मन नहीं हुआ। तेरा वह सज्जन-मित्तर है, चाहे तू बुरा ही माने, पर ये लोग किसी का गुण नहीं जानते। बस, नै लांघे और ख्वाजा बिसरावाली बात है। असल बात कहूं—मुसलमान जैसा वफादार और कोई नहीं होता। हमारी तो, सच्ची बात है, निभती ही मुसलमानों के साथ है।"

"हम तो तेरे नौकर हैं, धन्ने शाह। जो हमारा गुण समझे, उसके लिए तो हम जान देने को हाजिर हैं !' इलमदीन ने रस्मी शेखी बघारी।

"और हम भी पीठ दिखानेवालों में से नहीं हैं, चौधरी इलमदीन—हां !' धन्ने शाह ने भरपूर निगाह से उसे देखते हुए कहा, जैसे वह अपने अटल व्यक्तित्व का श्रोता पर विशेष प्रभाव डालना चाहता हो।

इलमदीन को उत्तर के लिए सटीक शब्द नहीं मिले। उसने सिर्फ 'हां' में सिर हिला दिया।

"और फिर तूने नई बात सुनी है ?" धन्ने शाह ने थोड़ा-सा आगे झुककर कहा, जैसे वह कोई गहरे भेद की बात बताने जा रहा हो।

"क्या ?" इलमदीन ने प्रश्नभरी आंखों से उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"भई, तुम्हारे इलाके का सफेदपोश भी सिख, ज्यादातर गांवों के नंबरदार भी सिख। एक जैलदार ही मुसलमान है न। और वह भी सुबह नाम लेने लायक। कुछ कट्टर अकाली उसके खिलाफ दरखास्त देने को घूम रहे हैं। कहते हैं, यह सिखों का इलाका है—यहां सिख

जैलदार होना चाहिए। सुना ?" धन्ने शाह सामनेवाले पर प्रभाव डालने के लिए पल भर के लिए रुक गया।

"यह तो फिर...।" इलमदीन को कुछ सूझा नहीं कि वह और क्या कहे।

"और यह बात सुनकर अपने तहसीलदार साहब ने कहा है : मैं दूध का दूध और पानी का पानी करके रख दूंगा"—धन्ने शाह ने बाएं हाथ की मुट्ठी कसकर बांह को लंबा करते हुए कहा, जैसे वह सचमुच तराजू तौल रहा हो। "इस इलाके में सिखों और मुसलमानों की गिनती एक जितनी है। सफेदपोश सिख है, तो जैलदार मुसलमान ही रहेगा। इलाके में जितने नंबरदार सिख हैं, उतने ही मुसलमान होंगे। चौधरी साहब ने तो यहां तक कहा है कि जिस-जिस गांव में सिख और मुसलमान दोनों कौमें मालिक हैं, वहां-वहां एक नंबरदार सिख होगा, एक मुसलमान। जैसे पहले लखणेकेओं में है। तुम्हारे गांव का जिक्र भी चला था। सिख-मुसलमान आधे-आधे हो न तुम लोग ?"

"जमीन तो आधो-आध है, वैसे गिनती में हम ज्यादा हैं।" इलमदीन शाह की बात को अब कुछ-कुछ समझा था।

"तो फिर, हमारा कहा याद रखना। तुम्हारे गांव के दो नंबरदार बन जाएंगे। एक सिख, एक मुसलमान। और तुम्हारी पट्टी से दो-तीन दरखास्तें करने को तैयार भी हुए फिरते हैं।"

"कौन-कौन ?"

"इस बात से तुझे क्या लेना है ?..और मैंने तो कल मुंशी से साफ कह दिया था। मैंने कहा—मेरी तरफ से चौधरी साहब से कह देना जाकर, कि पीरूवाले का दूसरा नंबरदार बनना है, तो हमारा आदमी इलमदीन बनेगा। हमारी भी यह जिद समझ लो।"

"पर धन्ने शाह, लंबरदारी की दरखास्त सज्जन सूंह ने कर रखी है। मैं उसकी मुखालफत नहीं करूंगा"—इलमदीन ने 'न' में सिर हिलाते हुए कहा।

"इसमें मुखालफत किस बात की है ? नंबरदारी थी चेत सूंह की। और वह मर गया।"

"पर उसका हक सज्जन सूंह को पहुंचता है न !"

"लो ! सज्जन सूंह को पहुंचता है हक ! पांचवीं या सातवीं पीढ़ी पहले मिलते हैं कहीं दोनों। हक पहुंचता होता, तो नंबरदार सारी जमीन क्यों बेच जाता ? सज्जन सिंह तब कोई चारा न करता ?"

"जो भी हो, मैं सज्जन सूंह के सामने कचहरी में जाकर खड़ा नहीं होऊंगा।" इलमदीन इस मसले में दखल देने को तैयार नहीं लग रहा था।

"तू भी निरा बुद्धू ही रहा न !" धन्ने शाह ने आंखें लाल करके कुछ ताड़ना-भरे स्वर में कहा। "जानता भी है, सरकार के घर में नंबरदारी की कितनी इज्जत है ? फिर पंजोतरा[1] अलग। ज्यों-ज्यों दिनों-दिन मामले बढ़ेंगे, पंजोतेरे साथ ही बढ़ेंगे। चेत सिंह तो एक तिनका तक तोड़कर दोहरा नहीं करता था। सिर्फ नंबरदारी के सिर पर राज करता रहा। तुम सब हिस्सेदारों से कहीं ज्यादा सुखी था वह। पंजोतरे की रकम क्या कम होती है ! मेंह बरसे,

1. वसल किए गए लगान का पांच प्रतिशत जो सरकार की ओर से नंबरवार को दिया जाता है।

आंधी आए, बंधी-बंधाई रकम मिलती रहेगी। और फिर, सुना है, सरकार नंबरदारों के अख्तियार बढ़ाने के बारे में भी सोच रही है। थानेदार के बराबर ताकत होगी गांव में नंबरदार की। इज्जत भी बढ़ेगी, पंजोतरा भी बढ़ेगा। फिर तू नंबरदारी दूसरे घर क्यों जाने दे ? मेरा तो खयाल है, सज्जन सूंह इस बात पर नाराज होने के बजाय खुश ही होगा। भला तू उसके नजदीक है या कोई और ?

"तब मैं सज्जन सूंह से पूछ लूं। वह कहेगा, तो..."—इलमदीन ने पल्ला छुड़वाने के खयाल से आधी-अधूरी हामी भरी।

"बस फिर, बात सलाहों में पड़ी तो समझो गई !" धन्ने शाह ने मुंह बिचकाते हुए कहा। "सज्जन सिंह ने पूछा था तुझसे, दरखास्त देते वक्त ? और फिर अगर अल्ला दित्ता के परिवार में से कोई बन गया, तब तू और सज्जन सूंह खुश होओगे ? मैं तेरे लिए जाने कितना जोर लगाए बैठा हूं, और तू बिगड़ैल बैल की तरह लात ही नहीं धरता। सयानों ने ठीक ही कहा है : खांगड़ भेड़ शागिर्द जुलाहया, नफा नहीं इस मालों।* और तूने तो जाट होकर जुलाहों से भी आगे की कर दी !" धन्ने शाह जानता था कि जाट और सब कुछ सह जाता है, लेकिन अपने जाटपन पर उंगली नहीं धरने देता।

"धन्ने शाह, बातें तो तेरी सारी सच्ची हैं, पर मारे तो जाता है शरीर का नंगापन !" इलमदीन चमककर बोला। "कबीलेदारी के ही खर्चे पूरे नहीं होते, लंबरदारी के झगड़े के लिए खर्च कहां से निभाऊंगा ? या तो मार सीने पर हाथ और निकाल झगड़े के लिए हजार, दो हजार !"

"बस, इतनी-सी बात थी !" तीर निशाने पर बैठा देख शाह भी उत्साह के साथ बोला। "ले, साहूकार का बेटा न समझना, अगर रुपए की कमी के कारण मुकदमा हार जाए तो ! और फिर रुपए लगने भी कितने-से हैं ? तहसीलदार अपने हाथ में है। तू भी अब जाट का पूत नहीं, अगर किसी भाई-बंद या रिश्तेदार-संबंधी के कहने पर बैठ जाए। अल्ला दित्ते के यह न कहें कि इलमदीन समेत शाह को टांग के नीचे से निकाल दिया।" धन्ने शाह उस आदमी का नाम इस्तेमाल कर रहा था, जिसे अभी नंबरदारी के बारे में सपना भी नहीं आया था। हां, उसका नाम इलमदीन को चुभता जरूर था।

किस्सा कोताह, धन्ने शाह की प्रेरणा से इलमदीन तैयार हो गया। धन्ने शाह ने उसी वक्त साथ चलकर इलमदीन की दरख्वास्त दिलवा दी। दरख्वास्त में ज्यादा जोर इसी बात पर दिया गया कि गांव के मालिक सिख और मुसलमान बराबर-बराबर हैं। दोनों कौमों को एक-दूसरे पर भरोसा नहीं है। सो, दोनों पत्तियों के दो अलग-अलग नंबरदार होने चाहिए।

* दुधारू भेड़, शागिर्द जुलाहा, इस माल में नफा नहीं है।

सत्रह

"पप्पू ! चाची ने मुझे तेरी चड्ढी पहना दी है। मैं अब तेरी सहेली हुई"—छोटी-सी जंतो ने दोनों हाथों से चड्ढी के बल ठीक करते हुए कहा।

"सहेली नहीं, बहन। सहेलियां लड़कियां-लड़कियां होती हैं"—भजन कौर ने समझाया।

"और चाची : लड़के-लड़के क्या होते हैं ?" जंतो ने शंका-निवारण के लिए पूछा।

"लड़के-लड़के दोस्त। बड़ी बेबे कहीं की ! कैसी-कैसी बातें करती है"—भजन कौर ने लस्सीवाली हांड़ी को कूचते हुए कहा।

"फिर मैं पप्पू को क्या कहा करूं ?" जंतो ने एक सवाल और कर दिया।

"वीर !" भजन कौर ने छोटा-सा उत्तर दिया।

"सुनता है, पप्पू !" जंतो ने बड़े सयानों की तरह कहा। वह पैरों के बल पप्पू के सामने बैठ गई थी। "मैं अब तुझे वीर कहा करूंगी। और तू मुझे बड़ी बेबे कहा कर।"

"नहीं।" खेल में मग्न पप्पू ने जरा जोर से कहा। "तू मुझसे छोटी है। मैं जंते कहा करूंगा।"

"फिर चाची बड़ी बेबे क्यों कहती है ? मैं उससे बड़ी हूं ?" जंतो ने अपने कथन की पुष्टि के प्रमाण में कहा।

"सुन रहे हो ?" भजन कौर ने पास ही खाट पर बैठे सज्जन सिंह से आंख मिलाते हुए कहा। "अंधेर आया हुआ है आजकल के बच्चों पर तो ! हमें तो इस उमर में अभी दुनिया की हवा भी नहीं लगी थी।"

"हमें क्या पता ! हमने कहां देखा था ?" सज्जन सिंह ने रोटी के लुकमे को अचार लगाते हुए कहा। वह खेत जाने के लिए तैयार बैठा नाश्ता कर रहा था।

"तो आ जाते देखने के लिए। तुम्हें किसने रोका था ?" भजन कौर ने मुस्कराती आंखों से देखते हुए उत्तर दिया। भले ही उसकी उम्र चौंतीस-पैंतीस साल की हो गई थी, लेकिन घर में ऊष्मा-भरा प्यार होने के कारण उसकी नजर अभी युवतियों जैसी थी।

"आ जाता ! अगले डंडे लेकर दरवाजे में न खड़े हो जाते !" सज्जन सिंह ने सामाजिक भय प्रकट किया।

"मजाल थी किसी की—मेरे रहते !" भजन कौर ने छाती फुलाकर बड़े मान से कहा।

"तब तू जानती थी मुझे ?"

"नहीं तो क्या ! उस दिन महंदा कुम्हार कुएं पर गा रहा था न : मेरी ते माही दी प्रीत उदेकी, जद चूचक मूचक नाहीं।* मैं तो तुम्हें उससे भी पहले से जानती थी।"

---

* मेरी और मेरे साजन की प्रीत बहुत-बहुत पुरानी है।

"बल्ले ओए !"

"सच कह रही हूं। छोटे-से हुआ करते थे तुम। नंग-धड़ंग आंगन में दौड़ते रहा करते थे। बस, नीचे सिर्फ तड़ागी हुआ करती थी लाल पट्टी की। एकदम पप्पू जैसे लगते थे।" भजन कौर उस समय बेटे में अपने पति का सूक्ष्म आकार देख रही थी।

"और तू ?"

"मैं ? फाख्ता बनकर इस मुंडेर पर बैठी रहती थी"—भजन कौर ने मुंडेर की तरफ देखते हुए उत्तर दिया।

दोनों प्यार-भरे दिल अपनी उम्र को भूलकर उस समय बचपन में चले गए थे। बच्चों को खेल में मस्त देखकर पल-भर के लिए वे दुनिया की सारी चिंताएं भूल गए थे।

"उधर देखो। है किसी ऊंच-नीच की चिंता ?" भजन कौर ने बच्चों की तरफ इशारा करते हुए कहा। "हमारा भी इस उमर में ब्याह हो जाता तो इसी तरह खेला करते।"

सज्जन सिंह का ध्यान भी खेलते हुए बच्चों की ओर चला गया। पप्पू ने टूटे हुए घड़े की गर्दन के दो टुकड़े करके बैल बना रखे थे। तर्जनी जितने पतले, चारेक इंच लंबे तिनके से अच्छी तरह जकड़कर उसने जूआ बना लिया था। वहीं पर पीढ़ी के बराबर जगह साफ करके उसने आमवाला खेत बना लिया था। वह अपने "नाहरे" और "मीणे" की जोड़ी से गन्ना बोने के लिए बड़े जोर-शोर से खेत में हल चला रहा था। बाएं हाथ से वह जूए से जोड़ी को पकड़ लेता और खेत के एक सिरे से दूसरी मेंड़ तक खींचता ले जाता। दाहिने हाथ की तीनों अंगुलियों से वह पीछे-पीछे लकीरें खींचता आता। अगले सिरे पर पहुंचकर जोड़ी को वह दाएं हाथ से पकड़कर पीछे मोड़ लेता और बाएं हाथ का हल बना लेता। इस तरह, देखते-ही-देखते उसने पूरे खेत में हल चला लिया।

जंतो ने मुंडेर के पास ऊपर-नीचे दो ठीकरियां रखकर रोटियां पका लीं। वह बड़ी अदा से नंगे सिर पर काल्पनिक चुनरी का पल्ला संभालती हुई बोली— "मैंने कहा, रोटी तो खा लो हल रोककर। हम मुसीबत की मारियों को घर जाकर अभी सौ काम निबटाने हैं।"

"सुन रहे हो ?" भजन कौर के मटकी कूचते हाथ भी वहीं रुक गए थे।

"हम इन दोनों का ब्याह न कर दें अब ही ?" सज्जन सिंह ने मंद-मंद हंसी के साथ कहा। बच्चों के खेल में खोए वे दोनों भी बच्चोंवाली बातें कर रहे थे।

"तो डर किस बात का है ? पूछ लो भाभी से।"

"तुझे पसंद है बहू ?"

"मेरी पसंद का क्या है ? सासों को कौन पूछता है आजकल ? मियां-बीवी राजी तो क्या करेगा काजी !"

"ले, यह पड़ी है रोटी। हम तो चलते हैं फिर।" जंतो एक-दो बार उठने का उपक्रम करके फिर वहीं बैठी रही। बनावटी गुस्से से मुंह फुलाकर उसने दूसरी तरफ घुमा लिया।

"ओहो-हो हो-हो हो-ह !' पप्पू ने बैलों को पुचकारकर रोक लिया। "मीणे के लिए मखेरना* बनाया था ?' पप्पू ने कुरते के पिछली ओर हाथ मलकर रोटी खाने के लिए तैयार होते हुए कहा।

"हां, बनाया है मखेरना !हम सारा दिन सिरदर्द से पड़े मरते रहे हैं और इसे मखेरनों की पड़ी हुई है !' जंतो ने बड़ी अदा से दाहिने हाथ को उलटा करके माथे पर मारते हुए कहा।

"देख ले !तेरी नकलें हो रही हैं !' सज्जन सिंह ने ठट्ठा करते हुए कहा।

"नहीं, फतेह बीबी की। भजन कौर तो उलटा हाथ देना जानती ही नहीं —" कहते-कहते भजन कौर का सिर थोड़ा-सा पति की तरफ झुक गया। प्यार से तपते उसके चेहरे पर लालिमा उतर आई। उसे गर्व था कि उसने पति की आज्ञा का पालन करने में कभी कोताही नहीं की थी।

"भई, असली उमर तो यही होती है।" बड़ी उम्र के हर आदमी की तरह सज्जन सिंह भी बचपन के लिए ललचा रहा था।

"अरी जंत !मर जानी, तू यहां है !' जैना ने दरवाजे में खड़े होकर आवाज लगाई।

"आ जा, अंदर आ जा, बेबे !' भजन कौर ने घर आई जैना को आदर से बुलाते हुए कहा। "तूने तो हमारा घर ही छोड़ दिया है !'

"भजन कुरे !तू कह रही है यह बात !' भजन कौर की शिकायत सुनकर जैना तड़प उठी। वह तेजी से अंदर आई। "इस घर के सिवा कौन-सा आसरा है जैना का, जहां वह दिल की भड़ास निकाल सकेगी ?' जैना भजन कौर के पास भुईं पर आ बैठी।

भजन कौर ने अपने नीचे से पीढ़ी निकालकर उसे आदर के लिए जैना की तरफ बढ़ा दी। दाहिने हाथ से पीढ़ी को ठीक से जमाकर जैना उस पर बैठ गई।

"मैंने सोचा, क्या पता इलमदीन ने आने-जाने से रोक दिया हो"—पास से सज्जन सिंह ने भी ठट्ठा करते हुए उसी लहजे में कहा।

"सज्जन सिंहा !उसके रोके से तो मैं नहीं रुकती। हां, तुम दोनों जीव नाराज हो, तो मैं नहीं आया करूंगी।" जैना की आवाज में पूरी तरह नाराजगी भरी हुई थी।

"देख ले !गुस्सा हो रही है न !हंसते हुंओं के बीच आकर रोने लगी है ?' सज्जन सिंह ने देवर-भाभी के संबंध को सम्मुख रखकर मुस्कराते हुए कहा।

"मैं जानती हूं—जब तक जैना जिंदा है, उसे इस घर में आने से कोई नहीं रोक सकता। यह मेरी बहन का घर है। फिर भी मुझे तुम्हारा हंसी-ठट्ठा आज अच्छा नहीं लगा"—जैना ने कुछ अफसोस में और कुछ निहोरे में सिर हिलाते हुए कहा।

"धरम से !मैंने किसी नाराजगी से नहीं कहा है। मैं तो इलमदीन से भी दिल से नाराज नहीं हूं। हां, इतना गिला जरूर है कि उसे दरखास्त करनी थी तो मेरे साथ सलाह तो कर

---

* माथे पर बांधी जानेवाली झालर जो आंखों को मक्खियों से बचाए रखती है।

लेता। मुझे क्या लेना था लंबरदारी से ? वही बन जाता। मैं और वह कोई दो थे ?' लस्सी पीने के बाद सज्जन सिंह ने साफे से मूंछें पोंछते हुए कहा।

"वह शैतान के कंधे पर सवार हो गया। उसने घर के किसी भी प्राणी के साथ सलाह नहीं की, तो तेरे साथ कैसे कर लेता ! कसम है अल्ला पाक की, मुझे तो उस दिन बहन से ही पता चला है।" जैना का इशारा भजन कौर की तरफ था। "घर जाकर मैं बहुतेरा झगड़ी-खपी, पर वह आगे से बोला नहीं। सीधे मुंह तो वह मेरे साथ कभी भी बात नहीं करता, पर उस दिन से तो हम जबान साझा करने के भी हकदार नहीं रह गए हैं। उसे तेरे साथ मुकाबला नहीं करना चाहिए था। सारा गांव तुम्हारी दोस्ती की बातें किया करता था। पता नहीं, अभागा किसकी बैठक बैठ गया है... किसने यह उलटी पट्टी पढ़ा दी है।"

"देख जैना ! लंबरदारी में धरा कुछ नहीं है। न ही मैं इतना भूखा हूं चौधराहट का। पर अब तो सांप के मुंह में छिपकलीवाली बात हो गई है। खाए तो कोढ़ी, छोड़ दे तो लाज। सिर्फ जिद में आकर हम दोनों धड़े उजड़ रहे हैं। जो लोग हमारी यारी को देख-देखकर जला करते थे, अब मजाक उड़ाते हैं। जा, अब भी उससे कह दे—एक बार घर आकर आधी जबान से ही मुझसे कह दे, मैं दरखास्त वापस ले लूंगा। वही बन जाए लंबरदार। मुझे कोई गिला नहीं है।"

"तू दरखास्त वापस क्यों ले ले ? उसका क्या हक है लंबरदारी पर ? अकल करे, तो उसे बैठ जाना चाहिए। पर समझाए कौन ? तुम्हें क्या-पता, मैं अंदर-ही-अंदर कितना लड़ रही हूं। एक दिन तो बात यहां तक आ पहुंची—वह खीजकर बोला—तुझे सज्जन सूंह ज्यादा अच्छा लगता है, तो जा उसी को कर ले।...बता, मैं कौन-से कुएं में पड़ूं ?" जैना ने दाएं हाथ की पहली अंगुली से जमीन पर दायरा खींचते हुए कहा।

"वाहेगुरु ! बड़ी भाभी होने के कारण यों ही हंस-खेल लेते हैं, वरना मेरे लिए तो तू बड़ी बहनों के बराबर है।"

"सज्जन सिंहा ! मैं बड़ी दुखी हूं। अल्ला करे, मेरे जितना परेशान कोई न हो"—कहते-कहते जैना का गला भर आया। "एक जबान का कौल ही पालती आ रही हूं। कोई और औरत होती तो जाने कब की कहीं मुंह-सिर काला कर गई होती। भला इस जैसा कान्हा और कोई न मिलता उसे ? पर यह जैना है। इसकी कब्र पीरूवाले में ही बनेगी।"

"यह बेचारी पहले ही दुखी है। तुमने इसके साथ ये बातें क्यों छेड़ लीं ?' भजन कौर ने हमदर्दी जताते हुए कहा। वह भूल गई थी कि बात पहले उसी ने शुरू की थी।

"मुझे क्या पता था, यह इतनी गुस्सा हो जाएगी !' सज्जन सिंह का भी जैना का दिल दुखाने का इरादा नहीं था।

"तुझे कोई उलाहना नहीं देती, मैं तो अपने-आपमें ही फोड़े की तरह भरी पड़ी हूं। तगड़ी जगह पर धौल भी पड़ जाए तो कुछ नहीं बिगड़ता। लेकिन दुखती हुई जगह पर कपड़ा भी छू जाए, तो टीस उठने लगती है। वही हालत है मेरी। अल्ला जाने, पिछले जनम में कितने गुनाह किए होंगे।" जैना नहीं जानती थी कि वह इसलाम के सिद्धांत के उलट

बोल रही है। "ये देख मेरे हाथ", उसने दोनों हाथों को सज्जन सिंह के सामने फैलाते हुए कहा, "कितने-कितने बड़े छाले पड़े हुए हैं। तड़के उठकर अब तक सब्जी गोड़ती आई हूं।"

"हाय-हाय !' भजन कौर ने जैना का छालों से भरा हाथ पकड़ते हुए कहा— "आग लगे इस तरह के कामों को। सब्जियां गोड़ना भी हमारा काम है !'

"न गोडूं तो खाऊं कहां से ? जितने वह तौल-मापकर महीने के देता है, उतने से तो पेट का गड्ढा भरता नहीं। अब या तो शहर में अपनी अस्मत बेचकर खाने लायक कमाऊं या अपने हाथों करके। इस बार चार कनाल सब्जी अलग बोई है। ये जोंकें-सी पेट से जनी हैं, इन्हें भूख से बिलखते देखा नहीं जाता।" जैना ने पल्लू से आंखें पोंछ लीं।

"मुझे पता नहीं था, जैना ! चार-पांच महीने होने को आए हैं दोनों घरों को दूर-दूर हुए। अब इस हालत में हम तेरी कोई मदद भी नहीं कर सकते। कोई सुनेगा तो कहेगा—दुंबे से दोस्ती और घोड़े से वैर !' सज्जन सिंह ने मजबूरी प्रकट करते हुए कहा।

नंबरदारी का मुकदमा चल पड़ने के कारण दोनों घरों में खासी दरार पड़ गई थी।

"मैं तुम लोगों से और कोई मदद नहीं मांगती, सज्जन सिंहा ! बस, मुझे अपने घर आने से मत रोकना। भजन कौर को मैंने बहन बना रखा है। इससे मिलने आऊं तो माथे पर बल मत डालना।" जैना की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे।

"कैसी बातें करती है, बेबे !' भजन कौर ने उसका घुटना हिलाते हुए कहा— "भला तेरा क्या दोष है इसमें ? मरदों की बातें मरद जानें।"

"नहीं, मेरे दिल में तो उसके लिए भी कोई मैल नहीं है। बल्कि मैं तो कई बार तारीख पर जाने पर भी उसे बुला लेता हूं। पर वह शर्मिंदा हुआ खुलकर कुछ बोलता नहीं है। यों ही पीठ घुमाकर दूर-दूर रहने का चारा करता फिरता है। और तेरे साथ गुस्सा करने का तो सवाल ही नहीं है...।"

"चलो, छोड़ो इस बात को"—सज्जन सिंह की बात को बीच में ही काटते हुए भजन कौर बोल उठी। अब कोई और बात करो।"

दस-पंद्रह मिनट तक घरों की सरसरी बातें होती रहीं ज्यादा बातें जैना ही करती रही। उनके घर की माली हालत बद से बदतर हो गई थी। सौतनों की चखचख कभी बंद नहीं होती थी। फतेह बीबी का अलिया काम करने लायक हो गया था। अलिए के बराबर जैना को खुद खेतों में काम करना पड़ता था। इस साल उन दोनों ने चार-चार कनाल अलग-अलग सब्जी बोई थी। जैना हर वक्त खुरपी पकड़े खेत में बैठी सूखती रहती थी। उसकी सब्जी दूसरों से बेहतर थी। उसने सिर पर टोकरियां ढो-ढोकर खाद डाली थी। एक बार पानी देते समय उसकी क्यारियां सूखी रह गईं थीं कि अलिए ने जबरदस्ती बैल छोड़ लिए। उन दोनों क्यारियों को जैना ने बड़ी बेटी को साथ लेकर खुद रहट चलाकर भरा था। इतनी मेहनत करने के बाद उसे फलती हुई फसल देखकर खुशी भी होती थी। मगर वह यह नहीं जानती थी कि अगले साल उसके पास वह खेत भी नहीं रहेगा। धन्ने शाह का ऋण

ढेरों बढ़ गया था। मुकदमे जहां दस खर्च होते थे, वहां उसने बीस करवाए थे। इलमदीन हर रकम पर आंखें मूंदकर अंगूठा लगाए जा रहा था।

"चल उठ री, अब घर चलें"— जैना ने जंते को संबोधित करते हुए कहा।

"नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। चाचा कहता है, मेरा और पप्पू का ब्याह कर देना है"— जंते ने भोलेपन से कह दिया।

"हाय, मैं मर जाऊं !' भजन कौर ने दाहिना हाथ जांघ पर मारते हुए कहा— "इस लड़की के कितनी तरफ कान हैं। तेरे देवर ने यों ही हंसी में कह दिया कि इतने छोटे बच्चों का ब्याह कर देना चाहिए।" और इसने क्या बात बना ली है !' भजन कौर ने उज्र पेश किया। शर्म से उसका चेहरा लाल हो गया था।

"नहीं, तुम लोगों को पसंद है तो मुझे कोई उज्र नहीं है। बेशक भाई को बुलवाकर आज ही आनंद* पढ़या लो। मेरे सिर से बला तो टले !' जैना ने दाहिना हाथ हिलाकर कहा। गमों से छुटकारा पाने की इच्छा से वह अपने चेहरे पर मद्धिम-सी मुस्कराहट ले आई थी।

"लड़की के बाप से पूछ लिया ?" सज्जन सिंह ने भी कुछ मजाक में कहा।

"वह क्या लगता है लड़की का ?' जैना ने इस ढंग से कहा, जैसे लड़की पर पूरा-पूरा अधिकार उसी का हो। "और फिर लड़की तो कहती है, मैं चाचा की बेटी हूं। रात को सोते वक्त, गले में बांह डालकर कहेगी—जिस दिन चाचा मुझे शहर से कंधे पर बिठा कर लाया था, मैं उसी दिन से चाचा की बेटी बन गई थी।" बाप का तो वह हक ही नहीं मानती। सो उससे किसलिए पूछना ?"

दो-एक मिनट तक इसी तरह की दिल्लगी की बातें और होती रहीं। आखिर सज्जन सिंह उठकर खेत को चला गया और जैना जंते को अंगुली से लगाकर घर को चली गई।

अठारह

"सज्जन सिंहा, चलेगा ? बाबा अकाली कुछ बीमार नजर आता है"—दीपे ने निकट आकर कहा।

"कब से ?' कहते हुए सज्जन सिंह तख्तपोश से उठ बैठा।

"उसे तो पांच-छह दिन हो गए हैं"—पास से गहने लुहार ने उत्तर दिया।

"यार, सुना ही नहीं। मुकदमे के चक्कर में फंस जाने पर गांव की कोई खोज-खबर ही नहीं रहती।" सज्जन सिंह ने साफे को झाड़कर कंधे पर रख लिया।

---

* आनंद कारज—विवाह।

गांव के बीचोबीच छोटा-सा गुरुद्वारा था। उसके दोनों कमरे कच्चे थे। एक में गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश था और दूसरे में ग्रंथी रहता था। सामने दसेक मरले के आंगन में एक पुराना पीपल खड़ा था ! बताते हैं, वह बाबा आला सिंह के हाथों का लगाया हुआ है। दस-बारह बरस हो गए हैं, पीपल के दक्खिनी ओर की दो शाखें अंधड़ आने से टूट गई थीं। उससे पीपल की गोल छतरी में विकृति आ गई है। उसकी छांह और सजावट पहले जैसी नहीं रह गई है। बाकी बची तीसरी शाखा की भी कुछ टहनियां सूख गई हैं। वहमी और अनपढ़ लोगों में दंतकथा चली आ रही है कि यह सबकुछ किशनी महरी के टोने के कारण हुआ है। फिर ब्रह्म (पीपल) पर टोना करने का फल भी कहां अच्छा निकला ? उधर पीपल की शाखें टूटीं और उधर उसी साल किशनी महरी श्मशान में जा पहुंची। भले ही वह कई साल से दमे की मारी हुई थी, लेकिन उसकी मौत पीपल के शाप के कारण ही हुई मानी गई।

पीपल के तने के साथ लकड़ी का तख्तपोश बिछा हुआ था। शाम को कभी-कभी दो-चार शरीर उस पर मिल बैठते थे। निकट ही पूरब-दक्खिनवाले कोने में टोंटियों वाला कुआं था, जहां से सारा गांव पानी भरा करता था।

सिखों के सारे घर गुरुद्वारे के पच्छिम की ओर थे। कुएं के पूरब की ओर दो-तीन घर हिंदुओं के थे। उससे आगे पूरब की ओर ही मुसलमानों की पत्ती थी। हरिजनों के कुछ घर धुर पूरब-उत्तर के कोने में थे और कुछ पच्छिम की ओर, गांव से अलग।

दीपा गहने लुहार की दुकान से हल के फाल तेज करवाकर आ रहा था। वहीं उनकी इच्छा बाबा अकाली के घर जाने की हो गई। गहने ने तपिया दुकान में ही छोड़ दिया और दीपे के साथ चल पड़ा। वह बाबा अकाली का बहुत श्रद्धालु था। महंदा कुम्हार भी उनके साथ हो लिया।

रास्ते में सज्जन सिंह और उसके साथ बैठे बातें करते चार-पांच लोग भी उठकर चल पड़े। बाबा अकाली सबका साझा था। सारा गांव उनका सत्कार करता था।

"मुकदमे में भी भाई, दोनों यार-यार जुटे हुए हो न। कोई पराया थोड़े है ?" दीपे ने सज्जन सिंह के कंधे पर धौल जमाकर मजाक में कहा।

"दीप सिंहा ! एथे कोई न किसे दा बेली। दुनिया मतलब दी"*—महंदे कुम्हार ने कुछ गुनगुनाते हुए-से स्वर में कहा। वह किंगिरी के साथ थोड़ा-बहुत गाना जानता था। कभी-कभी वह तूतोंवाले कुएं पर खासी रौनक लगा दिया करता था।

"सच्ची बात कह रहा हूं, मेरे दिल में उसके लिए कोई बुरा खयाल नहीं है। बस वही बिना बात मुंह फुलाए फिरता है। मुझसे पहले ही कह देता तो मैंने दरखास्त ही न दी होती। अब यों ही जिद में आकर हठ पीटे जा रहे हैं—वरना लंबरदारी में क्या पड़ा है ?" सज्जन सिंह ने जैसे सबको बताते हुए कहा।

---

* यहां कोई किसी का दोस्त नहीं है, दुनिया मतलब की है।

"अब तो वही बात हो गई न कि भैंस के लिए डूबना हंसी की बात और मरदों के लिए भागना लाज"—दीपे ने एक प्रसिद्ध लोकोक्ति दोहराई।

"यों ही हाकिमों और वकीलों के घर भर रहे हैं दोनों, और क्या !' गहना लुहार दिल से इस मुकदमे को अच्छा नहीं मानता था।

"पर बताओ, अब किया क्या जाए ?" सज्जन सिंह को सचमुच ही छुटकारे का कोई रास्ता नजर ही नहीं आ रहा था।

"करना क्या है ? सीधे होकर सीस दो। अब तो यह चारों मजहबों की इज्जत का सवाल बन गया है"—टहल सिंह ने अपनी राय पेश की। उसने मौलवी के हमजोलियों से कुछ उड़ती-उड़ती बातें सुनी थीं।

इसी तरह की छोटी-मोटी बातें करते वे बाबा अकाली के घर जा पहुंचे। बाबा अकाली कोठे की छांह में खटिया पर लेटा हुआ था।

"ओ, सुना बाबा अकाली ! देखना कहीं...!' दीपे ने अपने स्वभाव के अनुरूप हास्य भरे स्वर में कहा।

"फौजें तैयार-बर-तैयार हैं, दीप सिंह ! वहां अंदर से खटिया उठा लाओ"—बाबा अकाली ने दाएं हाथ से इशारा करते हुए कहा।

दीपा बाबा अकाली के पैताने बैठकर उनकी टांग दबाने लगा। महंदा अंदर से चारपाई उठा लाया और उसे बाबा की खटिया के पास बिछा दिया।

"बाबा अकाली ! मुझे तो पता ही नहीं था। बस, अभी दीपे के मुंह से सुना तो पता लगा है।" दूसरी तरफ सज्जन सिंह भी बाबा की टांग दबाने लगा।

"लगता है, तुम लोग मुझे सचमुच बुजुर्ग बना दोगे," बाबा अकाली ने जैसे दोनों को संबोधित करते हुए कहा। "आज तो सुबह से ताप उतरा हुआ है। शायद इसीलिए हाथों-पैरों में थकान महसूस हो रही थी।"

"इसीलिए हम सेवा को हाजिर हो गए हैं। कहते हैं न, दिल से दिल को राह होती है," दीपे ने मुस्कराते हुए कहा। "ले भाई सज्जन सिंहा ! अपनी टांग पर कब्जा कर ले। खबरदार, जो मेरी टांग को हाथ लगाया तो !'

"हां-हां, उस साधु के चेलों की तरह बाबा की टांगें बांट लो !' गहने ने दूसरी चारपाई पर बैठते हुए कहा।

बाकी के चारों-पांचों आदमी भी नई बिछी चारपाई पर बैठ गए।

"साधु से तो चेलों को मुक्ति लेनी थी, मुझसे तुम्हें क्या लेना है ?" बाबा अकाली नें भेसदारी साधुओं पर व्यंग्य कसा।

"तुझसे, बाबा अकाली ! कुछ मत पूछ। बस, हमारे सीनों में तेरा ही दिल धड़क रहा है।" दीपे का कहने का ढंग भले ही मजाकिया था, पर उसमें श्रद्धा भी मिली हुई थी।

"सुना फिर, कल-परसों क्या हाल रहा है ? मैं तो आज तीसरे दिन कटाई से आया

हूं"—टहल सिंह ने थोड़ा-सा आगे झुकते हुए कहा।

"ज्यादा जोर तो दो-एक दिन रहा। परसों से यों ही हलका-हलका उतार-चढ़ाव-सा रहा। आज सुबह से आराम है"— बाबा अकाली ने टहल सिंह की तरफ चेहरा घुमाकर कहा। "बस करो, बेटो ! भला हो तुम्हारा।"

"तगड़ा हो, बाबा अकाली ! तेरी तो हमें अभी बड़ी जरूरत है" ! महंदे कुम्हार ने हौसला देते हुए कहा। आनेवाले हर आदमी को कुछ-न-कुछ जरूर कहना था।

"घबराओ मत। डरने की कोई बात नहीं है। देश को आजाद हुआ देखने से पहले मैं नहीं मरता। हम पैदा जरूर गुलाम मुल्क में हुए हैं, पर गुलामी में मरना नहीं है और खटिया पर पड़े-पड़े तो नहीं ही मरना है—हां, अंगरेज की गोली खाकर या भगत सिंह की तरह फांसी चढ़कर भले ही शहीद हो जाएं !' बाबा अकाली की आत्मा बोल रही थी।

"सुब्हान अल्ला !' गहने लुहार ने सिर हिलाते हुए कहा। "बाबा अकाली ! तुम लोगों की कुरबानियों को अल्ला पाक एक दिन जरूर फल लगाएगा।"

"गहने मियां ! अब देस ज्यादा देर तक गुलाम नहीं रह सकेगा। अंगरेज के पापों का घड़ा भर गया लगता है। बस, अब तो एकाध ठोकर लगने की देर है।" बाबा अकाली पल भर को दम साधने के लिए रुक गया। "मैं भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव की शहादत के बारे में पढ़ रहा था। बलिहारी है शेरों की हिम्मत की। असल में, पढ़ते-पढ़ते लहू जोश से गरम हो गया। मुझे शहीद करतार सिंह सराभा भी याद आ गया। वह सारी रात मैंने आंगन में चहलकदमी करते हुए काटी। महात्मा गांधी की अमन पसंदगी ने··· क्या कहूं...कुछ समझ में नहीं आता...।" बाबा अकाली उठकर बैठ गया।' "अंदर का गुस्सा अंदर ही दबा रहे तो कहते हैं न—भले मानुस का गुस्सा ज्यादा खतरनाक होता है। बस, यही बात है। मैं अपने आप में ही भुनता रहा—और अगले दिन मुझे बुखार हो गया।"

"जोश बदन में समा नहीं पाया न", सज्जन सिंह ने जरा-सा पसरकर बैठते हुए कहा।

"एक दिन तो मेरे दिल में बड़े बुरे-बुरे खयाल आते रहे। पर मैंने पक्के इरादे के साथ कहा—देख ओए करम सिंह ! खटिया पर पड़कर नहीं मरना है। मरना है तो सूरमाओं की मौत ! बस, अगले दिन बुखार टूट गया। अब मुझे पक्का विश्वास हो गया है कि मैं आजादी का झंडा झूलते देखकर ही मरूंगा।" बूढ़े देशभक्त का चेहरा तपकर लाल हो गया था।

"लेट जा, बाबा। थकावट से कहीं फिर तकलीफ न बढ़ जाए। ज्यादा बातें करने से भी सिर को हवा चढ़ जाती है"—टहल सिंह ने चिंता प्रकट करते हुए कहा।

"नहीं बल्कि इस तरह की बातें करके मेरा मन हलका हो जाता है। तुम लोग न आते तो शायद मुझे फिर बुखार हो जाता। टहल सिंहा, मुझे तो जैसे बातें करने का रोग ही लग गया है। कभी-कभी मैं किसी गहरी सोच के बहाव में बह जाता हूं। फिर मुझे तब तक चैन नहीं पड़ता, जब तक मैं किसी जिगरी मित्र के सामने जी हलका न कर लूं। जानते हो, मैं बीमार किस बात से हो गया था ? मैं कई दिनों से सोचता रहा हूं कि इतनी कुरबानियां

देने के बाद गांधी-इर्विन समझौता हुआ। पर उससे हमें मिला क्या ? एक भगत सिंह की जान भी न बचा सके।"

"वह समझौता भगत सूंह को छुड़वाने के लिए हुआ था ?" सज्जन सिंह ने सवाल किया।

"सीधे लफ्जों में नहीं। पर सारा देश यही उम्मीद लगाए बैठा था।" बाबा अकाली ने खंखारकर गला साफ किया। वे बातें सुनाने को उतावला हो उठे। "तुम लोग जानते हो, जर्मन जंग खत्म होने के बाद अंगरेजों ने रौलेट एक्ट पास कर दिया था। महात्मा गांधी ने उसके विरुद्ध मोर्चा लेने का ऐलान कर दिया। पर बैसाखी के दिन अमृतसर में जलियांवाला कांड हो गया। इसलिए महात्मा गांधी ने मोर्चा मुल्तवी कर दिया। मगर लोगों के मन में गुस्से की आग सुलगती रही। इसी समय एक बात और हो गई। सारी दुनिया के मुसलमान तुर्की के बादशाह को अपना खलीफा मानते थे। जंग में तुर्की अंगरेजों के खिलाफ था। जंग खत्म होने के बाद अंगरेजों ने जर्मनी की तरह तुर्की को भी रगड़ दिया। तुर्की सिर्फ तुर्की ही रह गया, सारे मुसलमानों का खलीफा न रहा। इस तरह सारी दुनिया में मुसलमानों का जो महान संगठन था, वह टूट गया। मुसलमान बहुत नाराज हुए। हिंदुस्तान में भी मुसलमानों ने रोष प्रकट किया। उसे खिलाफत आंदोलन कहा जाता है।"

"खिलाफत क्या ?" दीपे ने शब्द का अर्थ न समझने के कारण पूछा।

"खलीफा से खिलाफत शब्द बन गया न !" बाबा ने सहज ढंग से समझाते हुए कहा। "हालात ठीक देखकर महात्मा गांधी आगे आ गए। बस, सन् 20 के मध्य मोर्चा लग गया। गांधी ने ऐलान किया : सरकार के साथ हर चीज में असहयोग करो। सरकार की तरफ से मिले खिताब त्याग दो। वकालत और नौकरियां छोड़ दो। स्कूलों-कालेजों में पढ़ने मत जाओ। कचहरियों में मुकदमे लेकर मत जाओ। और सबसे बड़ी बात, विदेशी माल का बायकाट करो।" फिर क्या था !लोगों ने महात्मा गांधी का हुक्म खुदाई फरमान समझकर माना। कई वकीलों ने वकालत छोड़ दी। कई लोगों ने सरकार की तरफ से मिले खिताब त्याग दिए। कई लोगों ने नौकरियों से इस्तीफे दे दिए। विदेशी माल का—खासतौर पर जो माल अंगरेजों के मुल्क से आता था—बायकाट किया। गांधी जी ने कहा, घर-घर में चरखा चलाओ और कपड़े की कमी पूरी करो। बस, बेचारी खादी की भी सुनी गई। पहले खद्दर पहनने वाला गरीब समझा जाता था, अब खद्दरधारी देशभक्त माना जाने लगा। बड़े-बड़े लोगों ने रेशम उतारकर खद्दर पहन लिया।"

"तब गांवों में लड़के गाते फिरा करते थे : बाबे गांधी ने सभ नूं खद्दर पुआया, बावे गांधी ने"—गहने लुहार ने मस्ती में सिर हिलाते हुए कहा।

"और अगले साल यहां आ गया अंगरेजों का शाहजादा। अंगरेज उसे प्रिंस ऑफ वेल्ज कहते हैं। प्रिंस ऑफ वेल्ज को ही बाद में बादशाह की गद्दी पर बैठना होता है। कांग्रेस ने फैसला किया कि शाहजादे का पूरी तरह बायकाट करना है। अंगरेजों के ग्यारहवें महीने में (17 नवंबर, 1921) शाहजादा बंबई उतरा। लोगों ने काली झंडियों के साथ उसका

स्वागत किया। सारे मुल्क में हड़ताल रही और जुलूस निकले। बंबई में चार दिन तक गड़बड़ रही। सरकार की तरफ से लोगों के साथ हर दर्जे की सख्ती बरती गई। पुलिस ने जगह-जगह लाठियां बरसाईं और गोली चलाई। पचास से भी ज्यादा लोग मारे गए और चार-पांच सौ गोलियों से जख्मी हुए।"

"शाहजादे का सुलक्षण कदम पड़ा न, जिसके आते ही लहू की होली खेली गई !' दीपे ने व्यंग्य के लिए 'सुलक्षण' शब्द पर जरा जोर देते हुए कहा।

"शाहजादा जहां-जहां भी गया, यही हाल हुआ। लोगों ने काली झंडियों के साथ जुलूस निकाले। विलायती कपड़ों की बाजारों में होली जलाई। विलायती माल बेचनेवाली दुकानों के सामने मुजाहिरे किए। उस वक्त बायकाट की लहर जोर पर थी। बदले में सरकार ने भी कोई कमी नहीं रहने दी।"

"लो, करो बात ! ताकत होने पर कोई कब कमी रहने देता है !' गहने लुहार ने हामी भरते हुए कहा।

"सरकार ने कई काले कानून जारी कर दिए थे। सारे देश में दफा एक सौ चवालीस लगा दी थी। गोली से कितने मरे, और लाठियों से कितनों के हाड़ तोड़ दिए गए, इसका हिसाब कौन लेता ? हां, कैद होनेवालों की गिनती तीस हजार से ज्यादा थी।"

"कैद होनेवालों की गिनती अकाली मोर्चे से भी ज्यादा बढ़ गई !' कैदियों की बहुत बड़ी संख्या सुनकर महंदे ने कहा।

"पर बेटे, एक फर्क की तरफ भी ध्यान दे। वह सिर्फ पंजाब में, साठ लाख सिखों का, मोर्चा था, और यह सारे देश में तैंतीस करोड़ हिंदुस्तानियों का"--बाबा अकाली ने वास्तविक अंतर समझाते हुए कहा।

"इस हिसाब से सिखों का मोर्चा, बल्कि, बड़ा ही हुआ"—मिलखा सिंह ने जरा घमंड से सीना फुलाकर कहा।

"अकाली मोर्चा बड़ा ला-सानी था। पर मैं तो सभी मोर्चों को एक जैसा समझता हू, जो देश की आजादी के लिए लगे"— बाबा अकाली ने बात जारी रखते हुए कहा। "इस तरह मोर्चा लगे अगला साल आ गया। कहीं-कहीं लोगों ने भी हाथ उठा लिए थे। महात्मा गांधी ने इस बात की निंदा की। वह शुद्ध शांति चाहते थे। गांधी के ऐसा करने से कुछ लीडर और लोग भी उनसे नाराज हो गए। मौका ताड़कर सरकार ने गांधी को गिरफ्तार करके (18 मार्च ,1922) छह साल की सजा सुना दी। कैद हो जाने से लोगों को गांधीजी से फिर हमदर्दी हो गई। फिर जेल-कर्मचारियों के खराब सुलूक के कारण गांधीजी बीमार हो गए। आखिर, कोई दो साल बाद सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया (5 फरवरी, 1924)।"

"और बाकी कैदी ?" सज्जन सिंह ने सवाल किया।

"आहिस्ता-आहिस्ता सभी रिहा हो गए। कुछ पूरी कैद भोगकर और कुछ उससे पहले"— बाबा अकाली ने उत्तर देते हुए अपनी कहानी जारी रखी—"उसी साल देश के लिए एक बहुत बुरी बात हो गई। दिल्ली, लखनऊ, नागपुर, जबलपुर, इलाहाबाद,

शाहजहांपुर, कलकत्ता आदि कई शहरों में हिंदू-मुस्लिम फसाद हो गए। कोहाट में तो जैसे कत्लेआम ही हो गया। वहां से चार हजार हिंदू घर-बार छोड़कर चले आए (सितंबर, 1924)।"

"फसाद भी अंगरेजों ने ही करवाए होंगे !" गहने लुहार ने संशय-भरे स्वर में कहा।

"और क्या ? अंगरेजों का भला था हमारे दो मजहबों के लड़ाई-झगड़े में। हम सब एक हो जाएं, तो वो यहां एक दिन भी नहीं रह सकते। इन सांप्रदायिक दंगों ने हमें बहुत बदनाम किया। हमारा मोर्चा भी ढीला पड़ गया। महात्मा गांधी ने प्रायश्चित के तौर पर इक्कीस दिनों का व्रत किया। लेकिन कुछ फर्क नहीं पड़ा। अगले तीन साल तक बड़े-बड़े शहरों में हिंदू-मुस्लिम फसाद होते रहे।"

"पहले का सब किया-धरा कुएं में पड़ गया"— गहने ने अफसोस में सिर धुनते हुए कहा।

"मैं कहूं : आजादी के संग्राम को बहुत बड़ा धक्का लगा—और अंगरेज के हाथ मजबूत हो गए"—बाबा अकाली ने भी सिर घुमाते हुए कहा— "कांग्रेस और देश के कई दूसरे संगठन बड़ी देर से आजादी की मांग कर रहे थे। लोगों की आंखें पोंछने के लिए अंगरेज ने सन् अट्ठाइस में साइमन कमीशन भेजा।"

"साइमन क्या ?" मिलखा सिंह को समझ नहीं आया, तो उसने पूछ लिया।

"अंगरेजों की पार्लमेंट ने सात मेंबरों की एक कमेटी बनाकर भेजी। कमेटी के प्रधान का नाम था मिस्टर साइमन। इसीलिए उस कमेटी का नाम साइमन कमीशन रखा गया। कमिशन के सातों मेंबर अंगरेज थे। कांग्रेस ने इस बात पर एतराज किया कि जिस कमेटी के सारे मेंबर अंगरेज हैं, वह हमारे साथ इन्साफ कैसे कर सकती है।"

"बात भी ठीक है। जिसके बरखिलाफ दावा, अगर जज भी वही हो, तो फिर न्याय की आस कहां ?" गहने ने एक तरह से कांग्रेस की ताईद करते हुए कहा।

"बस, कांग्रेस ने कमिशन का बायकाट करने का फैसला कर लिया। साइमन कमिशन बंबई में उतरा (3 फरवरी, 1928), तो शहर में पूर्ण हड़ताल थी। एक बंबई क्या, सारे मुल्क में पूरी तरह हड़ताल की गई। लोगों ने काली झंडियों के साथ जगह-जगह जुलूस निकाले। सरकार ने जुलूसों के साथ सख्ती भी बरती। मद्रास में गोली चली। कुछ मरे और कुछ जख्मी हुए। कमिशन ने बड़ी ढिठाई से अपना दौरा जारी रखा। जहां-जहां कमिशन गया, लोगों ने काली झंडियां दिखाकर 'गो बैक' के नारे लगाए।"

"मतलब कि अपनी झुग्गी में ही रहो।" दीपे ने आधा-अधूरा अर्थ समझते हुए कहा।

"गो बैक का अर्थ है—वापस जाओ"—बाबा अकाली ने दीपे की तरफ झांकते हुए कहा।

"वही बात, कि यहां से दफा हो जाओ"—महंदे ने वाक्य के पिछले हिस्से पर जोर देते हुए कहा।

"न कमिशन ने अपनी जिद छोड़ी और न लोगों ने। कई जगह लाठी-चार्ज हुआ, गोली भी चली, पर लोगों ने हौसला नहीं हारा। हर जगह कमिशन के खिलाफ मुजाहिरे किए गए। सबसे ज्यादा दुखदायी घटना हुई लाहौर में।"

"क्या ?" मिलखा सिंह ने पूछ लिया।

"शायद अक्तूबर के महीने में कमिशन लाहौर गया (30 अक्तूबर, 1928)। कमिशन गाड़ी से उतरा, तो स्टेशन के सामने लोगों की भीड़ ठाठें मारते समंदर की तरह रास्ता रोके खड़ी थी। हर आदमी के हाथ में काली झंडी नजर आ रही थी। हर तरफ से 'साइमन कमिशन—गो बैक' और 'इन्कलाब-जिन्दाबाद' के नारों की गूंज आ रही थी। भगत सिंह और उसके साथियों की बनाई हुई नौजवान भारत सभा सबसे आगे थी। आगे की पांत में पंजाब के प्रसिद्ध लीडर लाला लाजपत राय खड़े थे। गोरा-शाही पुलिस ने कसाइयों की तरह निहत्थे लोगों पर लाठी बरसाई। कई लोगों की टांगें-बाहें टूट गईं। अनेक के सिर घुल गए। लाठियों की अंधाधुंध मार के सामने भीड़ में भगदड़ मच गई, पर लाला लाजपत राय अपनी जगह से एक इंच भी न हिले। वह उसी तरह बांहे उठा-उठाकर नारे लगाते रहे। उन पर ईद-गिर्द से तीन-चार सिपाही पागल कुत्तों की तरह टूट पड़े। अंत में पंजाब का वो शेर लीडर बेहोश होकर गिर पड़ा। लोगों में यह भी चर्चा थी कि पुलिस के अंगरेज डिप्टी सुपरिंटेंडेंट सांडर्स ने लाला जी को खुद लाठियां मारी थीं। बेहोश पड़े शेर को उठाकर उनके साथी अस्पताल ले गए। उनके सिर में बहुत लाठियां पड़ी थीं। सारी खोपड़ी एक तरह से फांक-फांक हो गई थी। सो, सत्रह-अठारह दिन अस्पताल में रहने के बाद लाल लाजपात राय जी शहीद हो गए (17 नवंबर, 1928)।"

"उह-हो !" अफसोस और हमदर्दी प्रकट करती दो-तीन आवाजें एक साथ आईं।

"पंजाब ने एक लाल गंवा दिया, जो हिंदुओं, सिखों, मुसलमानों, सबका साझा लीडर था"—कहते-कहते बाबा अकाली का गला भर आया। पल भर रुककर उसने फिर कहना शुरू किया : "कमिशन आया और चला गया। कांग्रेस अब बहुत सख्त हो गई। सन् अट्ठाइस के आखिर में कांग्रेस का बड़ा सेशन कलकत्ता में हुआ। वहां भरे जलसे में कांग्रेस ने ऐलान किया कि अगला साल खतम होने तक अंगरेजों ने हमें नौ-आबादी हुकूमत* न दी, तो हम पूर्ण स्वराज की मांगकर देंगे। अगले साल (दिसंबर, 1929) कांग्रेस सेशन लाहौर में हुआ। उसके प्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। इकतीस दिसंबर, रात के बारह बजे तक कांग्रेस ने इंतजार किया, पर अंगरेजों ने कोई परवाह नहीं की। अंगरेजों का दिन आधी रात से शुरू हो जाता है मतलब यह कि रात के बारह बजे के बाद नया साल (1930) शुरू हो गया। बारह बजकर पांच मिनट पर पंडित जवारलाल नेहरू ने ऐलान किया कि अब हम पूर्ण स्वराज लेकर रहेंगे।"

"और क्या, आधा-चौथाई राज भी क्या लेना !" दीपे ने बायें हाथ को दाएं से मरोड़ते हुए कहा।

"छब्बीस जनवरी को सारे देश में आजादी दिन मनाया गया। उसके बाद मे यह दिन

हर साल मनाया जाता है। जल्दी ही महात्मा गांधी ने मोर्चा लगा दिया। उसे नमक सत्याग्रह कहा जाता है—मतलब नोन का मोर्चो।"

"लो, क्या बात सूझी !नोन का मोर्चो। किसी काम की चीज पर मोर्चा लगाते, तो···।" दीपे के खयाल में नमक के लिए मोर्चा लगाना कोई खास बात नहीं थी।

"भई, वास्ता तो सरकार का कानून तोड़ने से था कि हम इस सरकार को नहीं मानते"—बाबा अकाली ने अपनी कथा जारी रखी। "साल के तीसरे महीने (12 मार्च, 1930) गांधीजी अहमदाबाद से जत्था लेकर चल पड़े। समंदर के किनारे से नमक उठाकर गांधीजी ने कानून तोड़ दिया और लोगों को हुक्म दिया कि वे जगह-जगह बिना लाइसेंस नमक बनाएं। फिर अगले महीने (6 अप्रैल) सारे मुल्क में जलसे हुए और जुलूस निकले। सरकार ने भी पूरे जोर से सख्ती शुरू कर दी। कई स्थानों पर बड़ी बेरहमी से लाठी-चार्ज किया गया। पेशावर और मद्रास में तो गोली भी चली। बस, मोर्चा गरम हो गया। एक महीने बाद (5 मई को) महात्मा गांधी को पकड़कर जेल में बंद कर दिया गया। यह दिन महात्मा गांधी के लिए सबसे ज्यादा शानवाला था। सारे मुल्क में हड़ताल हुई। बंबई में तो कई दिन दुकानें और कारखाने बंद रहे। कुछ जगहों पर थोड़ी-बहुत गड़बड़ भी हुई, और कई जगह पुलिस ने गड़बड़ का बहाना बनाकर गोली चला दी। इस गिरफ्तारी का असर मुल्क के बाहर भी पड़ा। विदेशों में बसे हिंदुस्तानियों ने भी रोष में आकर हड़ताल की। सरकार ने दफा 144 लगा दी और सत्याग्रह करनेवालों ने जगह-जगह उसे तोड़ना शुरू कर दिया। सारा देश ही एक किस्म का मोर्चा बन गया। लोग शराब के ठेकों पर और विदेशी माल की दुकानों पर पिकेटिंग करते। पुलिस उन्हें लाठियां मार-मारकर बेहोश कर देती।"

"एक दिन हम भी अपने हिस्से का छांदा* ले आए थे।" उस समय दीपे के चेहरे पर गर्व में भरी मुस्कराहट फैली हुई थी। "हम चार-पांच लोगों ने कसूर जाकर शराब में ठेके पर पिकेटिंग की। उधर से लाल पगड़ियोंवाले भी आ गए। मैं तो पहला डंडा खाकर ही चुप हो गया। उम्र में भी मैं कुछ हलका था अभी। सज्जन सूंह और दूसरे साथी जोर-जोर से नारे लगाने लगे। इनकी फिर पुलिस ने खासी सेवा की !'

"भई, किसी ने कमजोरी तो नहीं दिखाई थी न, भले कितनी भी मार पड़ी !' पास बैठे टहल सिंह ने कहा।

"उन दिनों कोई भी अपनी जिद नहीं छोड़ता था। वैसे, पुलिस ने कई जगहों पर कसाइयों से भी ज्यादा बुरी हालत की थी। कई नौजवानों के गुप्त अंगों को लाठियों से कुचल डाला, जैसे हम बछड़ों को खस्सी करते हैं।"

"तौबा !' गहने लुहार का सारा शरीर कांप उठा।

"मैं कहूं : कई नौजवान औलाद पैदा करने योग्य नहीं रह गए थे," बाबा अकाली

---

* स्थायत्त-मता।

ने गहने लुहार की तरफ देखते हुए कहा। उस वक्त बूढ़े देशभक्त के शरीर में जोश समा नहीं पा रहा था। "मेरे खयाल में मार खानेवालों के मुकाबले कैद होनेवाले ज्यादा सुखी रहे। मैं भी कैद होनेवालों में था। कुल मिलाकर नब्बे हजार से ऊपर लोग कैद हुए।"

"बाबा अकाली !तू तो हर मोर्चे में कैद होता रहा। धन्य है तेरी कुरबानी !" गहने लुहार ने श्रद्धा से सिर झुकाते हुए कहा।

"गहने मियां !कुरबानी करनेवाले एक से एक पड़े हैं। हम किस गिनती में हैं ? भीड़ की भीड़ लोग जेलों की तरफ चलने लगे थे। देखकर सरकार के स्तंभ हिल गए। सन् इकतीस चढ़ते ही अंगरेजों ने महात्मा गांधी को छोड़ दिया (26 जनवरी)। वाइसराय ने गांधी को मुलाकात के लिए बुलाया और अगले महीने (5 मार्च को) गांधी-इर्विन समझौता हुआ।"

"घुटने टेक दिए गौरमिंट ने !" मिलखा सिंह ने कुछ जीत-सी महसूस करते हुए कहा।

"नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता" – बाबा अकाली ने निराशा में सिर हिलाते हुए कहा।" समझौते की शर्तें अंगरेज ने अपनी मर्जी की रखी थीं। सच पूछो तो हम वह मोर्चा हार गए थे। हां, सरकार को यह पता लग गया था कि देशवासी कुरबानी देने के लिए तैयार है।" पल भर खामोश रहने के बाद अकाली ने फिर कहना शुरू किया : "सरकार ने सत्याग्रह के कैदियों को रिहा करना मंजूर कर लिया और महात्मा गांधी की कांग्रेस ने मोर्चा बंद कर दिया। कुछ दिन बाद हम जेलों से बाहर आ गए। हमारा खयाल था कि सरदार भगत सिंह और उसके साथियों को भी सरकार रिहा कर देगी, लेकिन हमारी यह ख्वाहिश पूरी न हुई। राजगुरु, सुखदेव और भगत सिंह को लाहौर जेल में फांसी पर लटका दिया गया।"

"बाबा अकाली !पूरी बात सुना उस मर्द के बच्चे की"—गहने लुहार ने बड़ी नम्रता से विनती की।

"अच्छा !ऊब तो नहीं जाओगे ?" बाबा अकाली ने सबकी तरफ झांकते हुए पूछा।

"हम ऊब जाएंगे ? तू न थक जाए कहीं !दो-चार दिन से स्वस्थ नहीं है न कुछ"—सज्जन सिंह ने बाबा का पांव जरा-सा दबाते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, बदन दबा देंगे हम"— दीपा खुशामदी लहजे में बोला।

"अच्छा, तो सुनो फिर। इस तरह की बातों से मैं नहीं थकता। बल्कि ये तो मेरी रूह की खुराक बन गई हैं। देख लेना तुम। अब मुझे बुखार नहीं होगा। मेरा दिल हलका हो गया है। दीपे, मुझे दो घूंट पानी पिला दे।"

पानी पीकर बाबा अकाली ने फिर कहना शुरू किया।

उन्नीस

"भगत सिंह के जन्म की तारीख मुझे याद नहीं है।* शहीद होने के समय उसकी उमर चौबीस साल से भी कम थी। उनका पिछला गांव खटकड़कलां (जिला जलंधर) दोआबे में है। पर उनका परिवार लायलपुर (चक्क नंबर पांच, बंगा, गुगेरा, ब्रांच) में मुरब्बों में रहता था। वहीं भगत सिंह का जन्म हुआ।"

"जाट हैं शायद ?" बाबा अकाली की बात को बीच में ही टोककर मिलखा सिंह ने बे-मौका सवाल पूछ लिया।

"हां, संधू जाट"— सरसरा उत्तर देकर बाबा अकाली आगे चल पड़ा—"गांव के प्राइमरी स्कूल से चार जमातें पास करके भगत सिंह लाहौर के डी. ए. वी. स्कूल में दाखिल हुआ। उस वक्त भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह लाहौर में ही रहते थे। वो कांग्रेस के ऊंचे लीडर थे। असल में देशभक्तों का घराना था। 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' आंदोलन का मशहूर लीडर सरदार अजीत सिंह जलावतन भगत सिंह का चाचा था। सो, देशभक्ति की लगन भगत सिंह को घर से ही लगी थी। जलियांवाले के खूनी कांड के समय भगत सिंह मुश्किल से ग्यारह-बारह साल का रहा होगा। उसके अबोध मन पर उस घटना का बड़ा असर हुआ। वह हर वक्त सोचता रहता कि इस अत्याचार का बदला कैसे लिया जाए।"

"वैसे, बाबा अकाली, बदला लेना तो चाहिए। कहीं वश चले तो...।" जवान दीपे की बांहें अपने आप फड़कने लगी थीं।

"बेटे ! जरूर कोई मरद उठेगा। देख लेना तुम।" बाबा अकाली की आंखों में उस समय कोई अनोखी ज्योति चमक रही थी।

"पंजाबी तो सात पीढ़ियों तक वैर नहीं भुलाते"—महंदे ने पंजाबियों के स्वभाव के बारे में अपनी राय पेश की।

"इस तरह की बातों में किसी की ज्यादती को भुलाना भी नहीं चाहिए।" बाबा अकाली भी इस बात से सहमत थे। "अगले साल एक तरफ गुरुद्वारा आंदोलन शुरू हो गया और दूसरी तरफ कांग्रेस ने असहयोग और बायकाट का मोर्चा लगा दिया। भगत सिंह बहुत छोटा था तब। फिर भी वह सत्याग्रहियों की सेवा में लगा रहता था। दरअसल उसके अंदर जोश तो था, पर उमर छोटी होने के कारण उसकी कोई पेश नहीं चलती थी। डी. ए. वी. स्कूल छोड़ने के बाद वह लाहौर के नेशनल कॉलेज में दाखिल हो गया। वहीं उसका सुखदेव के साथ मेल-मिलाप हुआ। उस समय यू. पी. और कई दूसरे सूबों में अंदर-अंदर बागी पार्टियां काम कर रही थीं। धीरे-धीरे इनकी उनसे भी जान-पहचान हो

---

* 11 नवंबर, 1907।

गई। शायद उन्नीस सौ पच्चीस में भगत सिंह, सुखदेव, भगवती चरण और धन्वंतरि आदि कई नौजवानों ने नौजवान भारत सभा बनाई। इस सभा की तरफ से उन्होंने लाहौर के ब्रेडला हाल में शहीद करतार सिंह सराभा की बरसी मनाई। वरना कोई और तो गदर पार्टी के उन शहीदों का नाम भी नहीं लेता था।"

"सरकार के डर के मारे—और क्या !" मिलखा सिंह के खयाल में सबसे बड़ा यही कारण था।

"कुछ लोग डर के मारे चुप थे—और कांग्रेस कहती है कि हथियारों के इस्तेमाल करनेवालों का नाम लेने से उनकी अहिंसा और शांति टूटती है। चलो, अपने-अपने विचार हैं।" बाबा अकाली की कांग्रेस के साथ भी हमदर्दी थी, इसलिए उन्होंने कोई कठोर शब्द नहीं कहा— "इस जलसे से लोगों में भगत सिंह का चरचा होने लगा। उसके कुछ दिन बाद काकोरी कांड हो गया।"

"काकोरी क्या ?" दीपे ने जानकारी हासिल करने के लिए पूछा।

"लखनऊ से इस तरफ आते हुए दूसरा स्टेशन है काकोरी। यू. पी. के विद्रोहियों ने उसके नजदीक एक गाड़ी को रोककर उसे लूट लिया था। कई लोग कहते हैं कि भगत सिंह भी गाड़ी लूटनेवालों के साथ था, लेकिन वह साथ था नहीं। हम जेल में उससे पूछते थे, तो वह जवाब में हंसकर कह दिया करता था—तुम लोग यों समझो कि अंगरेजों के बरखिलाफ कहीं भी कुछ हुआ हो, तो भगत सिंह साथ होगा ! वह बड़ा..."

"तुम जेल में उसके साथ रहे हो ?" सज्जन सिंह ने श्रद्धा-भाव से पूछा।

"मैं तब नमक सत्याग्रह के सिलसिले में कैद में था। भगत सिंह और उसके साथी अलग-अलग कोठरियों में बंद थे। पर कभी-कभी दर्शन-मेले हो ही जाते थे। बड़ा खूबसूरत, ऊंचा-लंबा, दर्शनीय जवान था। बाबा अकाली की आंखों में उस समय भगत सिंह की तस्वीर घूम रही थी। "काकोरी कांड के समय भगत सिंह कानपुर में था। मित्रों के कहने पर वह पंजाब आ गया। अगले दशहरे के मेले में लाहौर में भीड़ के बीच बम फट गया। कुछ लोग जख्मी भी हो गए। शक की बिना पर भगत सिंह और उसके कुछ साथियों को पुलिस ने पकड़ लिया। पर यह काम किसी शरारती आदमी का था, भगत सिंह की पार्टी का नहीं। पुलिस ने तकरीबन पंद्रह दिन के बाद भगत सिंह और उसके साथियों को छोड़ दिया। उनका असली काम तो साइमन कमिशन से शुरू हुआ। तुम्हें बताया है न, पुलिस की लाठियों से घायल होकर लाला लाजपत रायजी शहीद हो गए। भगत सिंह और उसके साथियों ने सोचा—यह तो सारी कौम की, सारे मुल्क की, बेइज्जती है। एक मामूली-से अंगरेज अफसर ने हमारे इतने बड़े लीडर को पीट-पीटकर मार डाला ! हम क्या हुए अगर हमने खून का बदला न लिया तो ?... और शेरों ने एक महीना भी न गुजरने दिया और बराबर का बदला ले लिया।"

"तो ? मरद मुंह से निकली बात को पूरा करके ही दम लेते हैं !" दीपे की खनकती हुई आवाज आई।

"डिप्टी सुपरिंटेंडेंट पुलिस सांडर्स का दफ्तर डी. ए. वी. कालेज के सामने था"—बाबा अकाली ने अपनी कहानी जारी रखी। "सांडर्स मोटर-साइकिल पर चढ़कर घर जा रहा था। वह अपनी गर्दन को हमेशा अकड़ाए रखता था।"

"भई, एक तो अंगरेज ! ऊपर से पुलिसिया। पुलिसिया तो जुलाहा-मोची भी हो, तो गिरगिट की तरह अकड़कर चलता है !' टहल सिंह के दिल में अंगरेजी सरकार की पुलिस के लिए बड़ी नफरत थी।

"आगे से दरवाजे के पास शिकारी भी घात लगाए बैठे थे। सांडर्स नजदीक आया, तो एक तरफ से राजगुरु ने पिस्तौल से गोली चलाई। शेर का निशाना ठिकाने पर लगा। सांडर्स उलटकर जा गिरा। दूसरी तरफ से भगत सिंह ने आगे बढ़कर पांच गोलियों से भरी हुई पिस्तौल उस पर खाली कर दी। सांडर्स वहीं का वहीं ढेर हो गया (17 दिसंबर, 1928)।"

"बोल-ए-ए—सो निहाल !' अंदरूनी खुशी को प्रकट करने के लिए दीपे ने जयकारा लगाया।

दूसरों ने भी 'सत्‌श्री अकाल' का मद्धिम-सा जवाब दिया। सांडर्स के मरने की, या लाला लाजपत राय का बदला लिए जाने की खुशी किसी के अंदर भी समा नहीं रही थी।

"कालेज की दीवार के पीछे चंद्रशेखर आजाद और उनके कुछ और साथी खड़े थे। भगत सिंह और राजगुरु भागकर उनमें जा मिले। गोलियों की आवाज सुनकर, दफ्तर से निकलकर पुलिस के बहुत-से आदमी पीछे भागे। भगत सिंह और उसके साथियों ने गोली का जवाब गोली से दिया। पुलिस का एक और आदमी मारा गया।"

"शेर की पूंछ को हाथ डालना क्या खालाजी का घर है !' मिलखा सिंह ने बात के आखिरी हिस्से को जरा लंबा खींचकर टिप्पणी की।

"भगत सिंह, राजगुरु, चंद्रशेखर कालेज से बचकर निकल गए"—बाबा अकाली अपनी रौ में कहता रहा।" बाद में पुलिस को वहां बहुत-से इश्तहार बिखरे हुए मिले। लिखा था : हमने लाला लाजपत राय की मौत का बदला लिया है। हम ऐसा न करते तो सारे देश की बेइज्जती और बदनामी होती। इस घटना से अंगरेजों को समझ लेना चाहिए कि अब हिंदुस्तान जाग उठा है। एक आदमी को जान से मारने का हमें अफसोस जरूर है, लेकिन इसके सिवा कोई चारा नहीं था, क्योंकि वह आदमी अंगरेज सरकार का एक पुर्जा और हमारे लीडर का कातिल था। वैसे भी, इन्कलाब में इस तरह की घटनाएं हो ही जाया करती हैं।—कुछ इसी तरह का था उस इश्तहार का भाव। रातों-रात इस तरह के इश्तहार सारे शहर में जगह-जगह बिखर गए।"

"मर्द जो भी काम करते हैं, छुपकर थोड़े ही करते हैं !' श्रोताओं में से किसी की आवाज आई।

"उस रात भगत सिंह और राजगुरु कलकत्ता की गाड़ी में चढ़ गए। सर्दी की रुत

थी। भगत सिंह ने सिर पर साहबों जैसे हैट और नीचे लंबा-सा ओवरकोट पहन रखा था। उसके साथ भगवती चरण की पत्नी और तीन साल का लड़का शचींद्र था। शचींद्र भगत सिंह को 'लंबे चाचाजी' कहा करता था। देखने वाले उन्हें एक परिवार ही समझ रहे थे। भगवती चरण की पत्नी भी, पुलिस की नजरों से बचने के लिए, इस ढंग से बातें कर रही थी, जैसे भगत सिंह उसका पति हो। और राजगुरु उनका घरेलू नौकर बना हुआ था।"

"मैं कहूं : बिजला सूंह की तरह भेस बदलकर निकल गए !' दीपे ने किसी वक्त सुनी हुई कहावत का हवाला दिया।

"राजगुरु लखनऊ में उनसे अलग हो गया और भगत सिंह कलकत्ता जा पहुंचा। लगभग साढ़े तीन महीनों तक पुलिस ने सारा जोर लगाया। पूरा देश छान मारा, पर भगत सिंह को पकड़ा नहीं जा सका। अंत में वह खुद ही प्रकट हुआ।"

"और ! वह छुपकर बैठनेवाला थोड़े ही था !' दीपा एक ऐसा श्रोता था जो तोड़े पर आई बात का उत्तर देने से रुक नहीं पाता था।

"भगत सिंह की पार्टी ने दिल्ली की बड़ी असेंबली में बम फेंकने का प्रोग्राम बनाया। आगरा में उन्होंने बम बनाने का एक गुप्त कारखाना बना रखा था। बम फेंकने की ड्यूटी लगी भगत सिंह और बी. के. दत्त की। पूरा नाम तो उसका बुकतेश्वर* दत्त था, पर सब उसे बी. के. दत्त ही पुकारते थे।"

"बाबा अकाली ! आफरीन है तेरी याददाश्त के !' गहने ने प्रशंसा-भरे स्वर में कहा। वह बहुत देर से कुछ कहने को उतावला हो रहा था।

"गहने मियां ! तुम्हारे मौलवी पूरे का पूरा कुरान शरीफ कंठस्थ कर लेते हैं, फिर ये तो उन कुछ गिनती के शहीदों की बातें हैं, जिनकी तस्वीरें मेरे सपनों में घुलमिल गई हैं। और फिर मैंने इन सबको जेल में देखा है। इनके खयाल सुने हैं। ये मैं कैसे भूल जाऊं? एक दिन आएगा जब स्कूलों में छोटे बच्चों को इन शहीदों की अमर कहानियां पढ़ाई जाया करेंगी। आजकल लाहौर और अमृतसर में जहां अंगरेजों के बुत खड़े हैं, वहां करतार सिंह सराभा और भगत सिंह जैसे कौमी परवानों के बुत होंगे। उनकी याद में मेले लगा करेंगे।" बाबा अकाली जैसे कोई भविष्यवाणी कर रहा था।

"भई, उन्होंने काम भी तो ऐसे किए हैं न ! हंस-हंसकर सीस देना कोई आसान काम नहीं है," टहल सिंह ने श्रद्धा से सिर हिलाते हुए कहा।

"हां तो, बम फेंकनेवाली बात बताने जा रहा था तू"—सज्जन सिंह ने अपनी तरफ से भूली हुई बात याद कराने के इरादे से कहा। वह बाबा अकाली का बड़ा श्रद्धावान श्रोता था।

"असेंबली में कुछ देसी मेंबर भी हुआ करते थे। अब भी हैं। अंगरेजों ने लोगों का गला घोंटने के लिए दो बिल पेश किए। असेंबली ने बहुमत से दोनों बिल रद्द कर दिए।

* बटुकेश्वर।

वाइसराय ने कहा—मैं अपने विशेष अधिकारों से दोनों बिल लागू कर दूंगा। भगत सिंह आदि ने सोचा—अरे !यह क्या तरीका हुआ। अगर सारी असेंबली के किए को एक आदमी को रद्द कर देना है, तो मेंबर बनाने का क्या अर्थ ? यह तो फिर औरंगे वाला राज हो गया। हमें बताना है कि हमें इस तरह का राज मंजूर नहीं है। सो, उन्होंने असेंबली में बम फेंकने का प्रोग्राम बना लिया। जिस दिन वाइसराय को उन बिलों का ऐलान करना था (8 अप्रैल, 1929), भगत सिंह और बी. के. दत्त भी बम लेकर असेंबली हाल में जा घुसे। जहां गैलरी में कार्रवाई देखनेवाले लोग बैठते हैं, वहीं ये दोनों जा बैठे। विट्ठल भाई पटेल और पंडित मोतीलाल नेहरू वाइसराय की कुर्सी के पास बैठा करते थे। सो, भगत सिंह और दत्त ने पहले से ही तय कर रखा था कि बम पिछली तरफ, खाली जगह पर, फेंकने हैं। किसी को मारना नहीं है, सिर्फ डराना है। और बम खास तौर से इस तरह के बनाए गए थे कि धमाका तो जोर का हो, पर जान का नुकसान न कर सकें। जिस समय वाइसराय ने उन बिलों का ऐलान किया, भगत सिंह झट से अपनी जगह से उठा और उसने वाइसराय की कुर्सी के पिछली तरफ बम दे मारा। बम फटने से सारा हाल कांप गया। उसके बाद दूसरा बम बी. के. दत्त ने तय की हुई जगह पर फेंका। बमों के धमाके से धरती कांप उठी और सारा हाल धुएं से भर गया। असेंबली हाल में भगदड़ मच गई। हर कोई अपनी जान बचाने के लिए जिस मुंह हुआ, दौड़ पड़ा। थोड़ी देर के लिए तो सब ऊपर-नीचे हो गया। उस वक्त भगत सिंह और दत्त भागना चाहते, तो भीड़ में मिलकर खिसक सकते थे। पर उन्होंने पहले से ही प्रोग्राम बना रखा था कि भागना नहीं है। वे दोनों अपनी जगह पर खड़े 'इन्कलाब : जिंदाबाद !' नौकरशाही : मुर्दाबाद ! के नारे लगाते रहे। साथ ही उन्होंने छपे हुए इश्तहार फेंके, जिनका मोटा-सा अर्थ था कि हमने ये बम किसी की जान लेने के लिए नहीं फेंके हैं, बल्कि अंगरेजों के कान खोलने के लिए फेंके हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि भारत के नौजवान जाग रहे हैं। अब यह धक्काशाही ज्यादा दिन नहीं चलेगी। इश्तहार के नीचे पार्टी के प्रधान सेनापति बलराज का नाम भी लिखा हुआ था !'

"दिलेरी की हद है, बाबा अकाली !' गहना लुहार उन सूरमाओं के हौसले से मोहित था।

"जिन्होंने सिर हथेली पर रखे रखे हों, वे मौत से डरते हैं ?' बाबा अकाली ने गहने लुहार की ओर देखते हुए कहा— "दोनों अपनी बांहें ऊंची करके नारे लगाए जा रहे थे। पुलिसवाले डरते-डरते निकट पहुंचे। भगत सिंह ने हंसकर कहा—डरो नहीं, हमारे पास कुछ नहीं है। तुम हमें गिरफ्तार कर सकते हो।...संक्षेप में कहूं, तो दोनों शेरों को पकड़कर पिंजरे में बंद कर दिया गया। अगले दिन देश के सारे अखबार इस घटना के विवरण से भरे पड़े थे। देश ही क्या, सारी दुनिया में इस वारदात का चर्चा होने लगी। कई अखबारों ने भगत सिंह और दत्त की दिलेरी देखकर उनके फोटो भी छापे।"

"यह कहो कि जय-जय हो गई सब तरफ !' दीपे ने उत्साह-भरे स्वर में कहा।

"कोई हफ्ते-भर बाद (15 अप्रैल) लाहौर में सुखदेव, जयगोपाल और किशोरी लाल

भी पकड़े गए। धीरे-धीरे कुछ और आदमी भी पकड़ लिए गए। फिर आई मुकदमे की बारी। मुकदमा कैसा, सरकार को तो यों ही ड्रामा करना था। दिल्ली के सेशन जज ने भगत सिंह और दत्त को बम केस में उमर-कैद की सजा सुनाई। सजा सुनकर दोनों ने इन्कलाब के नारे लगाए। शेरों के चेहरों पर लाली दपदप कर रही थी। फिर सबके सब लाहौर जेल में इकट्ठे हो गए। यहां जेलवालों के साथ टक्कर हो गई। तुम तो जानते ही हो, जेल के दरोगा कितने जिद्दी और जालिम होते हैं।"

"किसी को कुछ समझते ही नहीं हैं।" टहल सिंह के स्वर में घृणा भरी हुई थी।

"पर सामने भी तो भगत सिंह जैसे लोग थे ! जो वाइसराय को कुछ नहीं समझते थे, वो ऐरे-गैरों को क्या समझते ! बस, आपस में टक्कर हो गई। जेल की धक्केशाही और खराब सुलूक के विरुद्ध भगत सिंह और दत्त ने भूख-हड़ताल कर दी। कुछ दिन बाद बाकी साथियों ने भी हड़ताल कर दी। उस वक्त वो सब बीस से ऊपर थे। भगत सिंह और दत्त ने एकासी दिन भूख-हड़ताल रखी। मुंह से कह लेना आसान है एकासी दिन। एकावन दिन तो उनके बाकी साथियों के भी हो गए थे। कुछेक को उससे भी ज्यादा दिन। बेचारा जैतन दास* तो भूख-हड़ताल के कारण जेल में ही स्वर्ग सिधार गया। (13 सितंबर)।"

"शहीद हो गया, शहीद !" पास बैठे गहने लुहार ने अधिक सत्कारवाला शब्द इस्तेमाल किया।

"हां-हां, वह शहीद हो गया"—बाबा अकाली ने सिर हिलाते हुए कहा, जैसे वह महसूस कर रहा हो कि उसे पहले ही 'शहीद' शब्द इस्तेमाल करना चाहिए था। "उसकी शहादत की खबर सुनकर सारे देश में खलबली मच गई। जैतन दास बंगाली था। उसकी अरथी कलकत्ता पहुंचाई गई। जिस स्टेशन से गाड़ी गुजरती, हजारों लोग श्रद्धांजलि देने के लिए इकट्ठे हो जाते। अखबारों में सरकार की घोर भर्त्सना की गई। सारी दुनिया ने अंगरेजों को बुरा-भला कहा।

"अब सुनो भगत सिंह और दत्त के मुकदमे की बात। भूख-हड़ताल तो उन्होंने जैतन दास के शहीद होने से दस-ग्यारह दिन पहले (2 सितंबर को) ही छोड़ दी थी, क्योंकि जेल वालों ने उनकी सारी शर्तें मान ली थीं। मुकदमा भूख-हड़ताल के दौरान भी चलता रहा था। वह शायद जुलाई (10 तारीख) में ही शुरू हो गया था।"

"अभी तो तूने बताया था कि उन्हें उमर-कैद हो गई थी !" महंदे ने कहा।

"वह तो दिल्लीवाले बम-केस में हुई थी न। और यह मुकदमा था सांडर्स के कत्ल का। उनका मुकदमा एक स्पेशल मजिस्ट्रेट सुना करता था। मजिस्ट्रेट के फैसले पर अपील हो सकती थी। बाद में सरकार ने एक ऐलान के जरिए वह मुकदमा सुनने के लिए एक नई स्पेशल अदालत बना दी, जिसकी अपील नहीं हो सकती थी। अदालत के सामने भगत सिंह और दत्त ने डटकर बयान दिए। वे किसी बात से नहीं मुकरे—बल्कि उन्होंने सारी

---

* जतीनदास।

बातें बहुत खोलकर बताईं। अंगरेजों की काली करतूतें जी खोलकर बयान कीं। इन्साफ तो तब होना ही नहीं था। सारा फैसला पहले ही तय हो चुका था। अंत में, अदालत ने भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा सुना दी (7 अक्तूबर, 1930)। अखबारों में यह खबर पढ़कर सारे देश में खलबली मच गई। लोगों में जोश समाता नहीं था। सच बात यह है कि उस वक्त भगत सिंह का नाम महात्मा गांधी से भी ज्यादा था। रोष प्रकट करने के लिए जगह-जगह जलसे और मुजाहिरे हुए। ऐसा लगता था कि सारे देश में गड़बड़ हो जाएगी ! पर हमारे बड़े-बड़े नेता शांति-शांति की दुहाई दिए जा रहे थे। इसलिए अमन रहा।"

"ओह-हो !" सज्जन सिंह ने ठंडी सांस भरी। उसका जोश कई विचारों के नीचे दबा हुआ था।

"महात्मा गांधी का नमक सत्याग्रह अभी गरम था। लोग धड़ा-धड़ जेलों की तरफ चले जा रहे थे। जनता में बड़ा जोश था। भगत सिंह और उसके साथियों के मुकदमे का फैसला सुनकर जोश और भी बढ़ गया। अदालत ने मौत की सजा सुना दी, लेकिन डर के मारे अंगरेज उन्हें फांसी दे नहीं रहे थे। ऊपर से 26 जनवरी यानी आजादी का दिन आ गया था। उस दिन को मनाने की सारी देश में तैयारियां हो रही थीं अंगरेजों ने लोगों के जोश को कुछ ठंडा करने के लिए आजादी के दिन पर महात्मा गांधी को रिहा कर दिया। साथ ही वाइसराय ने सुलह की बातचीत करने के लिए गांधी जी को बुलावा दे दिया। मुलाकातें शुरू हो गईं। लोगों का ध्यान उस तरफ हो गया। आंदोलन चलता तो रहा, पर पहले जैसा जोश और उत्साह न रहा। सच मानो, जितनी देर लीडर अंदर रहे, लोग आंखें मींचकर पीछे चलते रहेंगे। मगर जब लीडर बाहर आ जाए, तब किसी का दिल नहीं करता अंदर रहने को। मैं तो अपनी बात करता हूं। और लोगों के दिल भी शायद मेरे जैसे हों। हम तो, भई, अंदर, परेशान और उतावले हो उठे थे।" बाबा अकाली ने बड़ी ठोस सच्चाई पेश की। "खैर, गांधी-इर्विन समझौता हो गया। मोर्चा भी, समझो, बंद हो गया। जो शर्तें हमारे लीडरों ने मानी थीं, उनसे लोग खुश नहीं थे, पर इतनी आस सब लगाए बैठे थे कि शायद बाकी कैदियों के साथ भगत सिंह और उनके साथी भी रिहा कर दिए जाएं। मगर सरकार उन्हें कहां छोड़ने वाली थी ! जब अंगरेजों ने देखा कि लोगों का जोश ठंडा हो गया है, तो उन्होंने चुपचाप भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी पर लटका दिया। (23 मार्च, 1931)।"

"हत् तेरे की ! कमीनों ने द्रोह किया !" सज्जन सिंह और टहल सिंह की आवाजें लगभग एक साथ आईं।

"पता नहीं कैसे, शहर में खबर फैल गई कि भगत सिंह और उनके साथियों को आज फांसी पर लटकाया जानेवाला है। बस, देखते ही देखते सारा शहर हुमहुमाकर जेल के दरवाजे के सामने इकट्ठा हो गया। सरकार बहुत घबराई। पुलिस की भी वहां कोई गिनती नहीं थी। भगत सिंह और उसके साथी मर्दों की तरह मौत की घड़ी का इंतजार कर रहे

थे। सारा दिन ऐसे ही निकल गया। बाहर लोगों में कई किस्म की अफवाहें फैल रही थीं। कोई कहता—उन्हें तो कल रात ही फांसी दे दी गई है। कोई कहता—नहीं, वाइसराय के हुक्म से मौत की सजा को काला पानी में बदल दिया गया है। कोई कुछ, तो कोई कुछ... !'

"जितने मुंह, उतनी बातें"—टहल सिंह की आवाज आई।

"किसी को क्या पता था, अंदर क्या हो रहा है," मिलखा सिंह ने अपनी थकी हुई टांगों को ऊपर-नीचे करते हुए कहा।

"अंदर ?" बाबा अकाली ने उसकी तरफ देखते हुए कहा। "अंदर सरकार तैयारी कर रही थी। जेल के कैदी सारा दिन बैरकों में बंद रहे। रात हो गई। अंधेरा हो गया। तभी उन तीनों को कोठरियों से बाहर निकाला गया। शेरों के इन्कलाब-जिंदाबाद के नारे गूंजे, तो कई दूसरी कोठरियों से भी इस नारे की जवाबी आवाज आई। उनके साथियों को तो नारे लगाने ही थे, बहुत-से दूसरे कैदी भी नारे लगा रहे थे।... उन तीनों को फांसी के तख्तों के पास ले जाकर खड़ा कर दिया गया। एक अफसर ने कहा—भगत सिंह, तुम अभी तेईस-चौबीस साल के जवान नजर आते हो। दस मिनट बाद तुम्हारी जिंदगी खत्म हो जाएगी। जो कुछ तुमने किया है, और उसका जो फल तुम्हें मिल रहा है, क्या उस पर तुम्हें अफसोस नहीं है ? सुनकर भगत सिंह का चेहरा लाल हो गया। उसने शेर की तरह गरजकर जवाब दिया—देश की आजादी के लिए हमने जो कुछ किया है, हमें उस पर गर्व है। अगले साल दूसरा जन्म लेकर मैं फिर आऊंगा और पंद्रह-सोलह साल में फिर जवान हो जाऊंगा। तब तक अंगरेज हमारा मुल्क छोड़कर न गए, तो हम फिर उनके साथ इसी तरह लड़ेंगे।"

"सच्चे आशिक थे वो, आजादी के सच्चे आशिक"—गहने ने श्रद्धा से सिर झुकाते हुए कहा।

"तीनों में से कम-ज्यादा किसे कहें ? वो सब हमारे देश के चमकते हीरे थे। तख्ते पर खड़े होकर उन्होंने पूरे जोर से इन्कलाब के नारे लगाए और अपने हाथों फांसी की रस्सियां गले में डाल लीं। रात के अंधेरे में जालिम् सरकार ने तीनों को शहीद कर दिया।"

सभी श्रोता सिर हिला रहे थे। अनेक की आंखों में पानी आ गया था। वे ऐसा महसूस कर रहे थे मानो फांसी चढ़नेवाले उनके सगे भाई हों।

"फिर सरकार ने डर के मारे उनकी लाशें उनके वारिसों को नहीं दीं। रातों-रात पिछले चोर-दरवाजे से निकालकर फीरोजपुर की तरफ ले चले। लाशों के आगे-पीछे पुलिस की भरी हुई लारियां थीं। कसूर में उन्होंने आधी रात को एक ग्रंथी नत्था सिंह को आ उठाया। एक पंडित को भी साथ ले लिया। सतलज नदी के इस तरफ के किनारे पर, रेल के पुल के नीचे, तीनों शहीदों की इकट्ठी चिता बनाई गई। ग्रंथी ने कीर्तन सोहला पढ़कर अंतिम अरदास की और पंडित ने अपने धर्म के अनुसार मंतर पढ़े। मिट्टी का तेल डालकर उन नाजुक, खूबसूरत जवानों को आग के हवाले कर दिया गया। अधजली लाशें नदी के हवाले

करके पुलिस दिन का उजास होने से पहले ही खिसक गई।"

"बाबा अकाली !—" किसी भर्राए हुए कंठ का स्वर उभरा, किंतु बोलनेवाला अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाया।

दो-तीन मिनट तक चुप्पी छाई रही।

"...और उनके बाकी साथी ?" हिम्मत करके दीपे ने ही सवाल किया।

"उनमें से कई को उमर-कैद, कुछ को सात-सात साल और दो-एक को पांच साल की कैद सुनाई गई—" बाबा अकाली ने मद्धिम-से स्वर में कहा, जैसे वह भी थक-सा गया हो। "शेर अपनी जवानी देश पर न्यौछावर कर गए और अपने पीछे इन्कलाब-जिंदाबाद का नारा छोड़ गए।"

बात खत्म करके बाबा अकाली लेट गया। सज्जन सिंह और दीपा उसके हाथ-पैर दबाने लगे।

बीस

धन्ने शाह की कृपा से पीरूवाला की नंबरदारी का मुकदमा मजहबी मसला बन गया। धन्ने शाह ने अपने नौकर बिल्लू को सिखाकर मुस्लिम लीग के नेताओं के पास भेजा। उस समय कसूर में मुस्लिम लीग का काम करनेवाला आदमी था फजल हक़। वह कोट मुराद खां का कसाई, हर तरह से चलता पुरजा और बेहद शरारती स्वभाव का था। वह बिल्लू—या मां-बाप के लिए कहिए, तो बुलंद खां—का बचपन का दोस्त था। दोनों एक ही परिवार से थे। फजल हक़ के घर की हालत भी बहुत अच्छी नहीं थी। कभी वह भी निरा 'फज्जा' ही हुआ करता था, मगर मुस्लिम लीग में आ जाने से वह फज्जे से फजल हक़ बन गया था। वह अपनी ताकत को बढ़ा-चढ़ाकर बताने में बड़ा उस्ताद था। इस तरह वह साधारण लोगों पर रौब गालिब करने में सफल हो जाता था। उसमें एक गुण भी था। वह अथक कार्यकर्ता था। रात-दिन पार्टी के काम से भागते-दौड़ते वह थकता नहीं था। फिर हर बड़ा-छोटा काम करने के लिए वह हर वक्त तैयार रहता था। छोटों पर जहां वह दबाव डालना जानता था, वहीं अपने से बड़ों की खुशामद करने में भी पीछे नहीं रहता था। बड़े, अमीर और आगे रहनेवाले लीडरों के दिल में स्थान बनाने का हुनर उसमें मौजूद था। और ऐसे गुणोंवाले 'सेवक' की जरूरत हर 'नामधारी लीडर' को रहती है। यही कारण था कि फजल हक़ सारे शहर में मशहूर हो गया था।

बिल्लू के जरिए संदेसा मिलते ही फजल हक़ धन्ने शाह की सेवा में हाजिर हो गया। "शाहजी ! शुकर है, आपने याद फरमाया। हम तो आपके बच्चे हैं !" उसने बड़े खुशामदी

ढंग से कहा।" हुक्म कीजिए ! हम आप जैसे बुजुर्गों के लिए जान कुरबान कर देंगे।"

"मियां फजल हक़जी !' जरूरत के वक्त धन्ने शाह छोटे-से-छोटे आदमी को भी बड़े सत्कार से संबोधित करता था। "आपने बिल्लू से सारी बात सुन ही ली होगी।"

"हां, बुलंद खां ने कुछ-कुछ मुझे बताया है।" फजल हक़ ने 'बुलंद खां' पर विशेष जोर दिया। उसका उद्देश्य यह जाहिर करना था कि धन्ने शाह को एक मुसलमान का नाम बिगाड़कर नहीं लेना चाहिए। "मगर आप सीधा हुक्म कीजिए कि मुझसे करवाना क्या चाहते हैं। बंदा आपकी खिदमत करके खुश होगा।"

"देखिए न, चौधरी फजल हकजी !' धन्ने शाह स्वर को और भी मुलायम बनाते हुए बोला—"सिखों के हकों के लिए अकाली दल पूरी ताकत से लड़ रहा है। गिनती में कम होते हुए भी सिख पंजाब के मालिक बने बैठे हैं। गांवों की नंबरदारी से लेकर पुलिस कप्तान और फौज में जरनैल के ओहदों तक पहुंचे हुए हैं। हम हिंदू तो किसी लायक हैं नहीं। बस, ये ले समझो, गांव-खेड़े की जमीन जैसे हैं, जिसका जोर चले, काबिज हो जाए। हमारी हिंदू महासभा जैसी हुई वैसी न हुई। हां, मुसलमानों के हकों के लिए मुस्लिम लीग बराबर काम कर रही है। हम समझते हैं, तुम लोगों के आसरे हम भी बचे रहेंगे—जैसे दो शेरों के बीच गरीब मेमना बचा रहता है।"

"ताबेदार हूं, शाहजी ! मगर हुक्म कीजिए, आपकी ख्वाहिश क्या है ?' सब कुछ जानते हुए भी फजल हक़ धन्ने शाह के मुंह से सुनना चाहता था।

"देखिए न, चौधरी साहब !' धन्ने शाह अब सीधे अपने मतलब की बात पर आ गया—"पीरूवाला सही मायनों में मुसलमान गांव है। सिखों की आबादी एक-तिहाई से भी कम है। और वहां का नंबरदार था एक सिख चेत सिंह। एक सिख नंबरदार सारे गांव पर राज करता रहा है। हमारा ज्यादा वास्ता गांव के मुसलमानों से है।"

"यानी कि तुम दोनों मिलकर मुसलमानों को लूटते रहे हो"— फजल हक़ ने ठट्ठा करते हुए कहा। उसके चेहरे पर व्यंग्य-भरी मुस्कराहट पसरी हुई थी।

"ओ भई, लूटना-लुटाना क्या है ! यह तो—दायां धोए बाएं को और बायां धोए दाएं को। हम बेला-कुबेला उनकी गरज पूरी कर देते हैं और वो नेक इंसान घर आकर वापस कर जाते हैं। कोई थोड़ा-बहुत साथ में दे गया, तो ठीक, नहीं तो उसकी मर्जी। पर भई, मैंने देखा है, व्यवहार में मुसलमान जितना अच्छा और साफ-दिल है, और कोई नहीं है"—धन्ने शाह ने जरा गर्दन अकड़ाकर कहा, मानो उसके ये शब्द सारी मुसलमान कौम को मिली सनद के रूप में सोने में मढ़वाकर रखने-योग्य हों।

"यह वफादार कौम है, शाहजी ! हम जैसा वादा निभानेवाला और कोई नहीं मिलेगा", फजल हक़ ने भी उसी लहजे में जवाब दिया।

दोनों शिकारी अपने-अपने पैंतरे लगाए खड़े थे। दोनों का अपना-अपना स्वार्थ था।

"यह बात तो माननेवाली है। इसीलिए मैं अपने मित्तर चौधरी इलमदीन की मदद करना चाहता हूं। और आपका तो यह मजहबी फर्ज ही है..."— कहते-कहते धन्ने शाह

रुक गया। वह फजल हक़ के चेहरे पर आंखें गड़ाए उसे घूर रहा था, जैसे अपनी बात के जवाब का इंतजार कर रहा हो।

फजल हक़ ने मुंह से कुछ कहने के बजाय 'हां' में सिर्फ सिर हिला दिया। वह चाहता था कि धन्ने शाह अपने मुंह से सब कुछ साफ-साफ कहे।

"अब एक तरफ तो चौधरी इलमदीन ने नंबरदारी के लिए दरखास्त दे रखी है—और दूसरी तरफ सज्जन सिंह ने।" इलमदीन के नाम के साथ चौधरी शब्द जोड़ना धन्ने शाह भूलता नहीं था। "वैसे चौधरी इलमदीन का इन्साफ देख लो। उसने दरखास्त में लिखा है कि गांव में दो कौमें बसती हैं—सिख और मुसलमान। एक नंबरदार मुसलमान बना दो, एक सिख। न्याय की बात हुई न ! और सज्जन सिंह कहता है—मुझे अकेले नंबरदार बनना है। मुसलमानों का कोई हक नहीं है। है या नहीं निरी सीना-जोरी ?'

"हां-हां, आप ठीक कह रहे हैं"—फजल हक़ ने यों ही हुंकारा भरने के लिए कहा।

"फिर हम तो इस इन्साफ की खातिर चौधरी इलमदीन की मदद कर रहे हैं—और आपके लिए यह मजहब की इज्जत का सवाल है। सो, आपका फर्ज है कि…।"

"शाहजी !' फजल हक़ बात को बीच में ही काटते हुए बोल उठा— "आप जैसा हुक्म करें, मैं ताबेदार हूं। अगर मुस्लिम लीग की पॉलिसी इस तरह के छोटे-मोटे कामों में उलझने की नहीं है। फिर मैं क्या कर सकता हूं ?' वह जानबूझकर अपने दाव पर भारी पड़ रहा था।

"ऐसे बात नहीं बनेगी, चौधरी साहबजी ! मुझे आप पर बड़ा गर्व है। और मैं चौधरी इलमदीन के साथ वादा कर बैठा हूं—हां !' धन्ने शाह ने बड़े घमंड के साथ कहा, जिसमें वास्तविकता कम, दिखावा अधिक था।

"मैं तो आपका बच्चा हूं, शाहजी ! मगर मेरे वश में क्या है ? अख्तियार तो चलता है लीडरों का। और फिर यह काम भी है—पैसों का। और मेरी हालत तो आप जानते ही हैं"—फजल हक़ असली बात पर आ गया।

"चौधरी साहब ! धन्ने शाह की गर्दन हाजिर है। हमें तो एक बात पहुंचवानी है। सुनो !'

…और फिर काफी देर तक दोनों के बीच गुपचुप बातें होती रहीं।

दो घंटे बाद फजल हक़ ने धन्ने शाह से विदा ली। दाएं हाथ से वह बगलवाली जेब को टोहता जा रहा था, हालांकि उसे वह रकम बहुत कम लग रही थी।

चार दिन बाद कसूर की मुस्लिम लीग की तरफ से उर्दू में एक इश्तहार निकला :

पीरूवाला के मुसलमानों की हकतल्फी

बेइन्साफी और सीनाजोरी

पीरूवाला मुस्लिम अक्सरीअत का गांव है। किसी जमाने में वो मुसलमान पीर हजरत जाहिर शाह ने आबाद किया था। पीर के मकबरे के निशानात अभी तक रोही के किनारे

पर मौजूद हैं। सिखों के एकतरफा राज के जमाने में कुछ सिख भी गांव मजकूर में आबाद हो गए। उन्होंने हुकूमत के जोर पर मुसलमानों की निस्फ जमीन छीनकर अपने कब्जे में कर ली, यह साबित करने के लिए कि वो गांव के सही आबादकार हैं। उन्होंने पीर का मकबरा गिराकर अपने बुजुर्ग की समाधि मशहूर कर दी। अब वो उस जगह को 'जठेरे' कहकर उसकी इबादत करते हैं। इबादत क्या करते हैं, पीर के मकबरे पर बकरे झटकाते हैं। क्या इस मकरूह काम से हजरत पीर जाहिर शाह की रूह तड़पती नहीं होगी ? और क्या इस धक्केशाही को इस्लाम पर हमला समझने में हम हक-बजानब नहीं हैं ?

"और सुनिए !अंगरेजों ने सिखों को खुश करने के लिए गांव मजकूर का अलमबरदार एक सिख को बना रखा था। कुछ अरसा हुआ, वो अलमबरदार वफात पा गया। अब अलमबरदारी के लिए उम्मीदवार अदालत में हैं। एक तो सज्जन सिंह नामे सिख है, और एक गांव का वा-वकार आदमी चौधरी इलमदीन। चौधरी इलमदीन का मुतालबा बड़ा वाजिब और इन्साफ पर है। वो कहता है कि गांव में दो कौमें आबाद हैं। इसलिए एक अलमबरदार सिख और एक मुसलमान बना दिया जाए। इस तरह दोनों मजहबों को बराबर की नुमाइंदगी मिल जाएगी।

"मगर दूसरे फरीक सज्जन सिंह का मुतालबा ना-वाजिब और वाहियात है। वो कहता है कि अलमबरदारी पर सिर्फ उसी का हक है क्योंकि सबका अलमबरदार सिख था।

"हम सरकार को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि मुकदमे का फैसला सोच-समझकर किया जाए। हम मानते हैं कि मौजा पीरूवाला की अलमबरदारी पर सिखों का कोई हक नहीं है, क्योंकि गांव में मुसलमानों की अकसरीअत है। मगर मुस्लिम लीग की पालिसी अकलीअतों से रवादारी का सुलूक करने की है, इसलिए हम मंजूर कर लेंगे कि गांव का एक अलमबरदार सिख और एक मुसलमान बना दिया जाए। अगर किसी भी अदालत ने हमारी नेक सलाह के खिलाफ फैसला दिया, तो हम उस फैसले के बरखलाफ एजीटेशन करने पर मजबूर होंगे। मुस्लिम लीग इस मसले को अपने हाथ में ले लेगी। और याद रखिए, हिंदुस्तान के नौ करोड़ मुसलमान इस बेइन्साफी के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार होंगे।"

इश्तहार के नीचे सेक्रेटरी, मुस्लिम लीग, कसूर के हस्ताक्षर थे। इश्तहार कसूर शहर और पीरूवाला गांव की दीवारों पर लगाया गया।

इश्तहार की भड़काऊ भाषा ने अंधविश्वासी लोगों पर काफी असर किया। ऊपर से अगले शुक्रवार को फजल हक़ शहर के एक मौलवी को साथ लेकर पीरूवाला आ धमका। उस रात गांव के अस्सी प्रतिशत मुसलमान मर्द मस्जिद में इकट्ठा हुए। पहले फजल हक़ ने उन्हें इश्तहार पढ़कर सुनाया। फिर उसने उसकी व्याख्या करते हुए बताया कि उनके सामने सिर्फ एक गांव की अलमबरदारी का ही सवाल नहीं है, बल्कि पाकिस्तान बनने के समय फैसला इसी बात का होना है कि इस इलाके में मुसलमान अलमबरदार कितने हैं और गैर-मुसलमान कितने। फिर उसने कहा कि चौधरी

इलमदीन की अलमबरदारी की दरख्वास्त सारी दुनिया के मुसलमानों की इज्जत का सवाल बन गई है।

फिर उठा मौलवी सैफुद्दीन। उसकी तकरीर पहले से भी ज्यादा भड़काऊ और जहरीली थी। उसने मुसलमान पैगंबरों और शहीदों की कुरबानियों के वास्ते देते हुए कहा : "देखो, मुसलमान मुजाहिदो ! आपके बुजुर्गों ने हजारों कुरबानियां देकर इस मुल्क में मुस्लिम हुकूमत कायम की थी। बदकिस्मती से हमारे नुमाइंदों में फूट पड़ गई और सिखों ने धोखे से हमारा राज छीन लिया। उसके बाद अंगरेज आए। उन्होंने भी सिखों की मदद की और हमारे हकूक को नजर-अंदाज किए रखा। अब अंगरेज जानेवाले हैं। तो सवाल पैदा होता है कि अंगरेजों के जाने के बाद इस मुल्क में हिंदुओं-सिखों का राज हो या मुसलमानों का ? हमारा मुतालबा है कि जिन सूबों में मुसलमानों की अकसरीयत है, वहां मुसलमानों की हुकूमत हो। इस गांव की अलमबरदारी को मुस्लिम हुकूमत की बुनियाद समझिए। यहां हमारी अकसरीयत है। इस गांव का अलमबरदार मुसलमान होना चाहिए। हजरत साहिब शरह में फरमाते हैं, जो मुसलमान होकर मुसलमानों के हक के लिए नहीं लड़ता, वो मुसलमान नहीं है। याद रखिए, अगर आपने इस सवाब के काम में चौधरी इलमदीन की मदद न की, तो खुदा के घर से आप लोगों को काफिर होने का फतवा दिया जाएगा !"

जितना जहर वह उगल सकता था, उसमें उसने कोई कसर नहीं रहने दी। एक ही दिन में उसने मुसलमानों के दिलों को सिखों से दूर कर दिया।

तब तक मुस्लिम लीग ने पार्टी के स्तर पर अलग मुल्क लेने का अभी ऐलान नहीं किया था, लेकिन मुसलमानों के दिलो-दिमाग में पाकिस्तान का खयाल भरा जा रहा था।

फजल हक और मौलवी ने रात पीरूवाला में ही काटी। अगले दिन वे इलमदीन को साथ लेकर धन्ने शाह की आढ़त पर जा पहुंचे। इश्तहारों आदि के खर्चे के रूप में सौ का नोट फजल हक की जेब में चला गया और इलमदीन ने धन्ने शाह की वही पर अंगूठा लगा दिया।

फजल हक ने इलमदीन के साथ इकरार किया कि वह अगले जुम्मे को एक और मौलवी और मुस्लिम लीग के आला लीडर को साथ लेकर आएगा और पीरूवाला के सारे मुसलमानों के अंगूठे लगवाकर एक मेजरनामा अदालत में पेश किया जाएगा।

गांव में मुस्लिमलीगियों के दो-तीन चक्कर लगने पर अकालियों को पता लगा, तो वे भी जत्था बनाकर सज्जन सिंह के घर आ धमके। इलाके के दस-बारह अकाली दिन-छिपे के साथ सज्जन सिंह के घर आए। सज्जन सिंह को न उनके आने की खबर थी, न आस, और न ही जरूरत। वे बिन-बुलाए मेहमान फतेह बुलाकर चारपाइयों पर आ विराजे।

"आओ, जत्थेदारजी ! कैसे दर्शन दिए ?" सज्जन सिंह ने फतेह बुलाने के बाद धौले केशोंवाले अकाली सुंदर सिंह के साथ हाथ मिलाते हुए पूछा।

"ओए, तू पूछता है, कैसे दर्शन दिए ?" सुंदर सिंह ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा। "हम तेरे लिए सिर देने को तैयार होकर आए हैं, और तुझे हमारे दर्शनों का ही पता नहीं है ! वही बात हुई न—मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त !"

"मेहरबानी आपकी... पर...," सज्जन सिंह ने हाथ मलते हुए कहा। वह आनेवालों का मतलब कुछ-कुछ समझ गया था।

"ओ, मेहरबानी कैसी ? हमें किसी के सिर एहसान करना है ? यह तो पंथ का काम है !" सुंदर सिंह ने बड़े रौबीले लहजे में कहा। "और वो जत्थेदार करम सूंह कहां है—वो बाबा अकालिया ?"

"वो तो हजूर साहिब की यात्रा को गया हुआ है।" सज्जन सिंह को लगा, शायद बाबा अकाली के मेहमान सिर्फ रात काटने के लिए उसके घर आ गए हैं, उसने जो पहले समझा था, वह गलत था।

"तभी तो !" सुंदर सिंह ने सिर हिलाते हुए कहा। "हम भी कहें, बाबा अकाली इतनी लापरवाही करनेवाला तो है नहीं। उसने झट हमें खबर दी होती, हालांकि कांग्रेस के पिछले मोर्चे में जाकर वह कुछ ढीला-सा हो गया है, फिर भी उसने अकाली मोर्चे में बड़ी कुरबानी की है। पर तेरी बेवकूफी के बारे में क्या कहें ? तूने हमसे विनती क्यों नहीं की ? यह तो हमें तेरे मित्तर धन्ने शाह से पता चला, नहीं तो हम सोते ही रह जाते और...।" उसका स्वर बड़ा प्रताड़ना-भरा था।

"सच कहूं, जत्थेदारजी, तो मैं तुम्हारी बात पूरी तरह समझ नहीं पाया।" सज्जन सिंह चाहता था कि यह बला किसी तरह टल जाए।

"हमारी बात नहीं समझा !" सुंदर सिंह ने गुस्से से माथे पर बल डालते हुए कहा। "लो, सुन लो भई जत्थेदारो" ! सारे जत्थेदार ही तो इकट्ठे होकर आए थे।

"ओ हो ! इसमें गुस्सा होनेवाली कौन-सी बात है ? मुझ जैसे अनपढ़ और अनजान आदमी से गलती भी तो हो सकती है। तुम लोग जरा धीरज के साथ समझा दो"—सज्जन सिंह ने निर्दोष दोषी की तरह दबे-से स्वर में कहा।

"देख, फिर वही बात !" सुंदर सिंह ने पहले से भी ऊंची आवाज में कहा। "करतूतें सारी तेरी और तेरे यार की, और समझा हम दें ? तेरी मूर्खता ने सारे पंथ को मुसीबत में डाल दिया है। अरे बावरे ! कभी मुसलमान भी मीत बना है ? देख लिया, इलमदीन का भाईचारा ?"

"अच्छा, तो उस नंबरदारी के झगड़े की बात कर रहे हो ! सज्जन सिंह ने ऐसा भाव प्रकट करते हुए कहा, जैसे पहले वह सचमुच ही असली बात को न समझा हो। "वह तो, जत्थेदारजी, बड़ी मामूली बात है। झगड़ा अदालत में है। अदालत जो फैसला करेगी, देखा जाएगा।"

"देख ओए ! मुझे यों ही गुस्सा दिला रहा है तू। कहता है, मामूली बात है। इसी तरह

तेरे जैसे लोग पंथ की पीठ लगवा देते हैं न। अगर मामूली बात थी तो मुस्लिमलीगिए दस बार यहां क्या लेने आए हैं ?' जत्थेदार का क्रोध जैसे बेकाबू होता जा रहा था।

"वह तो कुछ शरारती लोगों का काम है, जिन्हें आग लगाने के सिवा कोई काम ही नहीं होता। और हम भी...।"

"मैं कहता हूं, इसकी मति को क्या हो गया है ?' सुंदर सिंह ने अपने साथियों की ओर देखते हुए कहा। "यह इतना बड़ा इश्तहार किसी मामूली शरारती आदमी का काम है ?' सुंदर सिंह ने जेब से उर्दू का इश्तहार निकाल, खोलकर सामने रख दिया। "यह मुस्लिम लीग की सोची-समझी साजिश है। वो हमारी पुश्तैनी लंबरदारियों और सफेदपोशियों पर कब्जा करके यह साबित करना चाहती है कि पंजाब में उनकी बहुसंख्या है और पंजाव मुसलमानों को मिलना चाहिए। और जवाब में हमने भी आजाद पंजाब की स्कीम बना ली है। अंगरेजों ने...।"

"दीपो, चाय धर दो जत्थेदारों के लिए।" किसी भी बहाने मुसीबत को टलते न देख सज्जन ने घर को हुक्म दे दिया। "रोटी बनने में तो अभी देर लगेगी।"

"मैं तो चाय नहीं पीऊंगा। रोटी के बाद दूध का गिलास जरूर चाहिए— दवा खानी है सोते वक्त।" रामसिंह ने अपना प्रोग्राम बता दिया। वह कहीं भी जाए, अपने खाने-पीने के मामले में बड़ा चैतन्य रहता था।

"राम सिंहा, क्यों फिकर लग गई तुझे अभी से ही। किसी भूखे-नंगे घर में नहीं बैठा है तू। चाय भी पी लो और रोटी के बाद दूध भी मिल जाएगा सबको।" सुंदर सिंह को खतरा होने लगा था कि सज्जन सिंह कहीं एक आदमी के लिए ही दूध का प्रबन्ध करने की न सोच रहा हो। "पहले इधर ध्यान दो। अंगरेजों ने महाराजा दिलीप सूंह से पंजाव अमानत के तौर पर लिया था। अब हमारी मांग है कि वो जाते वक्त हमारा पंजाब हमें दे जाएं। सो, पंथ ने फैसला कर लिया है कि मुस्लिम लीग की हर बात का ईंट का जवाब पत्थर से देना है।" अपनी, चार आदमियों की सलाह को ही वह सारे पंथ का फैसला बताए जा रहा था। "इधर देखो !'

उसने एक और इश्तहार सामने रख दिया जो पंजाबी में था। उर्दू के इश्तहार की तुलना में वह छोटे आकार का था।

"हमने अगले महीने की पहली और दूसरी तारीख को वहां अकाली कानफरेंस रख दी है। मुस्लिम लीग के मुकाबले हमारे ज्यादा लीडर यहां इकट्ठे होंगे"—सुंदर सिंह ने अपनी मंडली—या जैसे कि वह कहा करता था, सारे पंथ का हुक्म सुना दिया।

"जत्थेदारजी !इतने बड़े काम के बारे में तो पहले सारे गांव से सलाह करनी पड़ेगी।" जत्थेदार का प्रोग्राम सुनकर सज्जन सिंह घबरा गया था।

"हमें किससे सलाह लेनी है ? यह पंथ का काम है। और सारे गांव को पंथ का हुक्म मानना पड़ेगा। यहां कान्फरेंस होगी"— सुंदर सिंह ने घुटने पर हाथ मारकर कहा। "किस

बात से तू डरता है, खर्च के लिए इलाके से उगाही की जाएगी। क्या तुम गांववाले इस लायक भी नहीं हो कि आनेवाले दस लोगों को रोटी खिला सको ? हम मुस्लिमलीगियों को बता देंगे कि गुरु महाराज का पंथ क्या चीज है। जरूरत पड़ी तो यहां जैतो की तरह का मोर्चा लगा दिया जाएगा।" सुंदर सिंह ने सारी बातों का फैसला खुद ही सुना दिया।

दसेक साल पहले सुंदर सिंह अकाली जत्था, लाहौर का जत्थेदार रहा था और राम सिंह मीत-जत्थेदार। उसके बाद अकाली दल के चुनाव होते रहे और इलाके के जत्थेदार बदलते रहे। सुंदर सिंह की दोबारा जत्थेदार बनने की कभी वारी नहीं आई थी। मगर वह एक बार तो जत्थेदार रह ही चुका था, इसलिए वह अपने आपको सारी उम्र के लिए जत्थेदार समझ बैठा था। हां, एक अच्छा गुर उसके हाथ लग गया था। जो काम भी उसे करना होता, वह बड़ा जोर देकर कहता—"यह पंथ का हुक्म है।"

उन दस-पंद्रह आदमियों का अपना ही एक पक्का जत्था बना हुआ था—और वही उनके लिए 'पंथ' था। वे कहीं जरा-सा भी मौका बना देखते, तो झट से 'धार्मिक सम्मेलन' या 'अकाली कान्फरेंस' का इश्तहार छापकर गांव-गांव जाकर उगाही करना शुरू कर देते। कई वार अकाली दल के, इलाके के, अकाली जत्थे के पदाधिकारियों ने उन्हें इस काम से टोका भी, लेकिन वे किसी की परवाह नहीं करते थे। बल्कि वे आगे से कई बार बड़े अक्खड़ ढंग से कहते—"ओए, तुम हमें मति देनेवाले नए जत्थेदार कहां से पैदा हो गए ! वही बात हुई न—कल की भूतनी और मसानों में साझेदारी !बी. टी. की लाठियां खाने और जेल काटने के लिए हम, और अकाली दल के मालिक बन बैठे तुम! वही बात हुई न—खाने-पीने को भागमरी और गर्दन तुड़वाने को जुम्मा। हमने पंथ के लिए कुरबानियां दी हैं और देते रहेंगे। हम पंथ का काम किसी के भरोसे नहीं छोड़ सकते।" वे सचमुच 'अपने पंथ' का काम किसी को नहीं सौंप सकते थे।

इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है। शायद हर आंदोलन के बाद इस तरह के कुछ लोग पीछे बच ही जाते हैं। उनका अपनी पुरानी जत्थेबंदी, धर्म या कौम के साथ कोई वास्ता नहीं होता। उन्होंने अपने लिए अपने जीवन का एक निश्चित कार्यक्रम बना लिया होता है।

अकाली दल ने किसी वक्त 'आजाद पंजाब' की बात छेड़ी थी। उसके अर्थ समझे बिना ही सुंदर सिंह की मंडली ने समझ लिया था कि बस, अंगरेजों के जाने के बाद पंजाब में फिर से सिखों का राज होने वाला है। कई बार बैठे वे आपस में विचार किया करते—"जत्थेदारजी !तब सिखों का बादशाह कौन बनेगा, और वजीर कौन ?' मगर अफसोस, कई बार सोचने पर भी वे एक नाम पर सहमत न हो पाते।

पीरूवाला की नंबरदारी के बारे में उन्होंने मुस्लिम लीग का इश्तहार पढ़ा, तो उन्हें एक नया प्रोग्राम मिल गया। उन्होंने फौरन एक छोटा-सा इश्तहार छपवाया और सीधे पीरूवाला पर धावा बोल दिया।

"लो, चाय ले जाओ"—भजन कौर की चौके से आवाज आई। असल में उसकी मंशा सज्जन सिंह को अपने पास बुलाने की थी, वरना चाय तो वह बशके के हाथ भी भिजवा सकती थी।

इशारा समझकर सज्जन सिंह रसोई की दीवार के पास जा खड़ा हुआ।

"अब इस मंडली के लिए रोटियां भी पकानी हैं ?' भजन कौर ने घृणा-भरे स्वर में कहा। वह बिन-बुलाए और अनचाहे मेहमानों की सेवा को बेइन्साफी की बात समझ रही थी।

"ओ, पर मैं किसी को बुलाने गया था ? वो तो सद्दी न बुलाथी ते मैं मुंडे दी ताई* की तरह जबरदस्ती धरना मारे बैठे हैं। अब तू ही बता—घर आए को कोई बांह पकड़कर बाहर निकालने से तो रहा"—सज्जन सिंह ने अपना निर्दोष प्रकट करते हुए कहा।

"स्यापा ! अभी कहते हैं, यहां अकाली कानफरंस करनी है। ये जिस आंगन में आ घुसे हैं, उसकी छत की कड़ियां बिकवाकर ही पीछा छोड़ेंगे !' अपनी समझ के अनुसार भजन कौर ने पेशीनगोई करते हुए कहा।

"हमारी तो वही बात बन गई है कि—फंसा हुआ फटक भी नहीं सकता—" कहते हुए सज्जन सिंह चायवाली बाल्टी उठाकर चल पड़ा।

बशका गिलास उठाकर साथ चल दिया।

सुंदर सिंह की मंडली हवेली के बाहरी दरवाजे के अंदर की तरफ चारपाइयां डालकर बैठी हुई थी। चाय दी जाने लगी तो न पीने का ऐलान करनेवाले रामसिंह ने सबसे पहले गिलास आगे किया। चाय की दस-बारह सेर की बाल्टी देखते ही देखते खाली हो गई।

फिर रोटियों की बारी आई। रोटियां चुपड़ने में भजन कौर ने बड़ी चतुराई से काम लिया। वह गरम किए हुए घी में रूई का फाहा भिगोकर रोटी पर दो-एक जगह पर छुला देती, और उसके ऊपर दूसरी रोटी घिसकर दोनों को चुपड़ा हुआ समझ लेती। मगर जल्दी ही उसे पता चल गया कि कुछ लोग गेहूं में से घी निकालना जानते हैं।

"राम सिंहा ! तुझे दवाई खानी है, दूध के लायक जगह बना लेना"—राम सिंह को पांचवीं रोटी रखवाते देखकर पास बैठे हरि सिंह ने याद दिलाया। वास्तव में वह इस बहाने सज्जन सिंह को दूध की याद दिलाना चाहता था।

"भाऊ ! खाना-पीना क्या है ? जेलों में भूख-हड़तालें कर-करके मर गए हैं। अब कुछ पचता ही नहीं है"—राम सिंह ने उस भूख-हड़ताल की याद दिलाई, जो उसने साथियों के दबाव में आकर तीन दिन के लिए की थी—वो भी रोते-झींकते।

पहला आटा खत्म हो जाने पर भजन कौर को रोटियां पकाते-पकाते दूसरी बार गूंथना पड़ा। रोटियां पकाने के लिए उसने दीपो को बिठा दिया था। ऊपर से दूध की चेतावनी उसने दूसरी बार सुन ली। उसका तो इरादा था कि सिर्फ दवा खाने वाले के लिए एक गिलास भेज दे। मगर सज्जन सिंह ने नहीं माना। आखिर इस तरह

---

* न न्योता दिया, न बुलवाया, मैं बेटे की ताई हूं।

के उपकारी लोगों की सेवा करना उसका फर्ज भी तो बनता था। एक बात से वे दोनों अनजान थे कि राम सिंह के पल्ले दवा की जगह मटमैले रंग की देसी खांड की पुड़ियां बंधी हुई थीं।

भजन कौर ने कच्चे दूध में दो हिस्से पानी डालकर गरम करने को चढ़ा दिया। बेचारी और करती भी क्या ? इसके बावजूद सबके हिस्से पूरा-पूरा गिलास आता नजर नहीं आ रहा था। उसने हांडी की मलाई एक तरफ करके नीचे से दो कटोरे दिन का उबला हुआ भी निकाल लिया। इस तरह उसने मर-खपकर घर के अभाव को ढंका।

रात किसी तरह निभ गई। सवेरे उठकर छाछ के दो-दो गिलास पीकर सुंदर सिंह और उसके साथी चले गए और सारे गांव को 'अकाली कानफरंस' की चिंता लगा गए।

इक्कीस

"बोल—वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फतेह !' जत्थेदार सुंदर सिंह के जत्थे ने हवेली के अंदर पांव धरते हुए थर्रा देनेवाले स्वर में कहा।

"वैहगुरु जी का खालसा, वैहगुरुजी की फतेह !' जवाब में सज्जन सिंह ने हाथ जोड़कर फतेह बुलाई। बुलाता भी कैसे नहीं। उसे हुक्म हुआ था—बोल ! मगर उसकी आवाज में उत्साह या चाव कहीं नहीं था।

जबरदस्ती सिर पर मढ़ी गई कान्फरेंस में अभी पांच दिन बाकी थे कि जत्थेदार सुंदर सिंह के जत्थे के पांचों सिंहों ने अपने मुबारक चरण आ धरे। उनके दर्शन होते ही सज्जन सिंह और भजन कौर के दिल धड़कने लगे।

"सज्जन सिंहा ! तूने तो मूल से ही इज्जत उतार रखी है"—सुंदर सिंह ने कंधे पर रखे अंगोछे से पैरों की धूल झाड़ते हुए कहा। "तेरे जैसा ढीला आदमी मैंने आज तक नहीं देखा। भला धर्म के काम में भी इतनी सुस्ती ! इतने दिन हो गए, तू एक बार भी मेरे पास नहीं आया"—जत्थेदार ने खासे प्रताड़ना भरे स्वर में कहा।

इस बीच पांचों सिंह आंगन में बिछी चारपाइयों पर सज गए।

"जत्थेदारजी ! जानते ही हो, कितने झंझट हैं। खेती-जुताई का काम भी हमें ही करना होता है, और उधर...!'

"गोली मार, ओए, खेती-वेती के काम को !' सज्जन सिंह की बात को अधबीच ही काटकर जत्थेदार बोल उठा। "पंथ के काम के मुकाबले यह काम ज्यादा बड़ा है ? हमारा तो फिकर से खून सूख रहा है, और यह घर के कामों का प्यारा बना हुआ है !' वाकई कौम की चिंताओं से सूख-सूखकर जत्थेदार सुंदर सिंह का वजन पूरे तीन मन के लगभग पहुंच चुका था।

"इस तरह की चिंताएं आप जैसे बड़े लोगों को ही तो होंगी न ! आप लोगों के रहते मुझे कैसी चिंता ?" सज्जन सिंह ने हाथ मलते हुए उत्तर दिया– "अच्छा, पहले जल-पान की बताइए।"

"जल-पान ? आज फौजें लंबा सफर काटकर आई हैं। भूरिआ से चलकर कालिया, सन्नखतरा, सिंहपुरा, दोनों कतलूहियां, लखणे के, कार्दाविंड, बल्ल, खारा और आसपास के कई गांवों में घूम कर आए हैं"–जत्थेदार ने नौ-दस गांव गिना दिए, भले ही वे सारी दोपहर तरगियां के चढ़त सिंह के छप्पर में गुजारकर, गुरुद्वारा गुरु का झाड़ से सुखनिधान की डेगची का प्रसाद लेकर सीधे यहीं पहुंचे थे। "सो, सिंह जरा थके हुए हैं। सेवा कर ले चार दिन, जो तेरे भाग्य में लिखी हो। बस, सेवा ही साथ निभाएगी। वरना, सब किया-कमाया तो यहीं रह जाना है।"

"मैं कहूं, सेवा का क्या है, मुट्ठी-चापीकर देंगे फौजों की । बुलाऊं अपने डुरली जत्थे[1] को" सज्जन सिंह ने हंसकर कहा। वैसे वह दिल में सोच रहा था कि इस तरह के बिन-बुलाए, मेहमानों की तसल्ली डुरली जत्थे की सेवा से ही होती है। "तो सजिए आप लोग... मैं पहले चाय का उद्यम करवाऊं।"

सज्जन सिंह उठकर रसोई की तरफ चला गया और जत्थे के सिंह अपनी बातों में व्यस्त हो गए।

आज भजन कौर को दो बार आटा नहीं गूंथना पड़ा, क्योंकि वह मेहमानों के स्वभाव को जान चुकी थी।

सबेरे जल-पान करके सुंदर सिंह और उसके साथी उगाही करने निकल पड़े। लेकिन अपने गीले कच्छे वे वहीं सूखने के लिए डाल गए। इसका मतलब था कि फौजों का पड़ाव रात को भी वहीं रहेगा–सो, घरवाले खबरदार रहें।

अगले दिन दो सिंह और आ गए और उसके अगले दिन चार और। कान्फरेंस से दो दिन पहले लगभग बीस सिंहों का जत्था सज्जन सिंह की सहायता के लिए एकत्र हो गया।

मसांद[2] वाले दिन शाम को जत्थेदार राम सिंह और पाला सिंह शहर से दरियां, चांदनियां और लाउडस्पीकर ले आए। अगले दिन सुबह-सुबह ही शहतूतोंवाले कुएं पर सज्जन सिंह के खेत में पंडाल लग गया। जत्थेदार सुंदर सिंह ने अपनी मर्जी से एक ढाडी[3] जत्था भी बुलवा रखा था। चीफ खालसा दीवान का एक प्रचारक और दो-एक अन्य वक्ता सज्जन भी आ गए। दोपहर ढलने तक दीवान खासा भर गया। उपस्थिति आठ-नौ सौ तक हो गई। बड़े धड़ल्लेदार भाषण हुए। और फजल हक़ के इश्तहार का खूब जवाब दिया गया। अगले दिन रौनक और भी ज्यादा हो गई। जत्थेदार सुंदर सिंह ने भरे दीवान में ऐलान किया कि अगर नंबरदारी का फैसला उनकी मर्जी के मुताबिक न हुआ, तो वे वहां मोर्चा लगा देंगे।

---

1. धक्के से काम लेनेवालों की मंडली
2. देसी महीने का आखिरी दिन
3. भजनीक

आखिर 'सत्श्री अकाल' के जयकारों के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ। जत्थेदार सुंदर सिंह का दल सज्जन सिंह की हवेली में आ सजा। उन्होंने सज्जन सिंह के लिए इतना कुछ किया था—तो क्या एक रात के लिए सज्जन सिंह उनकी सेवा नहीं कर सकता था?

सुंदर सिंह ने हाथ बढ़ाकर सज्जन सिंह से कुछ नहीं मांगा—यहां तक कि इश्तहारों का खर्च भी नहीं। मगर इन चांदनियों और लाउडस्पीकरों का खर्च देना तो सज्जन सिंह का ही फर्ज बनता था। सो, सज्जन सिंह ने वह चुपचाप अदाकर दिया। दस रुपए उसके पास से ढाडी जत्थे को दिलवाए गए। साथ ही सुंदर सिंह ने ढाडी जत्थे को हौसला देते हुए कहा : "भई कीर्तनिए सिंहो ! सरदार सज्जन सिंह को नंबरदार बन लेने दो। फिर हम यहां एक बड़ी कान्फरेंस करेंगे। तब तुम्हारी कमी पूरी कर देंगे।"

आए हुए प्रचारकों को कुछ नहीं लेना था, लेकिन उनका आने-जाने का किराया देना तो सज्जन सिंह का फर्ज बनता था। सो सज्जन सिंह ने मजबूर होकर सब फर्ज पूरे किए। इस तरह के धर्म के काम में जत्थेदार सुंदर सिंह उसे किसी बात में बिफरने देनेवाला था? वैसे भी, इस तरह के मौके नित्य-प्रति कहां आते हैं ?

"क्यों, कितना खर्च आ गया ?" दो दिन बाद अपने आपको होश आने पर भजन कौर ने पूछा। "गल-जाने उजाड़ने आए थे, उजाड़कर चले गए।"

"भली लोक ! अब खर्च का हिसाब मत कर। धन्ने शाह अपने आप कर लेगा। जब ओखली में सिर दे दिया, तो मूसलों से क्या डरना !" सज्जन सिंह के स्वर में निराशा घुली हुई थी। वह समझ गया था कि जिस दलदल में पांव फंस गया है, उसमें से निकलना अब मुश्किल है।

सुंदर सिंह के बाद फजल हक़ की बारी आ गई। फिर वे भी उसी कुएं पर आ जुटे। उन्होंने इलमदीन के खेत में स्टेज बनाया। फजल हक़ की बातों का जवाब देने के लिए सुंदर सिंह वगैरह को फिर उपाय करना पड़ा। आखिर धर्म के काम में कोई पीछे कैसे रह सकता था ? यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक नंबरदारी का फैसला नहीं हो गया।

तहसीलदार नंबरदारी का फैसला जल्दी ही कर देना चाहता था, लेकिन मुकदमे के जल्दी ही निबट जाने में न धन्ने शाह का फायदा था, न फजल हक़ का। उनकी मिन्नत-खुशामद के सदके वह मुकदमा तीन साल तक चलता रहा। और इस तीन साल में धन्ने शाह ने दोनों पक्षों की भरपूर मदद की। दोनों को उसने मुंहमांगा कर्ज दिया। इतना ही नहीं, वह तहसीलदार के पास इलमदीन की सिफारिश करने भी गया और सज्जन सिंह की भी। आखिर दोनों उसके मित्र थे—और दोनों ही आसामियां। शहतूतों वाला कुआं भी तो दोनों का साझा था। ऐसे में धन्ने शाह दोनों में भेदभाव कैसे करता ?

आखिर मुकदमे का फैसला हो गया। ऊपर से सरकार की नीति थी कि हर बात में दो कौमों के सिद्धांत को हवा दी जाए। तहसीलदार ने इसी बात को मुख्य रखकर गांव के दो अलमबरदार बना दिए। सिखों का अलमबरदार सज्जन सिंह और मुसलमानों की

पट्टी का इलमदीन।

जत्थेदार सुंदर सिंह और धन्ने शाह ने बड़ा जोर लगाया कि सज्जन सिंह मुकदमे की अपील करे, मगर सज्जन सिंह नहीं माना। एक तरफ भजन कौर और बाबा अकाली उसे अपील करने से रोकते थे और दूसरी तरफ वह भी घर की आर्थिक दशा देखकर घबरा गया था। उसके सिर पर धन्ने शाह का सोलह सौ रुपया कर्ज हो गया था।

कर्ज के मामले में इलमदीन उससे भी आगे निकल गया था। मगर उसने कर्ज के सूद से बचने के लिए धन्ने शाह का बताया हुआ रास्ता स्वीकार कर लिया। नंबरदार बनने के महीना भर बाद उसने कुएंवाली चार बीघा जमीन दो हजार में रेहन रख दी। अमली तौर पर जमीन भले ही धन्ने शाह ने ली थी, मगर कागजों में रजिस्टरी लक्खा सिंह वरनावाले के नाम से हुई। धन्ने शाह ने लक्खा सिंह से रकम का कागज करवा लिया।

भाई को देखकर करमदीन ने भी दो बीघे रेहन रख दी। कुएं की सोलह बीघे में से छह बीघे धन्ने शाह के कब्जे में चली गई।

उसके बाद धन्ने शाह ने सारा ध्यान सज्जन सिंह की तरफ मोड़ लिया।

बाईस

"बाबा अकाली ! इस तरह फावड़े से सारी गोड़ लेगा ? आ जा, छांह में बैठ जा। कल चार हल लाकर हम गोड़ देंगे"—सज्जन सिंह ने निकट आते हुए कहा।

सज्जन सिंह, दीपा और टहल सिंह अपने खेतों की ओर से आ रहे थे। उन्होंने देखा, बाबा अकाली फावड़े से खेत गोड़ रहा था। खेत जोतने और बोने का समय आ गया था।

"सज्जन सिंहा ! सारा खेत तो नहीं गोड़ पाऊंगा, पर मर्द का काम है, वह हौसला न हारे। जेल से दो बातें सीखकर आए हैं। सबसे पहली बात कि खाली कभी न बैठो। किसी न किसी तरफ हाथ हिलाते ही रहो। अरे, खाली तो च्यूंटी तक नहीं बैठती। खाली बैठे रहने के बजाय कुछ करते रहोगे, तो कुछ-न-कुछ काम तो होगा ही। और दूसरी बात—दिल कभी न हारो। तुम्हारे जिम्मे लगा दिया जाए कि तुम्हें हिमालय पर्वत को ढहाकर सपाट कर देना है, तब भी तुम यह कभी मत सोचो कि यह काम तुमसे हो नहीं पाएगा। बस, तुम कसी पकड़कर जूझ जाओ। सो, मैं भी...। अच्छा, नमी सूखने तक जितनी गोड़ी जाएगी, उतनी ही सही"—बाबा अकाली ने कमर सीधी करके सांस छोड़ते हुए कहा।

"छांह में आ जा। कल हम दोनों आकर काम निबटा जाएंगे।" दीपे ने आगे बढ़कर बाबा अकाली के हाथ से कसी ले ली।

चारों जन पास खड़े शीशम के नीचे जा बैठे।

"पर शरम सूंह ने हल क्यों नहीं चलाया ? नमी चढ़ गई है," टहल सिंह ने बात शुरू

करने के मकसद से पूछा।

"वो भी अंगरेजों की तरह वादा करके मुकर गया," बाबा अकाली ने टहल सिंह की तरह देखते हुए कहा। "तुम्हें पता है, अलग होते वक्त मैंने खुद ही दो घुमाव कम ले ली थी। जो अच्छी-बुरी उन्होंने मुझे दी, उसमें भी वो दोनों खेती करते हैं। सब लोग नहरी खेती का आधा लेते हैं और मुझे वो तीसरा हिस्सा देते हैं।"

"वो भी रब के किए का बचा-खुचा !" पास से दीपे ने कहा।

"बेटे दीप सिंहा ! मुझसे कहां छुपा हुआ है ? पर मैं देखकर अनदेखा कर देता हूं। कहता हूं, चलो, मेरा कौन-सा खर्च है ? किसी न किसी तरह गुजारा होता ही रहता है। ये चार कनाल वो मुझे अलग बोकर दिया करते थे। इतने से जरा खेत तक फेरा लगाने आ जाता हूं। इस बार बड़ी मुसीबत से खेत में पानी दिया—कसी भर-भरकर। फिर पानी की बारी लगी, तो तब तक पानी ही सूख गया था। दो दिन तक मैं शरम सूंह के पीछे-पीछे घूमता रहा, भई खेत खुश्क हो जाएगा। वो जवाब में यों ही हां-हूं करता रहा। और आज सुबह उसकी सिंहनी ने साफ जवाब दे दिया।"

"वो भई, बड़ी सख्त औरत है। मुझे हल के दो चक्कर लेने थे उनसे। पिछली छमाही भूलकर साझेदारी कर बैठा था। उसकी एक ही दुबक पड़ी। दोबारा यार के दरवाजे के सामने से कभी नहीं गुजरे"—दीपे ने आपबीती कह सुनाई।

"और शरम सूंह ने जबान नहीं दे रखी है तुझे इतना खेत बोकर देने की ?" टहल सिंह ने पूछा।

"जबान तो दे रखी है, पर जो वचन देकर मुकर जाए, उसका क्या इलाज ? तुझे बताया है न कि अंगरेज वाइसराय महात्मा गांधी के साथ लिखित समझौता करके मुकर गया था"—बाबा अकाली ने बड़े गौर से उसकी ओर देखते हुए कहा। वह दो-तीन दिन से मन-ही-मन सोच रहा था कि अंगरेज कौम का इतना बड़ा और जिम्मेदार आदमी वचन देकर क्यों मुकर गया ? कांग्रेस ने उस पर विश्वास क्यों कर लिया ? फिर, 32-33 के मोर्चे में इतने बलिदान देकर कांग्रेस क्यों हार गई ? इन विचारों से अंदर-ही अंदर उसका मन भरा पड़ा था। लेकिन बातें करने के लिए उसे मन-मर्जी का श्रोता कोई नहीं मिला था। वास्तव में वह किसी के आगे मन की बातें खोलकर हलका होना चाहता था।

"अंगरेज किस बात से मुकर गए थे ?" दीपे ने बातें सुनने की इच्छा से कहा। वह बाबा अकाली के श्रद्धालु श्रोताओं में से एक था।

"सुन लो।" बाबा अकाली जरा पसरकर बैठ गया। "गांधी-इर्विन समझौते की सबसे बड़ी शर्त थी राजनीतिक कैदियों की रिहाई। रिहाइयों की रफ्तार सरकार ने बड़ी सुस्त रखी। भगत सिंह और उसके साथियों को फांसी देकर शहीद कर दिया। सच बात तो यह है कि सारा देश उनकी रिहाई की आस लगाए बैठा था और यही आस पूरी न हुई। कांग्रेस तब भी समझौते से चिपकी रही। ऊपर से इर्विन की जगह नया वाइसराय आ गया—लार्ड वैलिंग्डन (17 अप्रैल, 1931)। वह बड़े सख्त स्वभाव का और चालाक था। उसने कांग्रेस

के कुछ नेताओं को समझा-बुझाकर गोलमेज कान्फरेंस के लिए तैयार कर लिया। गांधीजी भारत के नेता बनकर कान्फरेंस में शामिल हुए। 31 दिसंबर, 1931 को कान्फरेंस खतम हो गई। अंगरेजों को भारत को देना-लेना तो क्या था, बस, यों ही दुनिया की आंखों में धूल झोंकनेवाली बात थी। गांधीजी जैसे खाली हाथ गए थे, वैसे ही खाली हाथ लौट आए।"

"अरे भूतों से भी कभी किसी को मुराद मिली है ?" दीपे के स्वभाव में ही नहीं था कि चुपचाप बात को सुनता रहे।

"गांधीजी ने आकर सारी बातें साथियों को बताईं। कांग्रेस ने वाइसराय के साथ बातचीत शुरू की कि देशवासियों को राज-काज में कुछ अख्तियार दिए जाएं। वाइसराय मन में कुछ और ही धारे बैठा था। उसने बड़ा सख्त उत्तर दिया। गांधीजी ने फिर भी बड़े नर्म शब्दों में कहा कि सरकार मुल्क से अशांति दूर करे, वरना मोर्चा गरम हो जाने का डर है। वाइसराय ने इसे धमकी समझकर सख्ती शुरू कर दी। सरकार ने कांग्रेस को गैर-कानूनी संगठन घोषित कर दिया (4 फरवरी, 1932)। उसी दिन महात्मा गांधी और वल्लभ भाई पटेल को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया।"

"शुरुआत ही बड़ों से करते हैं"— दीपे की आवाज आई।

"पहले मोर्चे के समय सरकार ने आखिर में लाठी-चार्ज करना शुरू कर दिया था, पर इस बार उसने आरंभ में ही सत्याग्रहियों की मार-कुटाई शुरू कर दी। वाइसराय का खयाल था कि वह महीने-डेढ़ महीने में ही मोर्चे को तोड़ देगा। मगर ज्यों-ज्यों सरकार सख्ती करती गई, मामला गरम होता गया।"

"लो ! भला कुरबानियां देनेवाले सख्तियों से भी कभी डरे हैं !" टहल सिंह ने अपनी राय पेश की।

"देखो, फुटबाल को जितना जोर से धरती पर मारा जाए, वह उतनी ही ऊंची उछलती है। यही हाल जनता का है। सरकार ने सभी बड़े-बड़े लीडरों को जेल में डाल दिया। कांग्रेस के सारे दफ्तरों पर कब्जा कर लिया। अनेक कौमी स्कूलों और कालेजों को ताले लगा दिए। काले कानून जारी करके जलसे-जुलूसों पर पाबंदी लगा दी। ऊपर से सत्याग्रहियों पर इतनी लाठियां बरसाई जाती थीं कि कसाई पशुओं को भी उतनी बेरहमी से नहीं मारते। अनेक के हाड़-गोड़ टूट जाते थे। सरकारी अफसर कहते—इतना मारो, इतना मारो, कि बाद में दूसरे जत्थे में आने का कोई नाम न ले। पर इस तरह सत्याग्रह करनेवाले कहीं रुकते हैं ? जनता का भड़का हुआ जोश भी कभी ठंडा पड़ा है ?"

"और जत्थे जाते कहां थे ?" बाबा अकाली की बात को टोककर सज्जन सिंह ने पूछा। उसके मन में जैतो जानेवाले जत्थों की याद ताजा हो गई थी।

"गुरु के बाग या भाई फेरू की तरह किसी एक जगह जत्थे भेजने का मोर्चा नहीं था—बल्कि सारा देश ही मोर्चा बन गया था। कई इलाकों में लोगों ने सरकारी लगान देना

बंद कर दिया था। कहीं-कहीं लोग चुंगी देने से इनकार करने लगे थे। सरकार उन्हें पकड़कर कैद के साथ-साथ जुर्माना करती। कई बार जुर्माने की रकम इतनी होती कि लोगों की सारी जायदाद नीलाम हो जाती, तब भी जुर्माने की रकम पूरी न होती। फिर सरकार उनके भाई-बंदों और रिश्तेदारों की जायदाद पचा लेती। कोई एक अंधेरगर्दी मचा रखी थी नौकरशाही ने ! कई जगहों हजारों रुपयों की जायदादें कौड़ियों के भाव नीलाम कर दी गईं। सत्याग्रह करनेवालों की जायदाद की आम लोगों में से तो कोई बोली ही नहीं लगाता था।"

"इस तरह बोली लगाकर कौन मुंह काला करवाता ?" दीपे के खयाल में यह काम बहुत ही बुरा था।

"सो, बोली लगाते थे सिर्फ टोडी लोग—यही जैलदार, सफेदपोश और इसी तरह के सरकार के पिट्ठू"—बाबा अकाली ने अपनी बात जारी रखी। "और ये लोग यों ही नाममात्र की बोली लगाकर हजारों की जायदाद खरीद लेते थे। यह जायदाद की मार सहना लोगों के लिए बड़ा कठिन था। फिर भी उन्होंने दिल नहीं हारा।"

"भई, जोश तो जिद्दी आदमी को शहीद होने तक ले जाता है"—टहल सिंह ने घुटनों पर साफा लपेटते हुए कहा। वह पालथी लगाकर बैठे-बैठे थक गया था। कमर के पीछे की तरफ से साफा लपेटकर और दोनों घुटनों के गिर्द जोर से बांधकर उसने एक किस्म की आरामकुर्सी बना ली।

"और ऐसा जोश ही किसी मोर्चे की जान होता है"—बाबा अकाली ने टहल सिंह की तरफ देखते हुए अपने शब्दों पर जोर देकर कहा। "गांवों के कई इलाकों में सरकार ने पुलिस की ताजीरी चौकियां बना दीं। उनके खर्च के रूप में लोगों से हजारों रुपए उगाहे गए। उगाहे भी कहां, लूटे गए। यह मोर्चे का एक पहलू था। अब और सुनो। सरकार ने जगह-जगह कांग्रेस के दफ्तरों पर कब्जा कर लिया था। सत्याग्रह करनेवाला जत्था हाथों में कांग्रेस का झंडा लेकर दफ्तर पर दोबारा कब्जा करने के लिए धावा बोलता। उस मोर्चे को 'धावा बोलना' ही कहते थे। जत्थेवाले इन्कलाब और वंदेमातरम् के नारे लगाते आगे बढ़ते। वो दफ्तर के नजदीक पहुंचते तो आगे से पुलिस लाठियां लेकर टूट पड़ती। जत्थेवाले लाठियां खाते तब तक आगे बढ़ते रहते, जब तक बेहोश होकर गिर न पड़ते। जवाब में हाथ तो उठाते नहीं थे। उन्होंने अहिंसा का प्रण ले रखा था। ये नजारे देखने में बड़े दुखदाई होते थे। निहत्थे लोगों को भूसे की तरह पीटते जाना—कोई जवांमर्दी है ? फिर कहीं स्कूलों के कमसिन बच्चे जत्था लेकर जाते। कहीं अच्छे घरों की नारियां और छोटी-छोटी लड़कियां भी जत्थों में होतीं। सरकारी टुक्कड़ख़ोर उन्हें भी निर्दयता से मारते-पीटते।"

"हत्, तुम्हारा कुछ न रहे, टोडी-बच्चो !" दीपे ने खासा दुखी होकर कहा।

"टोडियो के साथ भी बुरा तो बहुत होता था, लेकिन वो लालच के मारे समझते नहीं थे।"

"मैं कहूं—शहरों में औरतें टोडी बच्चा-हाय-हाय कर स्यापे किया करती थीं। अभी कल की ही तो बात है। आए दिन कसूर में देखा करते थे हम !" टहल सिंह ने बाबा अकाली के कथन के समर्थन में कहा।

"तू तो उस मोर्चे में भी एक दिन मजा ले आया था।" दीपे की बोली भले ही व्यंग्य भरी थी, मगर उसमें श्रद्धा और सराहना ज्यादा थी।

"एक मैं क्या, अपने गांव से चार-पांच आदमी गए थे।"

"तब तो हम धरम सूंह छड़े को भी साथ ले गए थे"—पास से सज्जन सिंह ने गवाही देते हुए कहा। "वैसे, वापस आते वक्त वह हमें सारे रास्ते छेड़ते आया। कहता था—तुम्हारी औरतें तो चोटों पर सेंक कर देंगी, पर मेरी बात कौन पूछेगा ?"

"वह बेगम को बुलवा लेना !" बात को ठिकाने पर आया देख दीपे मजाक करने से नहीं टला।

"बच्चू ! तुम्हें हंसी-ठट्ठा सूझता है, पर मैं उस जोश को देखता हूं"—बाबा अकाली ने दीपे की ओर देखते हुए कहा। "सारे देश में शायद ही कोई ऐसा गांव होगा, जहां किसी एक आदमी ने कौमी आंदोलन में हिस्सा न लिया हो। वरना कहीं से दो, कहीं से दस जरूर गए थे। फिर इस पिकेटिंग के काम में तो वो बहुत ही आगे रहे हैं। असल में मार खाने और जेल काटने के मामले में शहरियों के मुकाबले गांववासी ज्यादा तगड़ा हैं। बस, जुर्माने की मार नहीं सह सकता। हां, सारी जायदाद जब्त हो जाए, तो सह लेगा।"

"ओ, फिर सिर पर आई झेलनी तो पड़ती ही है न, भई।"

"ज्यादा जोर विदेशी माल के बायकाट पर था। यह आंदोलन सारे देश में फैल गया था। उस वक्त विदेशी माल मंगवानेवाले, बेचनेवाले या इस्तेमाल करनेवाले को लोग नफरत से देखते थे। सत्याग्रही दुकानों के दरवाजों पर पिकेटिंग करते थे। सरकार अपने पिट्ठुओं को ग्राहक बनाकर माल खरीदने के लिए भेजती थी। पिकेटिंग करनेवाले ग्राहकों के सामने हाथ जोड़ते, मुल्क का वास्ता देते और अंत में उनकी राह में लेट जाते। उसी वक्त पुलिस लाठियां बरसाने लगती। जैसे जवान लड़के भुट्टों को कूटते हैं, पुलिस वही हाल करती। पिकेटिंग करनेवालों को वह गिरफ्तार कम करती थी, मारती ज्यादा थी। सरकार वैसे भी कितने लोगों को गिरफ्तार करती ! इस मोर्चे में एक लाख बीस हजार से ज्यादा लोग कैद हुए थे। और मार तो शायद पांच-सात लाख को पड़ी होगी।"

"बल्ले-बल्ले !" दीपे ने हैरानी से कहा। "पर विलायती माल के बाइकाट से अंगरेजों को क्या दर्द होता था ?"

"अंगरेजों को ? इसी बात से उन्हें सबसे ज्यादा दर्द होता था। असल में अंगरेज व्यापारी कौम है। मनमर्जी के दामों पर माल बेचने के लिए ही इन्होंने आधी दुनिया को अपना गुलाम बना रखा है। कभी तो अमरीका भी अंगरेजों का गुलाम था। कई मुल्क आहिस्ता-आहिस्ता इनके पंजे से निकल गए हैं। अब हमारी बारी है। और हमारे पास सबसे

बढ़िया हथियार इनके माल के बायकाट का है। अगर सारे हिंदुस्तानी इनका माल खरीदना बंद कर दें तो ये भूरी आंखोंवाले बिलाड़ अपने आप ही चटाई लपेटकर चलते बनें। महात्मा गांधी ने मार्शल ला के बाद बायकाट का यह आंदोलन चलाया है और अब तक अंगरेजों के कई कारखाने बंद हो चुके हैं। मैं तो कहता हूं, विलायत में सफें बिछ गई हैं। हजारों मजदूर बेरोजगार हुए घूम रहे हैं। पार्लियामेंट में हाहाकार मच गया था तब।''

"और क्या ! घर में आग लगी हुई थी न !' अंगरेजों के घर में हलचल की खबर सुनकर दीपे को बड़ी खुशी महसूस हुई।

"और ज्यों-ज्यों पार्लियामेंट में शोर बढ़ता, यहां की सरकार और भी ज्यादा सख्ती बरतने लगती। वह सिर्फ बाहर पिकेटिंग करने वालों को ही नहीं मारती थी, बल्कि जेल में कैदियों के साथ भी बहुत सख्ती बरतती थी। कई लोग तो जेलों के अंदर ही उस पशुता का शिकार हो गए, और कई उमर भर के रोगी बनकर बाहर आए। लेकिन इस सब कुछ के होते हुए भी सत्याग्रह चलता रहा। ज्यादातर लीडर तो अंदर थे—और जो बाहर बच गए, वो छुप-छुपकर अपना काम करते रहे। कांग्रेस ने ऐलान किया कि हम अप्रैल (1932) में दिल्ली में सेशन करेंगे। सरकार को पिस्सू पड़ गए। उसने ढेरों पुलिस दिल्ली में इकट्ठी कर ली। बड़े अफसरों ने बड़े ऐलान किए कि दिल्ली में सेशन नहीं होने दिया जाएगा। मगर वह सेशन हो गया। और हुआ भी बताई गई जगह पर और तय की गई तारीख पर।''

"कहां हुआ था ?'' दीपे से बगैर पूछे रहा नहीं गया।

"दिल्ली की सबसे ज्यादा रौनकवाली जगह, चौक घंटाघर में।''

"मर्दों ने मुंह से निकाली हुई बात पूरी करके दिखा दी !' यह टहल सिंह की आवाज थी।

"खैर। सत्याग्रह चलता रहा''—बाबा अकाली ने फिर पहली बात शुरू कर दी। मुसलमानों और गैर-मुसलमानों की अलग-अलग परचियां पड़ा करती थीं। अंगरेजों ने ऐलान कर दिया कि अब से अछूतों के वोट भी अलग पड़ा करेंगे। इसका मतलब था कि देश में एक और तीसरी कौम बनाकर उसे हिंदुओं से अलग कर दिया जाए। महात्मा गांधी ने सरकार को चिट्ठी लिखी कि अगर यह हुक्म वापस न लिया गया, तो मैं 20 सितंबर से अनशन कर दूंगा। वाइसराय चिट्ठियों का जवाब तो हेर-फेर करके देता रहा, पर उसने महात्मा गांधी की यह बात मानी नहीं। तय किया गया दिन आ गया, और गांधीजी ने जेल में ही अनशन शुरू कर दिया। यह खबर सुनकर सारे देश में हलचल मच गई। सत्याग्रह और भी तेज हो गया। बड़े लोगों को चिंता होने लगी। विलायत तक तार बज उठे। अंगरेजों का सिंहासन डोल उठा।''

"डोलना तो था ही। अगर कहीं महात्मा गांधी मर जाते तो...।'' दीपे तसल्ली से कुछ नहीं कह सका कि तब क्या हो जाता।

"पांच-सात दिनों में ही हालात बदल गए। मुल्क के विचारशील लोग और कई दूसरे पक्षों के लोग पूना में इकट्ठे हुए। अछूतों के भी चोटी के सारे लीडर आए—डॉ. अम्बेडकर समेत। उन्होंने सर्वसम्मति से फैसला किया कि अछूतों के वोट अलग नहीं पड़ने चाहिए। मगर दस साल के लिए उनकी कुछ सीटें सुरक्षित जरूर रहें—वह भी अछूत या अलग कौम समझकर नहीं, बल्कि पिछड़े हुए समझकर। इस फैसले को पूना पैक्ट कहा जाता है। मजबूर होकर सरकार ने इस फैसले को मान लिया। दिल्ली और लंदन से इकट्ठा ऐलान किया गया—पूना पैक्ट की मंजूरी का (26 सितंबर)। फिर महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर महात्मा गांधी के पास पहुंचे और उनसे अनशन खत्म करने को कहा। आखिर बहुत से लीडरों के विनती करने पर अगले महीने की छह तारीख को महात्मा गांधी ने आमरण व्रत छोड़ा।"

"फिर मोर्चा बंद हो गया ?" दीपे ने सवाल किया।

"नहीं, सत्याग्रह उसी तरह जारी रहा। पर ऐसा लगता था जैसे जोश कुछ मद्धिम पड़ गया हो। लोगों का ज्यादा ध्यान अछूतों के मसले की तरफ हो गया था। लोग पहले जिनकी परछाईं से भी डरते थे, उनके लिए मंदिर खोले जाने लगे। उनके हाथ का खाने में पहले जैसी छुआछूत न रही। मगर इतने से ही महात्मा गांधी की तसल्ली न हुई। अगले साल उन्होंने अछूतों की शुद्धि के लिए इक्कीस दिन का व्रत रखने का ऐलान कर दिया। यह व्रत रखने के लिए सरकार ने गांधी जी को रिहा कर दिया। उसी दिन (8 मई, 1933) महात्माजी ने व्रत शुरू कर दिया। साथ ही उन्होंने डेढ़ महीने तक सत्याग्रह बंद रखने का हुक्म दे दिया। इस तरह सत्याग्रह बंद हो गया और लोग अछूतों को अपने साथ मिलाने के काम में जुट गए। अछूत मंदिरों में जाकर महात्मा गांधी के स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनाएं करते। ऊंची जात वाले अछूतों के हाथों से बड़े चाव से लेकर खाते। समझो, इस छुआछूत मानने वाले देश में एक किस्म का इन्कलाब आ गया। बड़ा सुधार हुआ। डेढ़ महीना बीतने के बाद गांधीजी ने छह हफ्तों तक और सत्याग्रह बंद रखने का हुक्म दे दिया। इस समय गांधीजी ने वाइसराय को चिट्ठी लिखकर मुलाकात का वक्त मांगा। असल में वो गांधी-इर्विन समझौते की तरह इस बार भी कोई समझौते का रास्ता निकालना चाहते थे। लेकिन वाइसराय अकड़ गया।"

"हुकूमत का नशा क्या कम होता है !"

"वाइसराय ने जवाब में लिखा कि पहले बिना शर्त सत्याग्रह वापस लिया जाए, तभी मुलाकात हो सकेगी। अब कांग्रेस क्या करती ! काफी सोच-विचार के बाद महात्मा गांधी ने आम जनता को सत्याग्रह करने से रोक दिया, पर छोटे-बड़े लीडरों को हुक्म दिया कि वो अकेले-अकेले सत्याग्रह करके जेलों में चले जाएं।"

"अब ले लो ! तुम भी आधों को कैद करवाके खुद बाहर मौज करते फिरते हो न !" दीपे की हमदर्दी बाहरवालों की तुलना में जेल जा चुके लीडरों के साथ ज्यादा थी।

"लड़ाई जारी रही, पर उसका तरीका बदल गया। सरकार ने महात्मा गांधी को फिर

पकड़ लिया और एक साल की सजा सुना दी (31 जुलाई, 1933)। इस बार जेलवालों ने गांधीजी के साथ पहले से भी ज्यादा बुरा बर्ताव करना शुरू कर दिया। इस बदसलूकी के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए महात्मा गांधी ने भूख-हड़ताल शुरू कर दी। सरकार ने डरकर, या पता नहीं क्या सोचकर, जल्दी ही गांधी को रिहा कर दिया (23 अगस्त, 1933)। असल में दोनों ही पक्ष जैसे इस लंबे मोर्चे से थक गए थे। वर्किंग कमेटी के मेंबर पटना में इकट्ठे हुए (19 मई, 1934)। महात्मा गांधी के कहने पर कांग्रेस ने सत्याग्रह पूरी तरह बंद कर दिया। किस्सा कोताह, इतनी कुरबानियां देकर भी हम हार गए"—बाबा अकाली ने अफसोस में सिर हिलाते हुए कहा।

"अरे, कमर ही टूट गई ! इतनी बड़ी हार !" टहल सिंह ने भी उसी तरह सिर धुनते हुए कहा।

गौर से देखने पर पता चलता था कि वे सबके सब उस हार को बुरी तरह महसूस कर रहे थे।

"मुझे कांग्रेस के हार जाने का इतना अफसोस नहीं है," बाबा अकाली ने सबकी तरफ झांककर देखते हुए कहा। "लड़ाई में जीत-हार तो होती ही रहती है। हारकर भी कांग्रेस ने आजादी की अपनी मांग छोड़ तो नहीं दी थी। मुझे तो इस बात पर अफसोस है कि मैं उस मोर्चे में हिस्सा नहीं ले सका।"

"हां, तब तू बीमार था न"—टहल सिंह ने याद करते हुए कहा।

"बीमार जैसा बीमार ! कुछ दिन तो हम आस ही छोड़ बैठे थे"—सज्जन सिंह ने पहले की बात का समर्थन किया। तब वह ज्यादा समय बाबा की सेवा में ही लगा रहता था।

"हकीम ने तो एक बार जवाब ही दे दिया था, पर मेरा ही मन नहीं बना मरने का"—बाबा अकाली ने सज्जन सिंह से नजर मिलाते हुए कहा।

"अच्छा ! मरने के लिए भी मन बनाना पड़ता है ?" दीपे ने उदास वातावरण को बदलने की इच्छा से कुछ मुस्कराते हुए पूछा।

"हां, अपने इरादे का जीने-मरने के साथ बड़ा गहरा संबंध होता है। जिस आदमी के सामने जिंदगी का कोई मकसद न हो, वह तो छोटी-मोटी बीमारी से ही मर जाता है। और मैं ? देख लेना तुम—देश में आजादी का झंडा लहराते देखकर ही मरूंगा।" बाबा अकाली को अपने आप पर कितना दृढ़ विश्वास था !

"दिखा दे, दिखा दे, बाबा अकाली ! हमें भी जल्दी से आजादी दिखा दे।" दीपे के स्वर में बड़ा चाव और उत्साह था।

कहानी लगभग खत्म हो चुकी है, यह सोचकर सब उठने का उपक्रम करने लगे। मगर टहल सिंह अभी वैसे ही बैठा कुछ सोच रहा था। आखिर उसने सवाल कर ही दिया—"बाबा अकाली, इस मोर्चे में हार का बड़ा कारण क्या था ?"

"बड़ा कारण ?" बाबा अकाली ने उसकी तरफ बड़े गौर से देखते हुए कहा— "कांग्रेस

में उस वक्त दो धड़े हो गए थे। सरकार ने अगले साल से हिंदुस्तान को कुछ अख्तियार देने का ऐलान किया था। उसे उन्नीस सौ पैंतीस का संविधान कहते हैं। उसके मुताबिक नए चुनाव होने थे। यही जो पिछले दिनों हुए थे। कुछ कांग्रेसी कहते थे कि सत्याग्रह बंद करके चुनाव लड़ना चाहिए। और कई इस बात के विरुद्ध थे। पहले धड़े का जोर चल गया। वो चुनाव जीतकर असेंबलियों में जाकर मुल्क का भला करना चाहते थे। सारी बातों पर विचार करके गांधीजी ने सत्याग्रह बंद कर दिया। फिर बड़े जोर-शोर से चुनाव हुए। जिन सूबों में हिंदुओं का बहुमत था, वहां कांग्रेस को ज्यादा सीटें मिलीं। इस वक्त, देखते ही हो, कितने सूबों में कांग्रेस की वजारतें हैं। आगे देखो...।"

"अच्छा, जिस दिन पूरी आजादी मिलेगी, तब देखेंगे"—कहते हुए दीपा उठ खड़ा हुआ।

"लो फिर, हमें कल बाबा अकाली के खेत में हल चलाना है। भूल मत जाना।" सज्जन सिंह भी उठ खड़ा हुआ।

"बाबा अकाली का काम भूला जाएगा ? इसके तो हम चेले-चाटे हैं"—दीपे ने नीचे बिछाकर रखा हुआ अंगोछा उठाकर झाड़ते हुए कहा।

"हमारा हल भी ले आना। बाबा अकाली के काम के लिए भला कौन ना कहेगा।" टहल सिंह ने भी सेवा में हिस्सा डालने के इरादे से कहा।

बाबा अकाली की कसी उठाकर दीपे ने कंधे पर रख ली। फिर सब के सब छोटी-छोटी बातें करते गांव की तरफ चल दिए।

तेईस

पीरूवाला का बंटवारा हो गया। सिख एक तरफ, मुसलमान दूसरी तरफ। दो कौमें, दो पत्तियां, दो नंबरदार, दो मजलिसें। शहतूतोंवाले कुएं पर भी एक की जगह दो तख्तपोश बिछ गए। एक सज्जन सिंह की तरफ, एक इलमदीन की तरफ। रौनक का भी बंटवारा हो गया। सिख एक तरफ बैठते, मुसलमान दूसरी तरफ। कभी कोई सिख नौजवान दिलेरी दिखाकर मुसलमानों के तख्तपोश पर जा बैठता। कभी कोई मुसलमान गलती से सिखों की तरफ जा बैठता। तब दोनों को अपने धर्म-भाइयों से क्या सुनना पड़ता, यह वही जानते थे।

गहना लुहार अब कुएं पर कभी नहीं आता था। वह एक दिन आया था। उसने शहतूतों की छांह में एक के बदले दो तख्तपोश देखे। एक कुएं के पूरब में, दूसरा पच्छिम में। एक पर सिख बैठे ताश खेल रहे थे, दूसरे पर मुसलमान। कुएं की मुंडेर पर पांव टिकाए गहना दो मिंनट तक दोनों को देखता रहा। अपने मजहब का कोई आदमी उसे दोनों तरफ नजर

नहीं आया। वह निराश होकर लौट गया। उस दिन के बाद वह कुएं पर फिर कभी नहीं गया। वह सारा दिन दुकान पर बैठा हल के फल कूटता रहता था।

"बाबा गहने ! तू इतना उदास क्यों रहता है ?" दरांती के दांते निकलवाने आए दीपे ने हमदर्दी से पूछा। "तू तो जवानों के साथ जवान और बूढ़ों के साथ बूढ़ा था। हर एक का यार। तेरी बातें सुनने के लिए ही हम हर तीसरे दिन दांते निकलवाने आ जाते थे। और अब तू आठों पहर मुंह सिले रहता है।"

"दीप सिंहा !" गहने का दांते निकालनेवाला हाथ रुक गया। पल-दो पल वह बड़े ध्यान से दीपे के चेहरे की तरफ देखता रहा। "जहां कभी बुलबुलें गाती थीं, यहां अब उल्लुओं का बोलबाला है। और तू जानता है, उल्लू तो हमेशा उजाड़ की तलाश में रहते हैं। और बेचारा गहना—यह चौराहे पर खड़ा राहगीर—सोच रहा है कि मैं किधर जाऊं। सच पूछता है, बेटे !" नाराज मत होना, सरदारा ! कि एक म्लेच्छ ने तुझे बेटा कहकर क्यों बुलाया है। तू मेरे हुसैन का साथी है। छुटपन में तुम दोनों साथ-साथ खेला करते थे। बिलकुल एक-से। वो नित्य तुम्हारे घर से खा आया करता था। एक दिन तूने हमारे घर में हुसैन के साथ खा लिया। देखकर मैं बड़ा पछताया। तुझे उसी वक्त उठाकर मैं तेरे घर ले गया और जाकर बता दिया। तेरी मां हंसकर कहने लगी—भाई, तू आते वक्त इसे मस्जिद में नहला लाता। अपने आप सुच्चा हो जाता। मस्जिद भी तो रब का घर है।" दीप सिंहा ! मैं तेरी मां की बात पर कई दिनों तक विचार करता रहा। मस्जिद रब का घर है। गुरुद्वारा ? वह भी रब का घर है। मंदिर, ठाकुरद्वारा, गिरजा—सब रब के घर हैं। मैं मस्जिद में भी चला जाता था, गुरुद्वारे में भी। और अब, सौंह ले ले, अगर दोनों जगहों में से किसी में भी कभी कदम भी रखा हो तो ! जिस दिन पहले-पहल यहां चौधरी फजल हक़ और उसके साथ एक मौलवी आया था, उस दिन मस्जिद में गया था मैं। बस, वो आखिरी दिन था। उसके बाद मैंने गुरुद्वारे जाना शुरू कर दिया। जत्थेदार सुंदर सिंह ने मुझसे वह घर भी छुड़वा दिया। मस्जिद में मुसलमान होते हैं। गुरुद्वारे में सिख होते हैं। गरीब गहने का रब कहीं नहीं होता। दीप सिंहा ! जैसे मेरा हुसैन मुझसे बिछुड़ गया था, उसी तरह रब भी मुझे छोड़ गया है। और तू ? तुझे देखकर मुझे हुसैन याद आ जाता था। अब तू भी बिछुड़ जाएगा। हम सब बिछुड़ जाएंगे—सब !" गहने की आंखों में पानी भर आया।

थोड़ी देर तक शोख दीपे को भी नहीं सूझा कि वह क्या कहे। गहने की बात के असर के नीचे वे दो मिनट चुपचाप बुत बना बैठा रहा। आखिर उसने गहने की बात का अर्थ समझते हुए कुछ विनोदी ढंग से कहा, "बाबा गहने ! तू तो यों ही मुस्लिमलीगियों की थोथी शेखियां सुनकर सोच में पड़ गया है। अव्वल तो पाकिस्तान बनेगा नहीं। और अगर बन भी गया, तो रावी के पार बनेगा। ये सब पाकिस्तान के आशिक वहां चले जाएंगे। और तू डर मत। तुझे हम सिख बनाकर रख लेंगे। मैं तेरा बेटा बन जाऊंगा।"

"बेटे दीप सिंहा !' लोहे से काले हुए हाथ से आंखें पोंछते हुए गहने ने कहा— "मैं मुसलमानों के घर में पैदा हुआ। सारे लोग भुलाये में ही मुझे मुसलमान कहते रहे हैं। मेरे बाल सफेद हो गए हैं, पर मैं अभी तक मुसलमान नहीं बन सका। कसूर में बुल्ले शाह के मकबरे पर एक बार कव्वाली सुनी थी—'मन अपना पुराना पापी है, बरसों में नमाजी बन न सका।' नहीं बन सका—यह पापी मन सारी उमर नमाजी नहीं बन सका। फिर तुम मुझे एक दिन में सिख कैसे बना लोगे ? मुश्किल काम है, बहुत मुश्किल। गुरुनानक का सिख बनना बहुत मुश्किल काम है। हां, तुम लोग मुझे जत्थेदार सुंदर सिंह का सिख जरूर बना लोगे—जैसे मेरे बाकी भाई फजल हक़ के मुसलमान बन गए हैं।" काफी देर तक गहना उदासी में सिर हिलाता रहा। फिर वह अपने, दांते निकालने के, काम में डूब गया।

"बाबा ! आज तो तू चौथे पद की बातें छेड़ बैठा है। हम लड़के-वाले इन बातों को भला क्या समझें ! हमारे साथ तो हमारी जैसी बातें किया कर।" दीपा सचमुच ही गहने की भेदभरी बातें समझ नहीं पाया था। हां, वह बदले हुए गहने को देखकर हैरान जरूर हो रहा था।

"सच कहता है दीप सिंहा ! मुझ जैसे बावले की बातें तुम नहीं समझ सकते। कोई भी नहीं समझ सकता। सारे गांव में सिर्फ एक आदमी समझ सकता है। लेकिन अब उसके पास जाने में भी दिल डरता है। चलो, ठीक है ! उसके रंग !' सिर झुकाए गहना अपने काम में जुटा रहा।

मियां गहना शहतूतोंवाले कुएं पर कभी नहीं जाता। बाबा अकाली भी वहां नहीं जाता। विभाजित गांव में वे दोनों ही अजनबी थे—अपने ही घर में अजनबी।

शहतूतोंवाले कुएं पर भी उदासी का असर छाने लगा था। एक तख्तपोश पर चार-चार आदमी बैठते। वे अपनी बातें करते, जिन्हें वे 'अपनी' समझते। दूसरे तख्तपोश पर दूसरे धड़े के दो आदमी आ बैठते, तो वे पहले तो चुप हो जाते—आखिर 'बेगानों' के सामने 'अपनी' बातें कैसे की जा सकती थीं ? पीढ़ियों से 'अपने' दिनों-दिन 'पराए' बनते जा रहे थे।

पिछले चुनावों में 'पंथ', 'इस्लाम' और 'धर्म' का बहुत प्रचार हुआ था। उसका असर लोगों के दिलों से अभी तक गया नहीं था।

सज्जन सिंह अकेला ही अपने तख्तपोश पर बैठा टूटी हुई रस्सी में गांठ लगा रहा था। कभी वह पच्छिम की ओर झांककर देख लेता, कभी पूरब की ओर। पच्छिम की ओर बशका हल चला रहा था। अब घर के लोग उसे बशके की जगह बख्शीश कहकर बुलाया करते थे। उसके चेहरे पर मूंछोंवाली जगह पर अब स्याही झलकने लगी थी। कद में भी वह सज्जन सिंह जितना ऊंचा-लंबा हो गया था।

पूरब की तरफ अलिया हल चला रहा था। पास ही जैना और जंते सब्जी गोड़ रही थीं। पिछले साल वह क्यारी जैना की अपनी थी। मगर अब वह धन्ने शाह की हो गई

थी। धन्ने शाह ने तरस खाकर, लिहाज करके, या अपने किसी गुप्त स्वार्थ को सामने रखकर वह खेत इलमदीन को ही हिस्से पर दे दिया था। इलमदीन मालिक से खेत-मजूर बन गया था, जैना मजूर की बीवी और अलिया मजूर का बेटा। मालिकों से आगे मुजारों की पीढ़ी चल पड़ी थी।

और शहतूतोंवाले कुएं के खेत ? उनकी भी जैसे तासीर बदल गई थी। खेत वही थे। काम करनेवाले भी वही थे। मगर फसल वैसी नहीं थी। पहले खेत मालिकों के हल के नीचे होते थे, अब मुजारों के। मालिक पानी नहीं, अपने पसीने से फसलों को सींचता है, लेकिन मुजारा ? जिस खेती की कमाई किसी और को ले जानी हो, वहां कोई अपने लहू को पानी की तरह क्यों बहाए ?

सज्जन सिंह बैठा सोच रहा था—यह क्या हो गया ? किसी ने कहा था—न जर रहा, न यारी। मेरा बापू और चाचा चरागदीन सारी उमर इकट्ठे हल चलाते रहे। लोग कहा करते थे, इनकी चांद और चकोरवाली प्रीत है। मैं और इलमा भी साथ-साथ खेला करते थे। खेत की घास-फूस निकालने जाते थे, तो हम दोनों कराड़ी की बूटियों की झोलियां इकट्ठे ही एक ही जगह पर डालते जाते थे। बाद में एक-सी गठरियां बनाकर उठा लाते थे। कोई भेदभाव नहीं था। पशु चराने भी दोनों साथ-साथ ही जाते थे। एक ही झोली में से दोनों दाने चबाते थे। और उस दिन, जिस दिन झरबेरी में से शहद उतारा था। हम दोनों छत्ते में से अंगुलियों से उतार-उतारकर शहद चाट रहे थे। तब थी कोई सच्चे-जूठे की परवाह ? ऊपर से आ गया बाबा चेत सूंह। मैं डर के मारे हाथ पोंछकर परे हो गया। इलमा उसी तरह मौज से खाता रहा। वह आधे से ज्यादा समेट गया। मुझे देख-देखकर गुस्सा आ रहा था। मैंने मन-ही-मन बाबा को बहुत कोसा। वह जरा-सा एक तरफ हुआ, तो मैंने झपट्टा मारकर इलमे से छत्तेवाली टहनी छीन ली। आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे इलमा। हम खेत में भागते फिर रहे थे और मैं मुंह से शहद भी चाटे जा रहा था। ऐन जीभ से छत्ता साफ कर लिया और टहनी मैंने इलमे के पैरों में दे मारी। वे कितने अच्छे दिन थे। फिर हमने कितनी बार एक ही कटोरी से शराब पी है। और आज ? बात करने लायक भी नहीं हैं। इतनी दूर क्यों हो गए हम दोनों ? हम दोनों ने पहले दिन एक साथ हल जोते थे। और आज बख्शीश और अलिया ? बेचारे लड़कों के बस में क्या है, जब हम दोनों ही चार पांव साथ-साथ नहीं चल सकते। एक-दूसरे के सामने आने में भी संकोच करते रहते हैं। हमसे तो जैना ही हिम्मतवाली है। वह सारे परिवार की सहकर भी पांचवें-सातवें दिन कभी दो घड़ी दीपे की मां के पास आ बैठती है। दोनों जनीं दुख-सुख की बातें करके जी हलका कर लेती हैं। किसी दिन उनका मिलना भी बंद हो जाएगा। भला बताओ, हमें लंबरदारी ने क्या दिया ? दोनों घर कर्ज के नीचे दब गए हैं। इलमा तो कुएं से ही निकल गया। रेहन रखी हुई जमीन कभी छुड़वा पाएगा ? चार बीघा खेत, दो हजार रुपया। दो बीघा करमू ने भी रेहन रख दी है। दो बरस बाद बाकी की दो भी

रख देगा। और मैं उनकी बात करता हूं, मेरे पास क्या रह गया है ? सोलह सौ हो गया है, सोलह सौ ! और जानता है, सोलह सौ का ब्याज कितना बनता है साल का ? सौ के पीछे पच्चीस। चार सौ ब्याज का बन गया। सोलह सौ पर चार सौ। और आमदनी कितनी है ? कैसे चुकाएगा तू यह सोलह सौ ? खर्च भी हम कुछ नहीं करते। अब पेट में तो कुछ जाना ही चाहिए। चुपड़ी हुई न सही, रूखी ही सही। गेहूं की न सही, मक्के-बाजरे की ही सही। आखिर भट्ठी ईंधन तो मांगेगी ही सही। फिर नंगापन भी ढंकना पड़ता है खद्दर ही सही, लुधियाना ही सही। पहले भी हम कौन-सी बोस्की पहनते थे ! सारा परिवार मुंह बांधकर भी बचत करे, तब भी सोलह सौ का ब्याज नहीं चुक सकता। यह फल मिला है लंबरदारी का। अभी तो धन्ने शाह और सुंदर सिंह कहते थे—अपील कर। उनके कहे में आ जाता, तो सारी जमीन चली जाती। कुएंवाली तो अब भी गई ही समझो। धन्ने शाह की आंख इसी पर है। लेकिन अब किया क्या जाए ? एक बार धन्ने शाह की सलाह नहीं मानी। मगर उसे टालूंगा कब तक ? उसकी बातें फेंकी भी नहीं जातीं। वह घुन्ना-सा जवान का कितना मीठा है, और अंदर से जहरीला नाग। वो कहते हैं न—मुंह में राम, बगल में छुरी। क्या-क्या समझा रहा था उस दिन : "सरदार सज्जन सिंहा ! हम लोग तुम्हारी इज्जत के साझीदार हैं। सज्जन-मीत की बदनामी करके खुशी नहीं होती धन्ने शाह को। मेरा तो उसूल है, जैसे अंदर घुसकर किसी से कुछ लाएं, उसी तरह लौटा आएं। कोई तीसरा कान सुने तक नहीं। अब इलमदीन खुद भले ही लोगों को बताता फिरे, पर धन्ने शाह के मुंह से कोई बात निकली है ? ले भाई, तू ही जोते-बोये जा। खेती-फसल में से जो चार मन पुजते-सरते हों, देते रहना। जिस दिन पैसे दे देगा, तेरी दौलत तेरे पास होगी। तुझे भी यह सलाह तेरे भले के लिए ही दी थी। हर साल ब्याज का चार सौ देना तेरे लिए कठिन है। वैसे तो हिस्से-ठेके के जो दो मन आएंगे, वही ले जाने हैं मुझे तो। और एतबार कर मुझ पर, तीसरे कान में भनक तक नहीं पड़ेगी। हल तेरे ही चलेंगे यहां। और हिस्सा भी जो तेरा रब कराए, दे देना। बुरे आदमी, तू तो फिर भी हिंदू धर्म का अपना है, मैंने तो इलमदीन से भी कभी हिसाब नहीं पूछा। सो, ठंडे दिल से दोनों आदमी सोच लो। उधर लड़की-लड़का भी ब्याह के लायक हुए खड़े हैं। हमें कहीं आगे बरतने से तो नहीं हट जाना है।" धन्ने शाह...धन्ने शाह की बातें...। कोई भी समझ में नहीं आती। क्या किया जाए। लड़के-लड़की वाली बात भी ठीक है। बख्शीश की तो अभी चार बरस तक खैर है, मगर कोठे जैसी लड़की को कब तक घर में बिठाए रखेंगे, कुछ नहीं सूझता।

सज्जन सिंह सचमुच ही उस मुकाम पर पहुंच गया था, जहां समझ काम नहीं करती। उनके घर में कई दिनों तक विचार-विमर्श होता रहा। आधी-आधी रात तक वे दोनों प्राणी सोच में डूबे जागते रहते। भजन कौर ज्यादा दोष अपने आपको देती, जिसने कभी उधार भैंस ले आने की जिद की थी। मगर अपने सिर या किसी दूसरे के सिर दोष मढ़ने से कर्ज तो उतर नहीं सकता था। आखिर एक महीने के बखेड़े के बाद सज्जन सिंह और

धन्ने शाह के बीच समझौता हो गया। सज्जन सिंह ने कुएं वाली आठों बीघे बारह साल के लिए धन्ने शाह को मुस्ताजरी (पटे) के तौर पर लिख दी, जिसका अर्थ था कि अपने कर्ज में धन्ने शाह बारह साल के लिए उस जमीन की आमदनी खाता रहे। सज्जन सिंह ने सोचा—चलो, बारह साल बाद तो जमीन बिना पैसे दिए अपनी हो जाएगी। कर्ज तो नहीं चुकाना पड़ेगा। पट्टा एक तरह का ठेका ही है न। समझ लेंगे, ठेका पहले ले लिया और हमने किसी भाई के हिस्से पर जोत ली है।

मुस्ताजरी पट्टा लिखा गया। कुएं के सोलह बीघे में से चौदह का मालिक धन्ने शाह बन गया। और असली मालिक सज्जन सिंह और इलमदीन बन गए धन्ने शाह के मुजारे—दूसरे के खेत में काम करनेवाले काश्तकार !

चौबीस

यूरोप पर बड़ी देर से युद्ध के बादल छाए हुए थे। आखिर लड़ाई शुरू हो गई। जर्मनी ने कुछ छोटे-छोटे पड़ोसी देशों पर हमला कर दिया। तीन सितंबर, 1939 को बरतानिया भी युद्ध में कूद पड़ा। लड़ाई एकदम गरम हो उठी। विद्वान नीतिवानों का विचार था कि यह जंग बहुत भयानक होगी। कांग्रेस जर्मनी के विरुद्ध अंगरेजों की मदद करना चाहती थी, मगर कुछ शर्तों पर, क्योंकि पहली यूरोपीय जंग में पूरी तरह मदद करने के बाद भी कांग्रेस को अंगरेजों की तरफ से निराश होना पड़ा था। इतना ही नहीं, सेवा के बदले इनाम के बजाय रॉलट एक्ट और मार्शल लॉ मिले थे। कांग्रेसी नेताओं ने बहुत सोच-विचार के बाद अंगरेजों से लोक-राज की मांग की। उन्होंने राय प्रकट की कि लोगों द्वारा चुनी गई सरकार पर जनता को ज्यादा भरोसा होगा। इस तरह हिंदुस्तान बरतानिया की ज्यादा मदद कर सकेगा।

अंगरेजों ने मौखिक रूप से ही भरोसा दिलाने का यत्न किया कि जंग खत्म होने के बाद जल्दी-से-जल्दी भारत को आजाद कर दिया जाएगा। पिछले तल्ख अनुभव के कारण कांग्रेस किसी भी मौखिक वादे पर विश्वास करने को तैयार नहीं थी। कांग्रेस ने दो मांगें रखीं : एक तो जंग के समय में ही, यानी इसी समय, अंतरिम राष्ट्रीय सरकार बनाकर राज-सत्ता उसके हाथ में दे दी जाए; दो—जंग खत्म होने के बाद पूर्ण आजादी के लिए तारीख निश्चित कर दी जाए। अंगरेजी सरकार दोनों बातों के लिए तैयार नहीं थी। वह मौखिक रूप से सब कुछ देती थी, लेकिन व्यावहारिक तौर पर कुछ भी नहीं। अंत में तंग आकर कांग्रेस ने मंत्रिपदों को छोड़ देने का फैसला कर लिया। उस समय मद्रास, यू.पी., मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा आदि सात प्रांतों में कांग्रेस के मंत्रिमंडल थे। उन सब

मंत्रिमंडलों ने अक्तूबर, नवंबर (1939) में इस्तीफे दे दिए।

उन दिनों सारी दुनिया का ध्यान यूरोप की जंग की तरफ लगा हुआ था। हर हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी कई साल से जंग की तैयारी कर रहा था। देखते ही देखते उसने छोटे-छोटे कई पड़ोसी देशों को फतेह कर लिया। बरतानिया और फ्रांस बहुत भयभीत हो गए थे। हिंदुस्तान में भी हर जगह इसी जंग की चर्चा थी। साधारण जनता डर के मारे मुंह से कुछ नहीं कहती थी, मगर अंगरेजों के साथ हमदर्दी किसी को भी नहीं थीं। जर्मनी की जीत के बारे में सुन-सुनकर लोग बहुत खुश होते थे। जहां चार लोग जुड़ते, वहीं यही बातें। एक आदमी शहर से कोई अफवाह सुनकर आता, तो गांव के सारे लोग बारी-बारी से वही-वही बात पूछते। शहर गया कोई अधपढ़ गांववासी पंजाबी का अखबार ले आता, तो लोग उसे तब तक बार-बार सुनते रहते, जब तक कोई नया अखबार न आ जाता। "आज जर्मन लोगों ने फलां मुल्क पर कब्जा कर लिया है। आज उन्होंने दुश्मन के इतने जहाज गिरा दिए हैं। आज फलां मोर्चे से अंगरेजों को भागना पड़ा है...' इस तरह की खबरें लोग बड़ी दिलचस्पी से सुनते थे। इसका यह अर्थ नहीं कि हिंदुस्तानियों को जर्मनों से बहुत मुहब्बत थी, या वे यह चाहते थे कि जर्मन हमारे मुल्क पर कब्जा कर लें, दरअसल भारतवासियों को अंगरेजों से अथाह घृणा हो चुकी थी। यहां की जनता चाहती थी कि अंगरेज कमजोर होकर निकल जाएं। इसीलिए लोग यूरोप की जंग में अंगरेजों की हार के बारे में सोचते थे।

इन्हीं दिनों एक और घटना हो गई, जिससे सारे हिंदुस्तान में खुशी की लहर दौड़ गई। 1919 में पंजाब का गवर्नर सर माइकल ओ'डायर हुआ करता था। सही मामलों में उसी को जलियांवाला बाग के शहीदों का कातिल माना जाता है, क्योंकि सब कुछ उसके इशारे पर हुआ था। हिंदुस्तानियों के सीने में वह कांटे की तरह खटकता था। 13 मार्च, 1940 की घटना है। इंडिया हाउस, लंडन में जलसा हो रहा था। ओ'डायर हिंदुस्तान के बारे में तकरीर कर रहा था। एक तरफ की गैलरी में सुनाम का शेर ऊधम सिंह बैठा था। मौका देखकर उसने उठकर पिस्तौल से गोलियां चलाना शुरू कर दिया। निशाना सही बैठा। ओ'डायर गिरा और वहीं ढेर हो गया। ऊधम सिंह ने भागने का कोई प्रयास नहीं किया। बल्कि उसने बांह ऊंची करके ललकारते हुए कहा— "जलियांवाला बाग के शहीदों का बदला ले लिया गया है। मैंने जो प्रण किया था, उसमें मैं कामयाब हो गया हूं।"

ऊधम सिंह गिरफ्तार हो गया। विलायत में उसने अपना नाम राम मोहम्मद सिंह रखा हुआ था। मगर मुकदमे में उसने अपना सही नाम बता दिया। आखिर 13 जून, 1940 को ऊधम सिंह को फांसी देकर शहीद कर दिया गया।

शहीद ऊधम सिंह का जन्म 13 पौष संवत् 1957 (दिसंबर, 1901) को सुनाम के एक गरीब, सिंह परिवार में हुआ था। जब वह बहुत छोटा था कि उसकी माता का स्वर्गवास हो गया। उसके पिता सरदार काबल सिंह सुनाम छोड़कर अमृतसर आ गए। वे मेहनत-मजूरी

करके बच्चे का पालन कर रहे थे कि निर्दयी मौत ने उन्हें भी बच्चे से छीन लिया। पीछे रह गया अकेला और बेसहारा बालक ऊधम सिंह। किसी पड़ोसी ने तरस खाकर उसे यतीमखाने में भरती करवा दिया।

ऊधम सिंह यतीमखाने में ही पलकर जवान हुआ। वहीं उसने कुछ विद्या प्राप्त की।

13 अप्रैल, 1919 को, बैसाखी के दिन, जलियांवाला बाग का नृशंस हत्याकांड हुआ। सैकड़ों लोग गोलियों से दानों की तरह भून दिए गए। वहां घायल हुए लोगों में से अनेक को यतीमखाने पहुंचाया गया। अन्य बच्चों के साथ ऊधम सिंह भी वहां घायलों की मरहम-पट्टी करवाता रहा। घायलों के जख्मों को वह अपने हाथों धोता, मगर अठारह साल के उस यतीम युवक के दिल पर गहरे जख्म होते जाते। उसने मन-ही-मन प्रण कर लिया कि इस जुल्म का बदला जरूर लेगा।

यतीमखाने में उसने अच्छी विद्या प्राप्त कर ली। फिर वह किसी तरह अमरीका चला गया। आजाद देश में पहुंचकर उसका इरादा और मजबूत हो गया। हिंदुस्तान में नौजवान भारत सभा बनी, तो ऊधम सिंह ने भगत सिंह के साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। भगत सिंह की प्रेरणा से ऊधम सिंह वापस स्वदेश आ गया। यहां आते ही वह कौमी काम में जुट गया। अंगरेजी सरकार की तरफ से उसे चार साल की सजा हुई। जेल में उसका मन और भी पक्का हो गया। कैद काटकर बाहर आते ही वह विलायत के लिए चल पड़ा। इस बार उसने राम मोहम्मद सिंह के नाम से पासपोर्ट बनवाया। 1933 में वह लंडन पहुंच गया। वहां उसने इंजीनियरिंग की पढ़ाई शुरू कर दी। सही अर्थों में विलायत में रहने का यह एक बहाना ही था। सात साल के इंतजार के बाद वह अपने मनोरथ में सफल हुआ। ओ'डायर की हत्या करके उसने साबित कर दिया कि हिंदुस्तानी बदला लेना जानते हैं।

ओ'डायर की हत्या की ख़बर भारत के सभी अखबारों ने मोटी सुर्खियां देकर प्रकाशित की। अखबारों के सिर पर अंगरेजी सरकार के काले कानूनों की तलवार लटक रही थी। वे खुलकर अपने दिल की बात नहीं कह सकते थे। फिर भी उन्होंने ओ'डायर और ऊधम सिंह के बारे में बहुत कुछ लिख दिया, भले ही उनकी भाषा बड़ी नरम और संकोच भरी थी। यही हाल भारत की जनता का था। लोग ऊंचे स्वर में कुछ नहीं कह पाते थे, मगर उनके मन में खुशी समा नहीं रही थी। वे महसूस करते थे कि हिंदुस्तान ने एक कौमी कर्ज उतार दिया है।

बाबा अकाली कसूर गया तो वहां से एक अखबार ले आया। आते समय सारे रास्ते वह उसी का पाठ करता रहा। ओ'डायर की मौत की खबर पढ़कर वह बहुत खुश था—बल्कि यह कहना चाहिए कि खुशी उसके अंदर समा नहीं रही थी। गांव पहुंचकर वह घर नहीं गया। वह सीधा शहतूतोंवाले कुएं की ओर हो लिया। उस समय दोपहर ढल रही थी। दोनों तख्तपोशों पर बैठे कुछ लोग ताश खेल रहे थे।

बाबा अकाली एक मुद्दत के बाद शहतूतोंवाले कुएं पर आया था। उसने दूर से ही

अखबारवाला हाथ ऊंचा करके शोर मचाना शुरू कर दिया—"सुनो ओए ! तुम्हारे लिए एक खुशखबरी लाया हूं। आज इकट्ठे होकर नाचो, भंगड़ा करो, ओए ! हिंदुस्तान जाग उठा है, जाग उठा है। हमने जलियांवाले का बदला ले लिया है। आओ, सुनो !'

दोनों तख्तपोशों पर बैठे ताश के खिलाड़ी हैरान होकर बाबा अकाली की तरफ देखे जा रहे थे। किसी को भी बाबा की बात समझ नहीं आ रही थी। इस बीच वह पुराने तख्तपोश के पास पहुंच गया।

"आओ ओए ! यहां पुराने तख्तपोश पर इकट्ठे हो जाओ। नालायको, क्यों अलग-अलग हुए बैठे हो ! यह सज्जन सूंह का तख्तपोश नहीं है। यह सिर्फ सिखों का भी नहीं है। यह चंदा सूंह और चरागदीन का तख्तपोश है। यह दो मित्रों के याराने की निशानी है! आ जाओ यहां। इलमदीन नहीं है ?...अच्छा ?...होता, तो मैं उसे भी गर्दन से पकड़कर घसीट लाता। ओए, जलियांवाले में हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों सबका इकट्ठा खून बहा था। उनकी कुरबानी के सदके आज सारे इकट्ठे हो जाओ। देखो, सुनो, भारत के एक लाल ने उन शहीदों का बदला ले लिया है। आओ, मैं सुनाता हूं।"

एक-दूसरे का मुंह देखते सारे मुसलमान धीरे-धीरे नया तख्तपोश छोड़कर पुराने पर आ बैठे। बाबा अकाली का प्रभाव ही कुछ ऐसा था। बाबा अकाली भी एक कोने में तख्तपोश पर सज गया।

"अब सुनो। देखो, तुम सब भाइयों की तरह बैठे कितने अच्छे लगते हो।" बाबा अकाली के झुर्रियों से भरे चेहरे पर प्रसन्नता की लाली झलक रही थी।

"अब कुछ सुनाओगे भी !' दीपे ने उतावलेपन से कहा।

"सुनो, सुनो। याद है, जब जलियांवाला में गोली चली थी, तब पंजाब का लाट कौन था ?... सर माइकल ओ'डायर। शहीदों का असली कातिल वही था, वही। यह देखो, मेरे हाथ में आज का अखबार है"—बाबा अकाली ने हाथ आगे बढ़ाकर सबको अखबार दिखाते हुए कहा।

"अब हमें क्या पता कि इस पर क्या ऊ-आ लिखा हुआ है ! अब सीधी बात बता।" दीपे ने एक तरह से सबकी बात कही।

"लंदन के इंडिया हाउस में ओ'डायर तकरीर कर रहा था। तकरीर क्या, बकबक कर रहा था। वही, मैंने हिंदुस्तान में यह किया, वह किया। मुझे अब भी वहां भेजा जाए, तो मैं डंडे के जोर से सबको सीधा कर सकता हूं...। पास ही गैलरी में बैठा था पंजाब का एक शेर। उसका खून खौल उठा। उसने खड़े होकर पिस्तौल सीधी कर दी। धांय धांय !' जोश में बाबा अकाली की दाहिनी भुजा लंबी हो गई। "उधर पिस्तौल खाली हो गई और इधर ओ'डायर औंधा जा गिरा। गिरते ही उसके प्राण हवा हो गए।"

"गिरते ही जान निकल गई होगी।" दीपे के शब्दों में व्यंग्य का पुट था।

तमाम चेहरों पर उस समय खुशी की मुस्कराहट फैली हुई थी।

"...और जानते हो, बदला लेनेवाले उस सूरमा का नाम क्या था ?' बाबा अकाली ने प्रश्न भरी नजरों से सबकी तरफ देखा। "राम मोहम्मद सिंह। न वह अकाली, न वह मुस्लिमलीगी, न वह हिंदूमहासभाई। वह था तीनों मजहबों का साझा राम मोहम्मद सिंह। अखबारवाला नीचे लिखता है ..."—बाबा अकाली ने अखबार पर निगाह डालते हुए कहा, "जज के सामने उसने अपना असली नाम ऊधम सिंह और इलाका सुनाम प्रकट कर दिया। मैं सारी छानबीन करके आया हूं। असल में वह बब्बरों में से है, बब्बरों में से !'

"बब्बर कौन थे ?' उमरदीन ने ज्यादा जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से पूछ लिया।

"तुम लोग नहीं जानते ? लो सुनो। असल में गदर आंदोलन के बाद बब्बर आंदोलन ही चला था, जिसका मकसद हथियारों के जरिए अंगरेजों को यहां से निकाल बाहर करना था। पर अफसोस, वह हमारे मुल्क में न फैल सका। दोआबे में उन्नीस सौ बाईस-तेईस में उसका बड़ा जोर रहा है। उस आंदोलन का अगुआ था जत्थेदार किशन सिंह गड़गज्ज, गांव बड़िंग, जिला जालंधर। वह तीस-बत्तीस साल का बड़ा ऊंचा-लम्बा जवान था।"

"इस तरह के काम जवानों के ही हो सकते हैं"— सुनने वालों में से किसी का सहमति भरा स्वर उभरा।

"किशन सिंह पैंतीस नंबर सिख पलटन में हवलदार मेजर हुआ करता था। सन् पंद्रह में जब हमने गदर का प्रोग्राम बनाया था, तब वह पलटन रावलपिंडी में थी। उस पलटन का भी हमारे साथ गदर में शामिल होने का वादा था। हवलदार मेजर किशन सिंह की भाई रणधीर सिंह के साथ सीधी चिट्ठी-पत्री आई थी। गदर का प्रोग्राम फेल हो गया। हमारे फौजी साथी उदास हो गए। फिर जलियांवाला कांड हुआ, तो किशन सिंह का जोश बेकाबू हो गया। उसने पलटन के अंदर ही अंगरेजों के विरुद्ध प्रचार शुरू कर दिया। अफसरों ने कोर्ट मार्शल करके किशन सिंह को अट्ठाईस दिनों की कैद सुना दी। उधर से छुटकारा पाकर किशन सिंह अकाली दल में शामिल हो गया। कुछ समय तक वह अकाली दल का सेक्रेटरी भी रहा। पर अकाली दल का प्रोग्राम शांतिमय था। सो, किशन सिंह का मन वहां रमा नहीं। अकाली दल छोड़कर उसने अपना नया जत्था बना लिया (नवंबर, 1921)। पहले उसने अपने जत्थे का नाम चक्रवर्ती रखा, पर बाद में बब्बर अकाली जत्था दोआबा प्रसिद्ध हो गया। जत्थे के बाकायादा चुनाव हुए, तो जत्थेदार बना किशन सिंह गड़गज्ज, दलीप सिंह गोसल सेक्रेटरी और बाबू संता सिंह खजांची। करम सिंह दौलतपुर, करम सिंह झिंगड़ और उदे सिंह सरगरम मेंबर बने। मास्टर मोता सिंह भी तब जत्थे में हुआ करता था।"

"जत्थे में आदमी तो खासे अच्छे थे"—टहल सिंह ने यों ही वार्तालाप को जारी रखने के लिए कहा।

"मैं तो कहता हूं, दो बरस तक उन्होंने दोआबे में एक किसम का अपना राज ही कायम किए रखा !' बाबा अकाली ने टहल सिंह की तरफ देखते हुए कहा— "उन्होंने

अपना अखबार भी निकाल लिया था। एक छोटी-सी मशीन होती है, साइक्लोस्टाइल। एक तरह का हथ-छापा ही समझ लो। घरों में कपास बेलनेवाले बेलन जितनी ही होती है मुश्किल से। जब चाहो, बगल में दबाकर कहीं भी ले जाओ...।"

"गोद का छापाखाना हुआ न।" दीपा भी अपनी राय देने से नहीं रह सका।

"ऐसा ही समझ लो। छापेखाने का नाम रखा उन्होंने उडारू प्रेस... और...।"

"ठीक है, इस गांव से उड़ान भरी और अगले गांव"—दीपे ने फिर टोटका झाड़ा।

"...और अखबार का नाम था 'बब्बर अकाली, दोआबा'। जो कुछ उन्हें करना होता, वो पहले ही अखबार में छाप देते। वो अपने प्रचार में एक ही बात पर ज्यादा जोर देते कि सारे देश-भाई मिलकर, हथियारबंद विद्रोह करके, अंगरेजों को देश से निकाल दो। उनका विश्वास था कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते।"

"हत्थां वाझ करारिया वैरी मित्र न हो"—पास से टहल सिंह ने एक प्रसिद्ध लोकोक्ति दोहराई।

"वो सारे गांवों में घूमते हुए खुल्लमखुल्ला सरकार के खिलाफ प्रचार करते। कहीं कोई सम्मेलन होता, तो वो खुद ही वहां पहुंचकर गर्जना करने लगते। अपनी रक्षा के लिए उन्होंने पेशावर की तरफ से पिस्तौल आदि हथियार भी मंगवा लिए थे। बिना हथियार रहने का तो उनका उसूल ही नहीं था। सबसे अच्छा बोलनेवाला था जत्था सिंह गड़गज्ज। वह नंगी तलवार कंधे पर रखकर स्टेज पर खड़ा हो जाता। सबसे पहले वह दसवें पातशाह का सवैया 'खग खंड बिहंड...' पढ़ता। फिर वह बड़े रौब के साथ ललकारकर कहता—सुनो रे पुलिसवालो ! जरा कान खोलकर सुन लो। मैं हूं जत्थेदार किशन सिंह गड़गज्ज बब्बर अकाली। जिसे मुझको गिरफ्तार करना हो, वह जरा तगड़ा होकर आए। मैंने यह तीन-फुटी सिर्फ माथा टेकने के लिए नहीं रखी हुई है—हां।"

"मजा आ गया न !"

"... फिर वह अपना लेक्चर शुरू कर देता। बड़ा जोश और असर था उसकी जबान में। सुननेवालों के रोंगटे खड़े हो जाते। उस समय तो ऐसा लगता था, जैसे इसी वक्त सारे लोग उठकर सरकार के विरुद्ध लड़ने के लिए चल पड़ेंगे। मगर बे-हथियार मुल्क क्या कर सकता था ? दसवें पातशाह ने ठीक कहा था कि बिना शस्त्र आदमी भेड़-समान होता है। बब्बरों के प्रचार का असर यह हुआ कि कई दिल—गुरदेवाले सूरमा उनसे जा मिले। सरकार को बड़ी चिंता होने लगी। अफसरों ने लगभग सभी बब्बरों के वारंट जारी कर दिए (मार्च 1922)। अब पुलिस उनके पीछे-पीछे घूमने लगी। बब्बरों ने फैसला कर लिया कि जहां तक हो सके, चुपचाप पुलिस के हाथों में नहीं आना है। जहां तक बस चले उठकर मुकाबला करना है।...और सबसे पहला टकराव हुआ सूंढ गांव में (11 मई, 1922)। जत्थेदार किशन सिंह और भाई सुंदर सिंह सूंढवाले अर्जुन सिंह के घर से खाना खाकर जरा अंधेरा हो जाने पर निकले। अर्जुन सिंह उन्हें विदा करने साथ गया। वो अभी

गांव से निकले ही थे कि पीछे से पुलिसवाले गांव के लोगों को लेकर पीछे लग गए। अकाली होने के कारण अर्जुन सिंह के वारंट निकले हुए थे। जत्थेदार ने नजदीक आई भीड़ से ललकारकर कहा—खड़े रहो। रुककर बात करो। मैं किशन सिंह गड़गज्ज हूं। जो भी आगे आया, मैं कोई लिहाज नहीं करूंगा।" गांववाले डरकर वहीं रुक गए। उन्होंने कहा, हम तो सिर्फ अपने गांव वाले अकाली अर्जुन सूंह को लेने आए हैं। आपके साथ हमारा कोई वास्ता नहीं है। अर्जुन सिंह ने जत्थेदार से कहा—मेरे मामूली वारंट हैं। कहो तो मैं गिरफ्तार हो जाऊं। जत्थेदार की सलाह से अर्जुन सिंह वापस चल पड़ा। उसे पुलिस ने हथकड़ी लगा ली। इस बीच जत्थेदार और सुंदर सिंह खासा दूर निकल गए। बाद में पुलिस ने गांववालों से कहा कि अगर तुम बब्बरों को पकड़ लो, तो तुम्हें सरकार की तरफ से इनाम मिलेगा, वरना बब्बरों को पनाह देने के जुर्म में तुम्हें सजा होगी। कुछ लालच और कुछ धमकी में आकर गांव वाले जत्थेदार के पीछे पड़ गए। बब्बर भी जवाब में डटकर खड़े हो गए। जत्थेदार के पास पिस्तौल थी और सुंदर सिंह के पास कृपाण। मुठभेड़ के दौरान अंधेरे में सुंदर सिंह खेत की मेड़ से फिसल कर गिर पड़ा और जत्थेदार गोलियां चलाते हुए निकल गया। गिरे पड़े सुंदर सिंह पर अंधाधुंध लाठियां बरसाई—इतनी लाठियां कि जलंधर अस्पताल में चौथे दिन उसे होश आया। इस समय सब तरफ खबर फैल गई कि सुंदर सिंह मर गया है। बंगा के थानेदार को एक और चाल सूझी। यह तो तुम जानते ही हो, पुलिसवाले किस तरह के होते हैं।"

"अरे, निरे शैतान की टौंटी !'

"थानेदार ने गांववालों को इकट्ठा करके कहा कि जिन लोगों ने सुंदर सिंह को पकड़ा है, वो अपना नाम लिखवाएं। सरकार इनाम देना चाहती है। शेखी में आकर बीस आदमियों ने नाम लिखवा दिए। उन बीस लोगों को थाने ले जाकर थानेदार ने धमकाया। बोला—जमानती लाओ, वरना अंदर कर दिए जाओगे। सुंदर सिंह मर गया है। तुम लोगों पर खून का मुकदमा चलेगा।"

" ले लिया मजा !'

"अरे, कुछ न पूछो। पांच-पांच सौ रुपए घूस देकर छूटे सब।"

"लो, ले लो इनाम तुम तो !' दीपे ने खुश होकर कहा।

"बाद में मुकदमे में सुंदर सिंह को डेढ़ साल और अर्जुन सिंह को छह महीने की कैद सुनाई गई। जिन बीस लोगों ने सुंदर सिंह को पकड़ने में नाम लिखवाए थे, उन्हें बाद में डी. सी. ने बुलवा भेजा। पहले दिन उनमें से डरते-डरते मुश्किल से छह आदमी गए। डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें एक-एक मुरब्बा और सौ-सौ रुपए इनाम दिया। अगले दिन बाकी के चौदह भी जा हाजिर हुए। डी. सी. ने कहा कि मुरब्बों का दिन तो कल ही था। अब तुम आए हो, तो सौ-सौ रुपया ले जाओ। तीनों नंबरदारों को भी सरकार ने कुछ टुकड़े डाल दिए—पंद्रह-पंद्रह रुपए सालाना जागीर लगा दी।"

"यों ही मुंह काला करवा लिया—बड़ी जागीर तो देखो।"

"... और वो मुरब्बोंवाले भी कौन-से छाती पर धरकर ले जाएंगे। भाइयों के साथ द्रोह करना कोई अच्छी बात है ?"

"आदमी भूखा मर जाए, पर कौम के साथ बुरा न करे।"

श्रोताओं में से अलग-अलग आवाजें आ रही थीं।

"खैर, बब्बरों की कहानी बहुत लंबी है। मैं तुम्हें कुछ मोटी-मोटी बातें बताता हूं।" खंखारकर गला साफ करते हुए बाबा अकाली ने फिर कहना शुरू कर दिया।

"अगले महीने (15 जून) मास्टर मोता सिंह अपने गांव पतारा में ही गिरफ्तार कर लिया गया। उसे भी एक सरकारी पिट्ठू ने ही पकड़वाया था। साल के अंत में (30 नवंबर, 1922) सरकार ने एक इश्तहार निकाला कि बब्बरों को पकड़वानेवालों को इनाम दिए जाएंगे। जत्थेदार किशन सिंह के लिए दो हजार और एडीटर करम सिंह दौलतपुरिये के लिए एक हजार। दो और बब्बरों—करम सिंह झिंगड़ और दलीप सिंह गोसल पर पांच-पांच सौ का इनाम रखा गया। इस लालच में आकर कई टोडी बब्बरों के दुश्मन बन गए।"

"टोडी बच्चा हाय-हाय !' दीपे ने स्यापा करनेवालों की तरह सीने पर हाथ मारते हुए तल्खी से कहा।

"करम सिंह को घर के किसी काम के लिए उसके भाई केहर सिंह ने बुलवा भेजा। दलीप सिंह गोसल को साथ लेकर करम सिंह अपने गांव झिंझड़ चला गया। रात को पुलिस आ गई। करम सिंह और दलीप सिंह पकड़े गए (14 जनवरी, 1923)। लोगों का खयाल है कि भाई ने ही करम सिंह को पकड़वाया था।"

"कोई बड़ी बात नहीं है भई। लालच बुरी बला है"—टहल सिंह ने अफसोस से सिर घुमाते हुए कहा।

"मुकदमे में करम सिंह को चार साल और दलीप सिंह को पांच साल की कैद सुनाई गई। उसके बाद वारी आई जत्थेदार किशन सिंह बड़िंग की। वही जत्थे का असली नेता था। उनके गांव का एक हकीम था—काबल सिंह हकीम। उसने यह कहकर जत्थेदार को विश्वास में ले लिया कि बब्बरों में से कोई जख्मी या बीमार हो जाए, तो उसका इलाज करके उसे खुशी होगी। इस तरह दोनों में निकटता आ गई। एक दिन कुछ आदमियों के साथ मेल-मिलाप का बहाना बनाकर काबल सिंह जत्थेदार को गांव पंडोरी माहल (जिला होशियारपुर) ले गया। रात को काबल सिंह ने, धोखे से, सोते हुए जत्थेदार के हथियार छुपा लिए। सुबह पुलिस आ गई (26 जनवरी, 1923)। निहत्था होने के कारण जत्थेदार जी मुकाबला नहीं कर सके और पकड़े गए। इसी तरह टोडियों ने कुछ और बब्बर भी धोखे से पकड़वा दिए।"

"और बब्बरों ने उन पिट्ठुओं को ठिकाने नहीं लगाया ?" चुगलखोरों के बारे में सुनते-सुनते दीपे को गुस्सा सा आ गया।

"कोई एक ? बब्बरों ने कई चुगलखोरों को मारा।" बाबा अकाली ने बड़े ज़ोश से बताया। "जैलदार बिशन सिंह राणी थूआ, बूटा नंबरदार (नंगल शामा), ज्वाला सिंह (कोटली बावा दास), मिस्त्री लाभ सिंह (गढ़ शंकर), नंबरदार हजारा सिंह थहबलपुर, सूबेदार गेंदा सिंह (घुड़िआल), पटवारी अता मुहम्मद...अब कितने लोगों के नाम गिनाऊं ? चलो छोड़ो, उन देशद्रोहियों का नाम क्या लेना। तुम लोग सूरमाओं की बातें सुनो। इस आंदोलन का सबसे मशहूर कांड बुथेली का है। गांव माणको का एक अनूप सिंह हुआ करता था। वह तीन-फुटी कृपाण रखने के कारण छह महीनों के लिए कैद हो गया। मिंटगुमरी जेल में उसकी मुलाकात भाई सुंदर सिंह बब्बर से हुई। बाहर आकर अनूप सिंह बब्बरों में शामिल हो गया। बाद में घरवालों के भरमाने पर अनूप सिंह बेईमान हो गया। उसने पुलिस से सांठ-गांठ कर ली और कहा कि बब्बरों को पकड़वा देगा।"

"मन डोल गया।"

"एडीटर करम सिंह दौलतपुरिया, उदे सिंह (रामगढ़, झुग्गियां), बिशन सिंह मांगट और महिंदर सिंह (पंडोरी गंगा सिंह) शाम के वक्त डुमेली गांव से बुथेली की तरफ चले। अनूप सिंह उनके साथ था। गांव के बाहर पहुंचने पर उसने एडीटर से कहा कि यहां मेरी मौसी बीमार है, एक मिनट उससे मिल आऊं। इस बहाने उसने अपनी मौसी के बेटे को भगाया कि उसके चाचा को संदेसा पहुंचाए और वह रातो-रात पुलिस को लेकर बुथेली पहुंच जाए। अपना वार करके वह फिर बब्बरों में आ मिला। पांचों जन रात को बुथेली में जाकर सोए। रात को अनूप सिंह ने सोते हुए बब्बरों के कुछ हथियार उठा लिए, और बमों में तेल डालकर उन्हें खराब कर दिया। सिर्फ एडीटर के पास एक बंदूक रह गई और कुल मिला कर दो-चार गोलियां, जो उसकी जेब में थीं। सुबह होने तक पुलिस कप्तान स्मिथ ने फौज और पुलिस के दो हजार जवानों के साथ गांव को घेर लिया। अनूप सिंह खुद ही पुलिस के पास जाकर झूठमूठ गिरफ्तार हो गया। बब्बरों ने देखा कि उनके हथियार धोखे से छुपा लिए गए हैं। फिर भी उन्होंने हौसला नहीं हारा। वो गांव से निकलकर सातवीं पातशाही के गुरुद्वारे की तरफ चल पड़े। गुरुद्वारा गांव के बाहर है, काफी फासले पर, और उसके इर्द-गिर्द एक गहरा नाला बहता है। स्मिथ ने दूर से आवाज लगाते हुए करम सिंह से कहा—देखो करम सिंह। मुकाबला करने का कोई फायदा नहीं है। हमारे पास दो हजार जवान हैं। और तुम बे-हथियार हो। गिरफ्तार हो जाओ।" जवाब में करम सिंह ने गरजकर कहा—ओए बिल्ले! हमारे पास हथियार होते तो तेरे दो हजार सूरमा भी टिक न पाते। हमारे पास हथियार नहीं हैं, तो क्या हुआ ? हम जीते-जी तेरे वश में आने की जगह सूरमाओं की तरह लड़कर शहीद होंगे।...ललकार देते हुए शेर नाले के किनारे के पास जा पहुंचे। असल में स्मिथ का इरादा बब्बरों को जिंदा पकड़ने का था। पुलिस ने चारों तरफ से पूरा घेरा डाल लिया था। पर वह आगे बढ़कर लड़ नहीं रही थी। बब्बरों ने भरे हुए नाले में छलांग लगा दी। तब स्मिथ ने गोली चलाने का हुक्म दिया। चारों तरफ

से गोलियों की बारिश होने लगी। उदे सिंह और महिंदर सिंह नाले के बीच में ही गोलियों से छलनी हो कर शहीद हो गए। करम सिंह कई घाव खा कर भी पार जा पहुंचा। तब उसने दो-तीन गोलियां, जो उसके पास बच रही थीं, दुश्मन पर चला दीं। जवाब में दुश्मन ने फिर गोलियों की बौछार की और करम सिंह शहीद हो गया। बिशन सिंह जख्मी होते हुए भी घिसटते-गिरते गुरुद्वारे की दूसरी तरफ के सरकंडों में जा गिरा। पुलिस ने ढूंढ़-ढांढ़कर वहां जा शहीद किया। चारों शहीद हो गए, पर वो जिंदा रहते दुश्मन के हाथ नहीं आए। (पहली सितंबर, 1923)।"

"वाह रे सूरमाओ !" दीपे ने शाबाशी देते हुए कहा। "बाबा अकाली ! मौत तो इसी तरह की अच्छी होती है। बाद में दुनिया याद तो करती है।"

"मैं कहूं, सूरमाओं ने भी तो हद ही कर दी। अभी धन्ना सिंह की बहादुरी सुनो।"

"हां-हां, वह भी सुना दे लगे हाथ।"

श्रोता बाकी बात सुनने को भी उत्सुक थे।

"धन्ना सिंह को ज्वाला सिंह ने पकड़वाया था। धन्ना सिंह बहबलपुर, जिला होशियारपुर का था।"

"और ज्वालासिंह कहां का था ?"

"वह शायद...हां.. शायद जिआण का था। ऊपर-ऊपर से वह बब्बरों की बड़ी सेवा करता था। एक दिन धन्ना सिंह को अपने खेत में भोजन करवाकर ज्वाला सिंह रात को उसे मंठनहाण ले गया। वहां वो, मेरा खयाल है... हां...करम सिंह की हवेली में सोए। रात को करम सिंह ने सोते हुए धन्ना सिंह की पिस्तौल उठा ली। ऊपर से पुलिस आ गई। उन्होंने सोते हुए धन्ना सिंह को जा पकड़ा (25 अक्तूबर, 1923)। उसे हथकड़ी लगा ली। फिर पुलिस के अंगरेज अफसर हॉर्टन और जेन्किंज नजदीक आए। हॉर्टन ने ताना मारते हुए कहा—वेल, ढन्ना सिंग, टुम टो बोलटा था, हम जिंदा नईं पकरा जाएगा। डो-चार को साथ लेकर मरेगा। अब बटाओ।—आगे से धन्ना सिंह ने गरजकर कहा—ओए बिल्ले। यह बात है ? तो यह ले फिर।... धन्ना सिंह की 'डब' में एक बम था। उसने सीधे हाथ जरा-सा झुककर उस पर जोर से कुहनी मारी। इतनी-सी ठोकर से ही बम फट गया। धन्ना सिंह खुद शहीद हो गया, लेकिन कई लोगों को अपने साथ लेकर—पास खड़ा एक हवलदार, एक दफेदार और तीन सिपाही वहीं मर गए। एक सिपाही और थानेदार माहलपुर जाकर मरे। हॉर्टन अस्पताल पहुंचकर मरा। और जेन्किंज इन जख्मों के कारण शायद कलकत्ता जाकर मरा।"

"मजा आया न ! सूरमा ने जो बात मुंह से निकाली थी, पूरी करके दिखा दी।" दीपे ने बड़ी जीत महसूस करते हुए कहा। फिर पूछा, "और ज्वाला सिंह का क्या हुआ ?"

"उसका तो पता नहीं, पर उसके साथी करम सिंह को बब्बरों ने पार लगा दिया। एक वही नहीं, बुथेली का हादसा करवानेवाले अनूप सिंह को भी बाद में खतम कर दिया

गया।" बावा अकाली ने बड़े अभिमान से सबकी तरफ देखा, जैसे वह इस काम को बहुत प्रशंसा-योग्य समझता था।

"मगर ओ'डायर को विलायत में मारनेवाले शेर ऊधम सिंह की बात तो बीच में ही रह गई"—उमरदीन बोल उठा।

"बब्बर लहर के बड़े लीडरों में से एक बाबू संता सिंह जिला लुधियाना (गांव छोटी हरिओं, तहसील समराला) का था। बाद में उसे भी एक पिट्ठू ने पकड़वा दिया था (19 जून, 1923)। उसके उद्यम से मालवा में भी जत्थे के कई मेंबर बन गए थे। उन्होंने ही बी. टी. को मारा था। और उन्हीं में से एक ऊधम सिंह था।"

"अच्छा, बाबा। एक और बात बता। जो बब्बर पकड़े गए थे, उन पर कैसी बीती ?" सज्जन सिंह ने सवाल किया। वह जाने कब से इसके बारे में सोच रहा था।

"उनमें से जत्थेदार किशन सिंह (बड़िंग), बाबू संता सिंह (छोटी हरिओं) और चार बब्बरों—करम सिंह माणको, नंद सिंह घुड़ियाल, दलीप सिंह धामियां और धरम सिंह हयातपुर—को फांसी देकर शहीद किया गया (27 फरवरी 1923), बाकी के कुछ लोगों को उमरकैद, अनेक को सात-सात या पांच-पांच साल की कैद हुई।"

"वाह भाई बाबा अकाली। खुश कर दिया तूने आज तो। बस, आनंद आ गया।" दीपे ने तारीफ करते हुए कहा।

"और तुम लोगों ने ? दो तख्तपोश बिछाकर कम खुश किया है ?" बाबा अकाली ने सबकी तरफ घूरते हुए कहा। "देखो ओए ! तुम सब एक हो जाओ। एक बाबा यात्री की औलाद हो सब, अलग-अलग मत रहो। यह मुझे अच्छा नहीं लगता। और, मैं तो जेल की तैयारी किए बैठा हूं। बस, मोर्चा लगा ही समझो।

"लगने दे मोर्चा। बहुतेरी फौजें तैयार हो जाएंगी"—टहल सिंह की आवाज आई। और वह अंगोछा झाड़ते हुए तख्तपोश से उठा खड़ा हुआ।

पच्चीस

"पढ़ो, पढ़ो, आज का अखबार पढ़ो। फ्रांस ने हथियार डाल दिए हैं (14 जून, 1940)। अब जर्मन अगला हमला अंगरेजों पर करेंगे"—बाबा अकाली ने पास बैठे लोगों की तरफ अखबार बढ़ाते हुए कहा। वह गुरुद्वारे के तख्तपोश पर बैठा अखबार पढ़ रहा था, जो आज दोपहर बिशन दास बनिया कसूर से लाया था।

"बाबा अकाली। हम पढ़ने लायक होते तो तेरा मुंह क्यों जोहते रहते ?" दीपे ने मुस्कराते हुए कहा— "बता, क्या कहता है अखबारवाला ?"

"ओहो। मैंने समझा, कहीं...।" बाबा अकाली अपनी गलती को समझकर खामोश हो गया।

"...स्कूल में बैठा है ?" दीपे ने बाबा के अधूरे छोड़े वाक्य को पूरा कर दिया।

"नहीं, मेरा ध्यान कहीं दूर चला गया था। चलो, छोड़ो इस बात को। अखबारवाला बताता है—" बाबा अकाली ने अखबार को फिर आंखों के पास कर लिया। "तुम लोगों ने अफवाहें सुनी थीं न कि हिटलर कहता है, मुझे फलां दिन पेरिस में चाय पीनी है। सो वह बात लगभग सच हो गई। फ्रांस ने हथियार डाल दिए हैं। अंगरेजों का एक बड़ा साथी हार गया। अब यह धड़ा बहुत ही कमजोर हो गया समझो।"

"अच्छा, हिटलर नंदण* किस दिन के लिए कहता है, चाय पीऊंगा ? हमारा मन तो उस दिन खुश होगा"—मिलखा सिंह ने थोड़ा-सा आगे झुकते हुए कहा।

"लंदन, कुछ कहा नहीं जा सकता"—बाबा अकाली ने न में सिर हिलाकर कहा— "अंगरेज बड़े चालाक नीतिज्ञ हैं। और आजकल की लड़ाइयां ताकत की नहीं, हेरा-फेरी की हैं।"

"पर इस बार कोई हेरा-फेरी नहीं चल पाएगी, तू भी देख लेना"—चंदा सिंह ने आवाज पर जोर देते हुए कहा। "हिटलर के टैंक भी, सुना है दस मील तक आग बरसाते चलते हैं। जहां से गुजर जाएं, बस, सब कुछ स्वाहा।"

"ठीक है, उसके पास बड़े खतरनाक हथियार बताए जाते हैं। पर फिर भी...।"

"फिर भी काहे की ? इस बार अंगरेजों वाला लेखा साफ समझो।" बाबा अकाली की बात को बीच में टोककर चंदा सिंह बोल उठा।

"बकरे की मां कब तक खैर मनाएगी ? आखिर एक दिन तो हिसाब देना ही पड़ेगा।" दीपे के खयाल से अंगरेजों के किए गुनाहों के हिसाब का समय आ पहुंचा था।

"भई, जरा ठंडे दिल से सोचो। हिटलर जीत गया, तो हमें क्या मिलेगा ?" बाबा अकाली ने सबकी तरफ झांकते हुए कहा।

"और अंगरेज जीत गए, तब क्या मिलेगा ?" चंदा सिंह ने उलटे सवाल किया।

"वो क्या कहते हैं—रौलट एक्ट और मार्शला !" दीपे ने व्यंग्य से कहा— "क्या हम पिछली लड़ाई भूल गए हैं ?"

"भले लोगो ! हम अंगरेज से खुश नहीं हैं। न ही जर्मनों से खुश हैं। हिटलर कौन-सा अच्छा है, जिसने सारी दुनिया को मुसीबत में डाल दिया है। मेरा मतलब...।"

"और ये बिल्ले अच्छे हैं ?" बाबा की पूरी बात सुने बगैर ही चंदा सिंह बोल उठा। वह कुछ ज्यादा ही जोश में लग रहा था— "ऊंची सांस तक नहीं लेने देते किसी को। जरा-सा किसी ने खांसा नहीं कि पकड़कर अंदर धकेला।"

"मैं बताऊं—पांच-सात दिन पहले की बात है, कोई गांववाला अपनी बैलगाड़ी लाहौर

---

* लंडन

की तरफ लिए जा रहा था। मियां मीरवाली नहर के पुल की चढ़ाई चढ़ते वक्त उसने बैलों को ललकार मारी। बोला—चढ़ जाओ छेरो (शेरो), जैसे जर्मनों के हवाई जहाज चढ़ते हैं। पास ही कोई सी. आई. डी. का आदमी खड़ा था। उसने सुन लिया। उस जाट को पकड़कर उन्होंने डेढ़ साल की सजा ठोंक दी है"—मिलखा सिंह ने चंदा सिंह के समर्थन में कहा।

"और सुना है, गांधी अब भी कहे जाता है कि हमें अंगरेजों को परेशान नहीं करना है।" चंदा सिंह महात्मा गांधी पर भी नाराज था।

"परेशान नहीं करना है—अंगरेज मामा लगते हैं ?" दीपे ने घृणा से कहा।

"भई, तुम शांति से सुनो, तो पता चले न।"

"क्या सुनें ? हमें तो मार लिया इस नित्य की शांति ने।" चंदा सिंह ने नाक सिकोड़कर चेहरा एक तरफ घुमा लिया।

"पर भई, तुम बाबा अकाली को बात तो करने दो," पास बैठे टहल सिंह ने हाथ के इशारे से चंदा सिंह को रोकते हुए कहा— "कल को अंगरेजों को निकालने के लिए मोर्चा छिड़ा, तो बाबा अकाली को ही जाना है। हम सब तो घर से बाहर भी नहीं निकलेंगे"

"अच्छा, हम नहीं बोलते", चंदा सिंह बोला। किसी नए छिड़ने वाले मोर्चे में जाने की हामी भरने के लिए वह तैयार नहीं था।

"कभी-कभी हम जरूरत से ज्यादा होश में आ जाते हैं"— बाबा अकाली ने बड़े धैर्य से कहना शुरू किया— "इसका कारण : हम अंगरेजों से तंग आ चुके हैं। हम समझते हैं, अंगरेजों का कोई हक नहीं है हमारे मुल्क पर राज करने का। और हमारा ऐसा सोचना स्वाभाविक है। महात्मा तिलक ने कहा था—स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम सबके सब अंगरेज की गुलामी से छुटकारा पाना चाहते हैं। आज तक जितने राजनीतिक आंदोलन चले हैं, सबका मूल कारण यही है। सबसे पहले सतलुज के किनारे पर सिखों की लड़ाई हुई। आम लोगों और सिपाहियों के दिल में असली बात यहीं थी कि हमें अंगरेजों को हिंदुस्तान से निकाल बाहर करना है। सिपाही खुल्लमखुल्ला कहते थे कि हम दिल्ली को फतह कर लेंगे। दिल्ली फतह होने का अर्थ था सारे हिंदुस्तान का अंगरेजों के चंगुल से निकल जाना। खैर, 'घर का भेदी लंका ढाए' वाली बात हुई हमारे साथ। कुछ देश-द्रोही लीडर अंगरेजों के साथ मिल गए, जिसकी वजह से हम सतलुज-युद्ध हार गए।"

"कहीं-कहीं रणजीत सूंह होता तब, तो...।" दीपे ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। जोश से उसकी छाती धड़क रही थी।

यही राय शाह मुहम्मद की है। वह लिखता है : 'शाह मुहम्मदा इस सरकार बाझों, फौजां जित्त के अंत नूं हारियां ने' (शाह मुहम्मद कहता है कि एक सरकार के कारण सेनाएं जीतकर भी अंत में हार जाती हैं।)" बाबा अकाली ने एक तरह से दीपे की बात की ही

ताईद करते हुए कहा— "खैर, सिखों के हारने से अंगरेजों ने हिंदुस्तान के बाकी बचे हिस्से पर भी कब्जा कर लिया। हारे हुए देश को अंगरेजों ने और भी दबाना शुरू कर दिया, जिसका नतीजा यह निकला कि कुछ स्वाभिमानी देशभक्तों के जज्बात भड़के और अठारह सौ संतावन का बड़ा गदर हो गया।"

"सुना है, तब एक बार तो उथल-पुथल मच गई थी"— टहल सिंह बोला।

"पर इतना कुछ होने पर भी कामयाब नहीं हुए"— बाबा अकाली ने निराशा में सिर हिलाते हुए कहा— "फिर कूका आंदोलन छिड़ा। असल में वह भी अंगरेजों के विरुद्ध एक किसम की बगावत ही थी। कई नामधारी सूरमाओं को तोपों से उड़ाकर शहीद किया गया। फिर, शायद उन्नीस सौ सात में 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' आंदोन चला। उसका अगुआ शहीद भगत सिंह का चाचा सरदार अजीत सिंह था। वह आंदोलन इतना गरम नहीं था। फिर भी अंगरेज उससे बहुत घबरा गए थे। फिर गदर आंदोलन की तो तुममें से कइयों को याद होगी।"

"हां, तब मैं खासा बड़ा हो चुका था, जब करतार सूंह सराभे को फांसी दी गई थी" टहल सिंह ने हां में सिर हिलाते हुए कहा।

"तब अंगरेजों के खिलाफ देश में अभी ज्यादा घृणा या गुस्सा नहीं था। इसीलिए लोगों ने हमारा ज्यादा साथ नहीं दिया। असल में ज्यादा आग तो भड़काई थी जलियांवाला बाग के खूनी हादसे ने। अंगरेजों ने मार्शल ला लगाकर कई जगह खून की होली खेली।"

"तीन-चार फांसियां तो यहां कसूर में भी गाड़ दी गई थीं"— सज्जन सिंह ने उस समय को याद करते हुए कहा।

"उसके बाद जितने भी आंदोलन छिड़े हैं, जितने भी मोर्चे लगे हैं, सबमें अथाह जोश रहा है।"

"हमें तो अकाली मोर्चे की याद है। हम छोटे-छोटे हुआ करते थे। पर हमारा मन करता था कि पीले चोले पहनकर जत्थे के साथ ही चल पड़ें। उसके बाद फिर चाहे गोली चले और चाहे लाठियां बरसें"—मिलखा सिंह ने सीधे हाथ से मूंछों को जरा-सा ताव देते हुए कहा।

"इसी जोश ने वह मोर्चा जीत लिया था। इसी जोश के कारण कांग्रेस के मोर्चे सफल रहे। और अब जो मोर्चा लगेगा, वह इन सबसे बड़ा होगा।"

"पर लगेगा कब ?" चंदा सिंह ने उतावलेपन से पूछा।

"जब हम तैयार हो जाएंगे। क्यों, तू तैयार है न ?" दीपे ने गुटकती आंखों के साथ चंदा सिंह से सवाल किया।

"क्यों, खाण-पीण तूं भाग भरी ने धौण भनौण नूं जुम्मा ? (खाने-पीने के लिए भागभरी है और गर्दन तुड़वाने के लिए जुम्मा।) मौज लूटने को जत्थेदार और लीडर लोग और लाठियां खाने को गरीब-गुरबा इस बार लीडर आगे चलें"—चंदा सिंह ने थोड़ा-सा आगे झुककर हाथ हिलाते हुए कहा।

"और तू चल घर को !' पास से मिलखा सिंह ने व्यंग्य कसा।

"ओए, हम पीछे रहने वालों में नहीं हैं। लीडरों के पीछे आएंगे छलांगें लगाते"—धड़कते दिल से चंदा सिंह ने हामी भर दी।

"भई, तुम आपस में ही मत झगड़ो"— बाबा अकाली ने हाथ के इशारे से सब को चुप कराते हुए कहा— "मेरी राय भी चंदा सिंह सूंह से मिलती है। मेरी समझ से इस बार लीडरों को ही आगे चलना चाहिए। आम लोगों के जत्थे के बजाय बड़े-बड़े लीडरों को सत्याग्रह करके जेल जाना चाहिए।"

"क्यों ?' चंदा सिंह ने मिलखा सिंह की आंखों में झांकते हुए कहा— "ठीक कहते हैं न : सौ सयानों का एक ही मत।"

"ओ मान लिया, भई, कि उन सौ सयानों में एक तू भी है, पर अब बाबा अकाली की बात भी सुनने दे"—दीपे ने कंधे वाला साफ घुटनों के गिर्द लपेटते हुए कहा।

"लीडरों के अंदर चले जाने से लोगों में ज्यादा जोश पैदा होगा। इस तरह अंगरेजों के विरुद्ध गुस्सा तेज हो जाएगा और वे तंग आकर एक दिन..."

"पर महात्मा गांधी तो कहता है, मैं अंगरेजों को तंग नहीं होने दूंगा" चंदा सिंह ने बात को फिर महात्मा गांधी की ओर मोड़ दिया।

"महात्मा गांधी बड़ा सच्चा, सुच्चा और दूर की सोचनेवाला लीडर है। वह कहता है—हम चाहते हैं, हिटलर हार जाए, पर हम अंगरेजों से भी विनती करते हैं कि वो हमारा मुल्क छोड़कर चले जाएं। फिर महात्मा गांधी यह नहीं कहता कि हम आजाद होकर, फौजें लेकर अंगरेजों की मदद करेंगे और मैदान में खड़े होकर जर्मनों के विरुद्ध लड़ेंगे। वह कहता है, हम आजाद होकर अंगरेजों की जीत के लिए प्रार्थना करेंगे। उसकी राय बड़ी स्पष्ट है कि हर मुल्क के वासी अपने-अपने मुल्क के खुद मालिक हों। कोई भी किसी को गुलाम बनाकर न रखे।"

"ओ बाबा अकाली। महात्मा गांधी चाहे जितनी विनतियां करता रहे, चाहे जितनी मिन्नतें करे, अंगरेज चुपचाप चले जानेवाले नहीं हैं। चिपटे हुए भूत मिर्चों की धूनी देने से ही निकला करते हैं। देख लेना तू।" चंदा सिंह कुछ ज्यादा ही उतावला लगता था कि अंगरेज जल्दी-से-जल्दी यहां से निकल जाएं।

"घर का बुजुर्ग 'जाने दो—जाने दो' कहता ही रहता है, पर उसने लड़कों की बांहें तो नहीं बांधी होतीं। हम भी महात्मा गांधी को शांति-शांति कूकते रहने दें और अपना जत्था बनाकर काम शुरू कर दें—चल हमारे आगे।" दीपे ने उसके स्वाभिमान को ललकारते हुए कहा।

"ये लो। तुम तो यह कह रहे हो कि जो बोले, वही कुंडा खोले"—चंदा सिंह ने मुंह घुमाते हुए कहा।

"नहीं-नहीं। तुझे कुंडा किसलिए खोलना है ! तू बैठ बंते की मां के घुटने के पास। और तेरे सोते-सोते ही कोई चुटिया से पकड़कर अंगरेजों को बाहर निकाल देगा !' मिलखा

सिंह ने व्यंग्य करते हुए कहा।

"देखो भई, झगड़ो मत। न तो सब लोग जेल जाया करते हैं और न ही सबके जाने की जरूरत होती है। सबकी हमदर्दी और इच्छा एक होनी चाहिए। मान लो, अपने गांव से दो आदमी मोर्चे में चले जाते हैं, और उनके पीछे चार आदमी उनकी फसलें संभालते हैं, उनके बाल-बच्चों का खयाल रखते हैं, तो उनका देशप्रेम कैद होनेवालों से कम नहीं है। हम कहेंगे सभी ने आजादी की लड़ाई में हिस्सेदारी की है। अब भी कोई पीछे नहीं रहेगा। हर कोई जितना उससे हो सकेगा, योगदान जरूर करेगा।"

"हां, ज्यादा नहीं तो मैं और बेबे इक्कीसवाली बात ही सही। आखिर थोड़ा-बहुत चूरा करेगा ही न हर कोई।"

"बस, चंदा सूंह तो चूरा करने से आगे नहीं बढ़ेगा।"

"बेटे दीप सिंहा, तुम सब चंदा सूंह को ऐसे मत दबाए जाओ। उसकी बातों में बड़ी सच्चाई है। मेरे खयाल में इसकी आवाज सारे साधारण लोगों की आवाज है। लोगों के सामने हजारों मजबूरियां हैं। सब लोग न जेल जा सकते हैं, न गोली खा सकते हैं। अब वाले मोर्चे में भी सब लोग खुलकर हिस्सा नहीं लेंगे। मगर सबकी यह ख्वाहिश जरूर है कि अंगरेज यहां से चले जाएं।" बाबा अकाली आज नित्य से कुछ ज्यादा शांत था। वह कई दिनों से अंदर-ही-अंदर इस मसले पर विचार कर रहा था।

"बस, फिर तो चले गए अंगरेज !" दीपे ने घुटनों के गिर्द लिपटा हुआ साफा खोलकर झाड़ते हुए कहा। मालूम होता था, वह उठने को उतावला हो रहा था।

'अंगरेज अब ज्यादा देर यहां नहीं रह सकते। उन्हें हर हाल में जाना ही पड़ेगा। पर अभी यह कहना मुश्किल है कि वो कब और किस तरह जाएंगे।"

"और मोर्चा ?" चंदा सिंह ने जैसे आखिरी सवाल किया।

"मोर्चा भी लगेगा, और जल्दी ही लगेगा। हम तो बिस्तर बांधे बैठे हैं" — बाबा अकाली ने बड़े दृढ़ निश्चय के साथ कहा।

और जल्दी ही मोर्चा लग गया। 17 अक्तूबर, 1940 को सत्याग्रह शुरू हो गया। कांग्रेस ने फैसला किया कि सत्याग्रह व्यक्तिगत रहे। मतलब यह कि एक-एक लीडर अंगरेजों के विरुद्ध भाषण दे और गिरफ्तार हो जाएं। सत्याग्रह की पहली तकरीर संत विनोबा भावे ने 17 अक्तूबर को की। 21 अक्तूबर को उन्हें गिरफ्तार करके तीन महीने की कैद सुनाई गई। उनके बाद 31 अक्तूबर को पंडित जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार करके चार साल कैद की सजा दी गई। इसका अर्थ यह कि कोई कानून नहीं था। कोई मजिस्ट्रेट जितनी चाहे, सजा सुनाए। 17 नवंबर को सरदार पटेल को भी नजरबंद कर दिया गया। फिर क्या था ? सारे देश में सत्याग्रह शुरू हो गया। छोटे-बड़े लीडर और उनके साथ काम करने

वाले सज्जन अंगरेजों के खिलाफ लेक्चर देते और गिरफ्तार होकर जेल चले जाते। छह महीनों के लिए बाबा अकाली भी जेल चला गया।

छब्बीस

"इलमदीना ! नंबरदारी तू संभाले बैठा है और वार फंड की सजा हमें भुगतनी पड़ रही है।" धन्ने शाह ने बहुत बड़ा एहसान जताते हुए कहा।

अब धन्ने शाह इलमदीन के नाम के साथ चौधरी कभी नहीं लगाता था, क्योंकि इलमदीन उसका मुजारा (बटाईदार) था। और मुजारे के नाम के साथ सत्कारवाला विशेषण जोड़ने की मालिक कोई जरूरत नहीं समझता।

"शाहजी ! हम भी किसी बात से मुंह मोड़नेवाले बंदे नहीं हैं। आपके बंधुआ गुलाम हैं"—इलमदीन ने दाहिने हाथ की अंगुली के नाखून से दरी के धागों को छेड़ते हुए कहा।

धन्ने शाह की आढ़त की गद्दीवाले कमरे में तीन आदमी बैठे हुए थे। कमरा दस फुट चौड़ा और बारह फुट लंबा था। दरवाजे की तरफ दो फुट जगह छोड़कर बाकी पूरे कमरे में हलके नीले रंग की आधी दरी बिछी हुई थी। कमरे के एक कोने में दो फुट चौड़ी और चार फुट ऊंची लोहे की पेटी खड़ी थी। उसके आगे थी धन्ने शाह की गद्दी। दरी पर एक गद्दा बिछाकर ऊपर लट्ठे की चादर बिछाई हुई थी। पिछली दीवार के साथ लगभग एक-एक फुट मोटाई के तकिए रखे हुए थे। पेटी के आगे धन्ने शाह के बैठने लायक जगह छोड़कर एक संदूकची पड़ी थी। यह धन्ने शाह की मेज का काम देती थी।

धन्ने शाह अपनी मेज के सामने बैठा था। मेज यानी उड़ी हुई पालिशवाली संदूकची के ऊपर लाल रंग की एक बही पड़ी हुई थी। धन्ने शाह के बगल में तकिए की टेक लिए लक्खा सिंह बैठा था। इलमदीन सामने दरी पर बैठा था। वह धन्ने शाह से कुछ और कर्ज लेने की आस लगाए बैठा था।

"तहसीलदार तेरा अपना है, तूने यों ही बातों-बातों में उसे टरका दिया होगा। तू और वार फंड देनेवाला !" पास से लक्खा सिंह ने जरा-सा पहलू बदलते हुए कहा।

"अपना ? सरदार लक्खा सिंहा ! इस माने में अपना कौन है ? फिर सरकारी अफसर ? उसने साफ कह दिया था : तेरी सिफारिश मानकर इलमदीन को नंबरदार बनाया है। सो, यहां रख वार फंड। हजार से नीचे तो आता ही नहीं था। हाथ-पैर जोड़कर बड़ी मुश्किल से पांच सौ पूजकर जान छुड़वाई। आगे, चाहे यह जाने, चाहे न जाने।" आखिरी वाक्य धन्ने शाह ने इलमदीन की तरफ इशारा करते हुए कहा।

"शाहजी ! हम न जानें ? हमारी तो जान हाजिर है। लिखा देना वह पांच सौ भी

मेरे नाम। पर आज का काम तो निबटाओ।" इलमदीन हर शर्त पर कर्ज लेने के लिए मजबूर हुआ बैठा था।

"ओए, नाम लिख देना, नाम लिख देना, लिखे हुए को धन्ने शाह चाटता रहे !" धन्ने शाह जरा गरम होकर बोला। मकड़-जाल में फंसे हुए शिकार पर गरम होना वह अपना हक समझता था। "पहले दोनों भाई आना पिछला हिसाब निबटाओ, फिर आगे बात करेंगे।" और इतना कहकर वह बड़ी बे-परवाही से अपनी बही के पन्ने उलटने लगा।

"सरदार लक्खा सिंहा ! शाहजी बिना बात ही गुस्सा हो रहे हैं। हम क्या कहीं भागे जा रहे हैं ?" इलमदीन ने लक्खा सिंह का समर्थन प्राप्त करने के लिए कहा। "शाहजी कुएंवाले खेत के चाहवान हैं न। लो, चाहे कल ही मुझसे बैनामा लिखवा लें। और करमदीन भी मुझसे अलग नहीं जाएगा। रुपया पांच सौ और दें और उससे भी लिखवा देता हूं। हमारी तरफ से कुएंवाली आठों बीघे सदा के लिए इनकी हुई।"

"लो, अब पांच सौ इसे और दो। रुपये कहीं झाड़ों पर लगते हैं ! पहले के खाए हुए भूल गए न ! मैं नहीं लेता खेत। तुम लोग मेरी रकम मुझे लौटा दो। बहुत कमा लिया मैंने तुम्हारी दोस्ती से। कहते हैं न : जितना नहाई, उतना ही पुण्य बहुत है"— धन्ने शाह ने माथे पर त्योरियां डालकर चालाक आदमी की तरह सिर हिलाते हुए कहा।

"अरे धन्ने शाह ! यों ही छोटी-छोटी बातों पर गरम क्यों हो जाता है ? कभी-कभी तो, सच, तेरी खोपड़ी औंधी हो जाती है।" लक्खा सिंह ने तकिए की टेक छोड़कर जरा सीधा होकर बैठते हुए कहा— "लंबरदार बुरा आदमी नहीं है। और फिर अपना तो खासा प्यारा है। तूने सरकार को वार फंड दे दिया, तो कौन-सी आफत आ गई ! यह अपने गांव के दो-चार आदमी भरती के लिए दे देगा। और बता ?"

"सरदारा ! भरती का लाभ है तुझे। तूने दस-बारह रंगरूट पहले भी भरती करवाए हैं, दस-पंद्रह और करवा देगा, तो सरकार की तरफ से नेकनामी की चिट्ठी और एक-दो मुरब्बे मांड़ लेगा। मेरे तो पैसों की बात निबटाओ—हां !" धन्ने शाह ने आखिरी 'हां' पर जोर देते हुए कहा।

"बता भई लंबरदार।" लक्खा सिंह ने बात को जल्दी से निबटाने के इरादे से कहा।

"सरदार लक्खा सिंहा ! जो तू कहे, मुझे मंजूर। हमने तो शाहजी के सामने गर्दन रखी हुई है।" इलमदीन पूरी तरह हथियार डाले बैठा था। उसके मामले में दो सौ रुपयों की कमी पड़ रही थी।

जब एक पक्ष इस तरह लंबा पड़ जाए, तब फैसला होते कौन-सी देर लगती है ? पंद्रह मिनट में बात खत्म हो गई।

पिछले साल अपने हिस्से की चार बीघे रेहन रखने के बाद इलमदीन शाह से पांच सौ रुपए और ले चुका था। फैसला हुआ कि धन्ने शाह तीन सौ रुपए और दे, तो इलमदीन कुएंवाली चारों बीघे लक्खा सिंह के बेटे के हक में बै कर देगा। करमदीन पर भी धन्ने शाह का साढ़े छह सौ रुपया चढ़ा हुआ था। साढ़े तीन सौ और देकर करमदीन की बाकी

बची दो बीघे रेहन रखने की बात भी पक्की हो गई।

अगले दिन रजिस्ट्रियां हो गईं। बै की रजिस्ट्री में धन्ने शाह ने असल से दो हजार रुपए अधिक लिखवाए। दो सौ रुपए रजिस्ट्री आदि का खर्च डालकर चार बीघे जमीन पांच हजार रुपए में बै लिखी गई।

"ले धन्ने शाह ! आज तेरी जड़ें पाताल में जमा दी हैं"—लक्खा सिंह ने अदालत के बाहर सड़क पर आकर कहा। "पोतों-परपोतों तक अब तू पीरूवाले का मालिक बन गया।"

"सरदार लक्खा सिंह। अभी आधा मोर्चा फतह हुआ है। अब सज्जन सिंह भी रास्ते पर आ जाए, तब न।" धन्ने शाह की लिप्सा अभी पूरी नहीं हुई थी।

"धीरज रख, धीरज। सयानों ने कहा है—सहज पके, सो मीठा होय।"

"जिसे भूख लगी हो, वह 'सहज पके' का इंतजार कब तक करे ? मेरा सपना है कि वह सोलह बीघे हाथ लग जाए, तो सारे में बाग लगाकर बीच में छोटी-सी कुटिया डालकर बैठ जाएं। कहीं वह मारी इलमदीन की होती, तो अब तक बेड़ा पार लग गया होता" — धन्ने शाह ने शेखचिल्ली की तरह सिर घुमाते हुए कहा— "भई सरदार लक्खा सिंहा। तुझे चाहे बुरा ही लगे। ये सिख जाट जमीन देने के मामले में बड़े लीचड़ होते हैं। कहीं कत्ल के मुकदमे में फंसे हुए भले ही काबू में आ जाएं...।"

"ओए, कत्ल भी कौन-सा जाटों को पाधे से पतरा बंचवाकर करना होता है। बस, दो घूंट ज्यादा पी ली और बर्छी सीधी। पता ही तभी लगेगा जब बोले सो निहाल हो गई।" लक्खा सिंह ने अपनी कौम के बारे में शेखचिल्ली बघारते हुए कहा।

"प्यारे भाई, यह काम हलके कदमों पूरा नहीं होगा। जरा होशियारी से काम लेना पड़ेगा। एक तजबीज है, अगर वार चल गया तो। सयानों ने कहा है : सोच-समझकर काम करो, तो ऊपरवाला भी मदद करता है। आ, जरा अकेले में चलके...।" धन्ने शाह लक्खा सिंह को बांह से पकड़कर सड़क से एक तरफ ले चला।

सब-रजिस्ट्रार की अदालत के सामने खुला मैदान पड़ा था। वहां पुराने फराहों की पांत खड़ी थी, जो नाममात्र की हवा में भी सांय-सांय करते रहते थे। वहां खड़े होकर धन्ने शाह और लक्खा सिंह काफी देर कुछ गुपचुप सलाह-मशविरा करते रहे।

उसी रात धन्ने शाह ने अपने विश्वासपात्र नौकर धम्मी को दस रुपए का नोट पकड़ाया और पांच-सात मिनट तक उसके कान में कुछ बातें डालकर उसे पक्का करता रहा।

एक महीने बाद ईद का त्योहार आ गया। मुसलमानों के लिए सबसे ज्यादा मुबारक दिन है ईद का। हर गरीब-अमीर अपने सामर्थ्य के अनुसार खुशी मनाता है। जिन्होंने साल-भर कभी मस्जिद में कदम नहीं रखा होता, उस दिन वे भी नमाजियों की सफ में जा खड़े होते हैं। नमाज की आयतें आती हों या नहीं, भाइयों के बीच मिल खड़े होना भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है।

पीरूवाला के मुसलमान ईद की नमाज हमेशा शहतूतोंवाले कुएं पर पढ़ा करते थे। ईद गरमी की ऋतु में आए, तो वहां नमाजियों की छांव का कुदरती सहारा मिल जाता था। और यह पवित्र दिन सर्दियों में आ जाए, तो लोग पास के खेत में इकट्ठा हो जाते थे। जब तक चंदा सिंह जीवित था, नमाजियों के वुजू करने के लिए कुआं हमेशा वही जोता करता था। इस तरह भाइयों की सेवा करके उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता था। नंबरदारी का झगड़ा शुरू होने से पहले सज्जन सिंह भी उस परंपरा को निभाता आया था। मगर अब दिल दूर हो गए थे।

इस बार ईद मुबारक के दिन अलिया नए कपड़े पहनकर सुबह-सुबह जोग लेकर कुएं पर पहुंचा। उसकी सहायता के लिए रफी उसके साथ था। उन्होंने कुआं जोतकर बैलों को हांका, तो पाछड़े के साथ अटक माला की टिंडों ने खड़-खड़ की। लोहे का पाछड़ा अपनी जगह से थोड़ा-सा हिला हुआ था। लंबी नसार को पकड़कर पाछड़े को सीधा करते समय रफी की नजर नीचे चहबच्चे की तरफ चली गई।

"अलिया ! इधर देख ओए। यह भेड़ के मेमने जैसा क्या मरा पड़ा है !' रफी ने कुछ घबराए हुए स्वर में कहा।

"ओए, यह तो ऊंधा लगता है" — अलिए ने ध्यान से देखकर कहा। "जा, भागकर चाचा को बुलाकर ला"। वह अपने पिता को चाचा ही कहा करता था।

रफी उसी वक्त घर की तरफ दौड़ गया। अलिया भी कुआं रोककर बड़ों के आने का इंतजार करने लगा। दस मिनट बाद ही इलमदीन और करमदीन कुएं पर आ गए। देखते ही उनके चेहरे गुस्से से लाल हो गए। रफी को भेजकर उन्होंने पत्ती के पांच-सात आदमियों को और बुलवा लिया। यहां तक कि मस्जिद का मुल्ला भी आ गया।

"तौबा ! यह किस काफिर का काम है ? आज ईद के मुबारक दिन ऐसा कुकर्म ! इस्तगुफार अल्लाह।" मौलवी ने दोनों हाथ कानों पर रखते हुए कहा— "या इजरत रसूलिल्लाह, नबी पाक। अपनी उम्मत की हिफाजत कर।"

"ओए फत्ते। आगे होकर डंडे से हिलाकर देख तो सही"—बूढ़े पीर बख्श ने अपने आगे खड़े जवान से कहा।

"तौबा-तौबा। मुसलमान के लिए तो इसे देखना भी कुफ्र है। और आप डंडे से छूने के लिए कह रहे हैं। आज यहां नमाज नहीं पढ़ी जा सकेगी"—मौलवी ने सिर घुमाते हुए कहा।

"जा ओए अलिए। मंगल मजहबी को बुला के ला" — इलमदीन ने कुछ खुरदरे स्वर में कहा।

अलिया हुक्म मिलते ही दौड़ गया। इतनी देर में गांव के बाकी मुसलमान भी इकट्ठा हो गए— "ईद के दिन यह बुरा काम !'—हर मुसलमान के दिल में गुस्सा भरता जा रहा था।

मंगल आ गया। मंगल, कोई पैंतीस साल का चलता-फिरता कंकाल, जो समय से पहले ही बूढ़ा हो चुका था, जिसने पिछले बीस बरसों में मालिकों के हल चलाते हुए सैकड़ों

मन अनाज पैदा किया था, लेकिन वह खुद हमेशा आधा भूखा ही रहा था।

नंबरदार का हुक्म पाकर उसने चहबच्चे में पड़ी लाश को उलटाकर देखा।

"लंबरदारा !तीन-चार महीनों का सुअर का बच्चा है"— मंगल ने इलमदीन की ओर देखते हुए कहा।

"ओए, वह तो मुझे भी दीख रहा है। मैं पूछता हूं, इसे हुआ क्या है ?"

"इसकी दोनों कांखों में आरपार जख्म है। लगता है, किसी ने बर्छी से मारा है"— मंगल ने अच्छी तरह देखकर बताया।

"अच्छा, इसे घसीटकर उधर दूर झाड़ियों में फेंक आ।"

नंबरदार का आदेश पाकर मंगल मरे हुए सूअर के बच्चे को टांग से पकड़कर घसीटता हुआ चल पड़ा। देखनेवालों पर चुप्पी छाई हुई थी। उनके अंदर गुस्सा भरा हुआ था, मगर हर कोई मुंह से बात निकालने की पहल करने से झिझक रहा था। आखिर मौलवी ने उस चुप्पी को तोड़ा—"यह सब कुछ सोच-समझकर किया गया है। हम कदीम से यहां ईद की नमाज पढ़ते आए हैं। आज ईद का रोज। किसी ने जानबूझकर यह मकरूर जानवर लाकर यहां चहबच्चे में बर्छी मारकर मारा है। सिर्फ इसलिए कि हम कुएं से वुजू न कर सकें।"

फिर क्या था, सब लोग, जो मुंह में आया, कहने लगे। कोई किसी की तरफ मुंह करके और कोई किसी की बांह झिंझोड़कर अंदर की भड़ास निकालने लगा।

"मैं समझ गया यह किसकी कारस्तानी है। फिकर न करो, मैं अपने-आप निबट लूंगा। मगर हमें आज खुशी के दिन बात नहीं बढ़ानी है। चलो"—कहकर इलमदीन घर को चला गया।

धीरे-धीरे सारी भीड़ बिखर गई। सारा दिन गांव में यही बातें होती रहीं। कुछेक शरारती लोगों को छोड़कर बाकी सभी सयाने लोग इस बात पर अफसोस प्रकट कर रहे थे।

सज्जन सिंह उस दिन गांव में नहीं था। इस बात ने भी इलमदीन के शक को पक्का करने में सहायता की। इलमदीन सारी रात सोचता रहा—उसके सिवा यह और किसकी करतूत हो सकती है ? और ऐसा दूसरा कोई कौन है, जिसके साथ मेरा वैर हो ? सज्जन सिंह को इस हद तक नहीं जाना चाहिए था। पर, अच्छा। अब देखी जाएगी।

अगले दिन सज्जन सिंह आया, तो सारी बात सुनकर वह बड़ा हैरान हुआ। मगर उसने इलमदीन के साथ इस बात के बारे में कोई जिक्र करना जरूरी नहीं समझा। वह सारा दिन मन-ही-मन सोचता रहा—इलमदीन को मुझसे इतनी नफरत हो गई है ! वह उस काम के लिए मुझ पर शक कर रहा है। अच्छा, उसकी मर्जी। कभी हम प्याले के यार हुआ करते थे। यारी तोड़ी भी उसीने है। मैंने तो उसका कोई बुरा नहीं किया। मेरे माथे पर इल्जाम थोपने से पहले नामुराद यह तो सोच लेता कि सज्जन सूंह इस तरह के काम करनेवाला नहीं है। यह है भी किसी गए-गुजरे बंदे की करतूत। कोई मर्द आदमी इस तरह का काम नहीं करता। दुश्मन का घर तुड़वा देना, खलिहान जला देना, या इस तरह का कोई नीच काम—ये सूरमाओं का काम थोड़े ही है।...उसे...मुझ पर यह शक

नहीं करना चाहिए था। सज्जन सूंह को वैर-विरोध निकालना होता, तो मर्दों की तरह मैदान में सामने खड़े होकर निकालता। इस तरह का गिरा हुआ काम न करता। लेकिन··· लेकिन··· यह करतूत की किसने ? वह कोई हम दोनों का चालाक दुश्मन है। फिर सुअर मरा ठीक बर्छी से है। मैं अपनी आंखों से देखकर आया हूं। है तो किसी की बड़ी गहरी चाल। पर वह है कौन ? उसने सोच के बहुत छोड़े दौड़ाए, लेकिन वह किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सका।

सज्जन सिंह और इलमदीन मित्र तो रह नहीं गए थे, अब दुश्मन बन गए। इलमदीन के दिल में सज्जन सिंह के लिए नफरत और गुस्सा था। और सज्जन सिंह के मन में इलमदीन का भय। इस तरह का भय भी नफरत और गुस्से जैसा ही रोग है। ये एक-दूसरे से सावधान रहने लगे। हर वक्त एक को दूसरे के हमले का डर बना रहता। जो पहले कभी शहतूत की टहनी तक हाथ में लेकर नहीं चलते थे, अब घर से निकलते समय लाठी लेना कभी नहीं भूलते थे। दोनों पक्षों में अंदर-ही-अंदर क्रोध पकता रहा और अंत में एक दिन फूट पड़ा। कुएं की बारी पर हल्का-सा झगड़ा उठा। गुस्से-गिले की बातों में तू-तू-मैं-मैं बढ़ती गई। बात यहां तक बढ़ गई कि आठ-दस आदमी एक तरफ से और इतने ही दूसरी तरफ बर्छियां तानकर खड़े हो गए। जरा-सी चिनगारी लगने की देर रह गई। वक्त शाम का था। शोर सुनकर सारा गांव इकट्ठा हो गया। कुछ सयाने आदमी दोनों धड़ों के बीच आ खड़े हुए। दीपे ने सज्जन सिंह को बांह से पकड़कर पीछे की ओर मोड़ लिया। इलमदीन के सामने गहना लुहार हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। दोनों धड़ों के मन में मेहर पड़ गई। आग भड़कते-भड़कते शांत हो गई। लड़ाई एक बार टल गई।

यों समझिए कि दोनों पक्षों के साझा 'सज्जन' धन्ने शाह के दिल की दिल में ही रह गई।

सत्ताईस

यूरोपीय युद्ध का जोर बहुत बढ़ गया था। जर्मनी हर मोर्चे पर आगे बढ़ रहा था। सारी दुनिया भयभीत हो रही थी। कोई नहीं कह सकता था कि इस भयानक लड़ाई का अंत क्या होगा। अंगरेज और उनके पक्ष के देश बहुत घबरा रहे थे।

इस युद्ध का असर गुलाम हिंदुस्तान पर भी पड़ा। यहां के नेताओं से पूछे बगैर ही वाइसराय ने ऐलान कर दिया कि हिंदुस्तान भी युद्ध में शामिल है। एक तरफ जरूरी चीज़ों के भाव बढ़ रहे थे, दूसरी तरफ सरकारी कर्मचारी बड़ी धौंस से युद्ध-चंदा उगाह रहे थे। शहर में तो सिर्फ पैसेवाले, समृद्ध लोगों से ही चंदा लिया जाता, मगर गांवों की गरीब जनता के लिए तो शामत ही आ गई। पहले तो अपनी नेकनामी के लिए या हाकिमों के दबाव

में आकर नंबरदार लोगों को घूर-झिड़ककर कुछ-न-कुछ वसूल कर लेते। फिर थानेदार आ जाते। किसी एक गांव में तफतीश पर जाते हुए वे रास्ते में चार गांव और भी सर करते जाते। वे एक तरफ गांव के भद्रजनों को बुलवाकर बिठा लेते और एक तरफ बदमाशों को। उनकी शकभरी निगाहों में उस वक्त सब एक जैसे होते थे। एक तरफ अनदेखे स्वर्ग जैसे अगम्य आश्वासन और दूसरी तरफ धमकियां। पुलिसवाले साम-दंड दोनों हथियार इस्तेमाल करते। उठने से पहले वे सबकी खाल उतार चुके होते।

फिर बारी आ जाती तहसीलदारों की। वे दौरे करते मामले की बाकी उगाही के बहाने और चौपाल में बैठकर चंदे की कापियां। वे गांव के चौकीदारों को गालियां देने से बात शुरू करके, जैलदारों, सफेदपोशों और नंबरदारों को धीमी-धीमी झिड़कियां देते हुए बाकी सम्माननीय लोगों को 'साऊ अफसरों' वाली धमकियों पर लाकर बात खत्म करते। और अंत में तान यहां आकर टूटती की लाओ चंदा। किसी घर में खाने को हो, चाहे न हो, मगर युद्ध-चंदा देना उसके लिए अनिवार्य था। जवाब में कोई जरा-सी भी मजबूरी प्रकट करता, तो तहसीलदार झट से बोलचाल का ढंग बदलकर कहता—"तो यह लिख दूं कि तू वार-फंड देने से इंकार कर रहा है ? तब तू जाने और पुलिसवाले जानें।" इस धमकी का साफ अर्थ था कि जो चंदा नहीं देगा, उस पर युद्ध का विरोध करने का मुकदमा चलाकर जेल की दाल पीसने को मजबूर किया जाएगा। बेबस लोग मौत से डरते जहमत कबूलते और बच्चों के मुंह से रूखे टुकड़े छीनकर चंदा मांगने वालों के थान पूजते।

तहसीलदार जाता तो कोई और अफसर आ धमकता। 'डंडे से कुशल पूछनेवाला कोई-न-कोई आता ही रहता।

दूसरी तरफ भर्ती करवानेवालों का जोर था। अधभूखे खेत-मजूरों या बेरोजगार नौजवानों को लालच दिखाकर, बहला-फुसलाकर, या डरा-धमकाकर फौज में भर्ती कराया जाता। रात-दिन भर्तीवाले शिकार ढूंढ़ते रहते। आदमी के कद के माप के लिए सिर से ऊंचा बांस का डंडा, जिसमें लगभग एक फुट लंबी तख्ती अटकी रहती, भर्तीवाले एजेंटों की निशानी बन गया था। सिर्फ सरकार का पिट्ठू तबका ही भर्ती के लिए नहीं घूमता फिर रहा था, बल्कि एक और वर्ग भी इस काम के लिए मैदान में आ गया था। मुस्लिम लीग के जहरीले प्रचार के बाकी धर्मों के रखवालों के दिलों में भी ये खयाल भर दिए थे कि अंगरेजों के जाने के बाद हिंदुस्तान तलवार के बल पर बांट दिया जाएगा। और यह काम फौज की मदद से ही संभव होता है। सो, कुछ लोग यह सोचने पर मजबूर हो गए थे कि जीत उसी धड़े की होगी जिसकी फौजें ताकतवर होंगी। इसलिए अलग-अलग धर्मों के नेता चाहते थे कि उनके फिरके के ज्यादा लोग फौज में हों। किंतु ये नेता खुल्लमखुल्ला भर्ती का प्रचार करके 'सरकार के साथ मिले हुए' कहलवाने से भी डरते थे। खूब सोच-विचार करने के बाद उन्होंने एक नया रास्ता निकाल लिया। उनके इशारों पर कुछ संप्रदायों के नए संगठन बन गए। उनका काम गांवों में जलसे करके अधभूखे

लोगों को सेना में भर्ती होने के लिए प्रेरित करना था। लेकिन उनका प्रयास यही रहता कि उनके संप्रदाय के लोग ही ज्यादा भर्ती हों। अकेले-दुकेले मिलकर वे लोगों को अपने दिल की बात साफ तौर पर भी बता देते। कहीं जरूरत पड़ती, तो वे अपने संप्रदाय के बड़े लीडरों का नाम भी इस्तेमाल कर लेते। वे हर तरह से अपने धर्म-भाइयों के दिमाग में खयाल भरने का यत्न करते कि इस तरह सेना की मदद से अपने संप्रदाय का राज स्थापित कर सकेंगे। साधारण बुद्धि के लोगों पर इन विचारों का असर भी होता। इस तरह सीधी-सादी मति वाले हजारों नौजवान सेना में भर्ती होकर गोलियों के सामने सीना तानने के लिए मैदान की ओर चल पड़े।

जहां ऊपरवाला कोई मंत्र न चलता, वहां पुलिस और पुलिस के चाटुकारों ने एक और ढंग चालू कर लिया। पुलिस, बिना कारण ही, किसी भले मानस जवान को पकड़कर संदेह में बिठा लेती। दूसरे दिन इलाके का नंबरदार, सफेदपोश, या जैलदार काबू में आए हुए बेकसूर, लाचार आदमी का सिफारिशी बनकर आ जाता। वह बड़े ढंग से उसे समझाता कि पुलिस के शिकंजे से बचने का एक ही तरीका है। फौज में भर्ती हो जाओ। मजबूर गरीब एक तरफ आग और दूसरी तरफ पानी देखकर गहरे पानी में छलांग लगा देता।

उस समय देश की गरीब और लाचार जनता हर तरफ से शिकंजे में कसी हुई थी। वह तंग हांड़ी की तरह अंदर-ही-अंदर खौल रही थी, लेकिन मुंह से कुछ कह नहीं पाती थी।

सन् इकतालीस के आधा बीतने तक यूरोप की जंग ने अपना रुख बदल लिया। बाईस जून को जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया। इस नए मोड़ का असर दुनिया के बहुत से मुल्कों पर पड़ा। हिंदुस्तान भी इससे बचा न रह सका। यहां के कम्युनिस्ट और उनके साथ हमदर्दी रखनेवाले लोग अंगरेजों के पक्ष में हो गए। जो लोग एक दिन पहले उसे 'पूंजीवादी युद्ध' बता रहे थे, अब 'जन-युद्ध' कहने लगे।

अंगरेजी सरकार ने भी बदले हुए हालात से फायदा उठाना चाहा। उस समय कांग्रेस ही अंगरेजों का खुल्लमखुल्ला विरोध कर रही थी। सरकार कांग्रेस को भी अपने पक्ष में लाना चाहती थी। अक्तूबर में सरकार ने ऐलान किया कि केवल जबानी विरोध करने वालों को रिहा कर दिया जाएगा। नए सत्याग्रह करनेवालों को गिरफ्तार करना भी बंद कर दिया गया। साल की अंतिम तिमाही में लगभग सारे सत्याग्रही रिहा कर दिए गए। पंडित जवाहरलाल नेहरू चार दिसंबर (1941) को रिहा हुए। गांधीजी पहले ही बाहर थे। उन्हें इस मोर्चे में बंदी नहीं बनाया गया था। इस तरह सत्याग्रह बंद हो गया।

अब सुलह के लिए विचार-विमर्श होने लगा।

11 मार्च, 1942 को क्रिप्स स्कीम का ऐलान किया गया और 23 मार्च को सर स्टैफर्ड क्रिप्स मदारीवाला झोला लेकर दिल्ली पहुंच गया। अब भारत के लीडरों के साथ क्रिप्स की मुलाकातें होने लगीं। वह बातचीत में तो हिंदुस्तान को सब कुछ देता था, लेकिन उसकी योजना की चीर-फाड़ करने पर पता चलता था कि बरबादी और तबाही के सिवा

भारत को कुछ भी नहीं मिलता था। उसके सारे गोरखधंधे का अर्थ थोड़े शब्दों में यों बताया जा सकता है : युद्ध के समाप्त होने के बाद और युद्ध के बाद जो झगड़े-टंटे रह जाते हैं, उनके निबट जाने के बाद, शीघ्रातिशीघ्र हिंदुस्तान को डोमीनियन स्टेटस देकर राज-प्रबंध सौंप दिया जाएगा। हिंदुस्तान ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में बराबर का हिस्सेदार होगा। कौमों और मजहबों की रक्षा की जिम्मेदारी अंगरेजों पर होगी। अंगरेजी सरकार भारत में लोकराज सभा (कांस्टीच्युएंट असेंबली) बनाएगी। उसके बनाने का तरीका यह होगा—युद्ध के बाद चुनाव होंगे। राजसभा के लिए हर संप्रदाय अपने-अपने हिस्से में आनेवाले मेंबर चुनेगा। राजसभा के सदस्य प्रांतीय असेंबलियों के सदस्यों का दसवां हिस्सा होंगे। रियासतों की जनता को अपने सदस्य चुनने का अधिकार नहीं होगा—बल्कि रियासतों के शासक अपनी तरफ से सदस्यों को नामजद किया करेंगे, जिनकी गिनती रियासती आबादी के हिस्से के अनुसार होगी। रियासती सदस्यों के अधिकार अन्य चुने हुए सदस्यों के समान होंगे।—यह थी बननेवाली सभा के सदस्यों की स्थिति। स्कीम का अति आवश्यक भाग इस प्रकार था : सारे हिंदुस्तान की एक फेडरेशन होगी, मगर जो प्रांत और रियासतें अपना पृथक संघ बनाना चाहें, बनाकर भारत से अलग हो सकेंगे। जब तक यह नया राज-प्रबंध स्थापित नहीं होता, पहले से चली आ रही राज्य-व्यवस्था ही चालू रहेगी। वाइसराय को अपनी कौंसिल में कमी-बढ़ोतरी करने का और सदस्यों को बदलने का पूरा अधिकार होगा। सेना का प्रबंध पूरी तरह अंगरेजों के हाथ में ही रहेगा।

यह था जो क्रिप्स इंग्लैंड से हिंदुस्तान के लिए लेकर आया था। देश के किसी भी संगठन ने इसे स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस ने इसलिए नहीं माना, क्योंकि इससे देश के टुकड़े होने का डर था। मुस्लिम लीग ने इसलिए ठुकरा दिया, क्योंकि इसमें खुले शब्दों में पाकिस्तान की मांग नहीं मानी गई थी। मुस्लिम लीग 23 मार्च 1940 को लाहौर सेशन में अलग देश पाकिस्तान का प्रस्ताव पास कर चुकी थी और वह उस पर पूरी तरह डटी हुई थी। सिख लीडरों ने क्रिप्स के पास जाकर शोर मचाया, तो उसने जवाब में इतना भरोसा दिलाया कि किसी सूबे का कोई हिस्सा उस सूबे से अलग होकर पहली या दूसरी फेडरेशन में शामिल होना चाहे, तो उसे ऐसा करने का अधिकार होगा। इसका अर्थ था कि अगर पंजाब पाकिस्तान में जाना चाहे, तो सिख अपना इलाका उससे अलग कर सकेंगे।

संक्षेप में कहा जाए तो क्रिप्स योजना किसी ने स्वीकार नहीं की और वह 12 अप्रैल को वापस चला गया।

अब कांग्रेस के सामने सीधी टक्कर लेने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया था। 7-8 अगस्त (1942) को कांग्रेस के सारे लीडर बंबई में जमा हुए। वहां अंगरेजी सरकार के विरुद्ध एक आखिरी मोर्चा लगाने का निर्णय लिया गया, और साथ ही सारे अख्तियार महात्मा गांधी को सौंप दिए गए। यूरोप-युद्ध उस समय पूरे जोर पर था। 8 अगस्त को कांग्रेस ने ऐलान किया : 'अंगरेजो, भारत छोड़ो।' अंगरेज सरकार ने इसे कांग्रेस की तरफ से अपने विरुद्ध 'युद्ध-घोषणा' समझा। अगले दिन का सूरज चढ़ने से पहले ही कांग्रेस

के सारे लीडर गिरफ्तार कर लिए गए, कांग्रेस कमेटियां गैर-कानूनी करार दे दी गईं; कार्यालयों पर कब्जा कर लिया गया और जलसों-जुलूसों पर पाबंदी लगा दी गई। इससे सारे देश में सरकार के खिलाफ गुस्से की आग भड़क उठी।

अट्ठाईस

पीरूवाला गांव व्यावहारिक स्तर पर दो हिस्सों में बंट गया था। अब वहां एक के बजाय दो पंचायतें जुड़ती थीं। मुसलमान गांव के पूरब में और हिंदू-सिख पच्छिम में। तीसरी श्रेणी को 'हरिजन' कह लीजिए या 'आदि-धर्मी'—नाम से कोई फर्क नहीं पड़ता। उन पर कोई बंदिश नहीं थी। वे जिस पंचायत में चाहें बैठ सकते थे, मगर उन्हें पंचायत में बैठने की फुरसत ही कहां थी ? अपनी दो जून की रोटी पैदा करने के लिए उन्हें आठ में से पांच पहर धंधा पीटना पड़ता था।

सज्जन सिंह के घर के पिछवाड़े चारेक कनाल खाली बंजर जमीन पड़ी थी। उसमें पांच-सात बेकार कुंदे और दो-चार टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ियां पड़ी थीं। सर्दियों के दिनों में पिछले पहर की मीठी-मीठी धूप सेंकने के लिए कुछ लोग वहां इकट्ठे हो जाते। उससे आगे, रास्ते के दूसरी तरफ खुली जमीन में गांव के लड़के गिल्ली-डंडा वगैरह खेलने के लिए जमा हो जाते।

कभी इन कुंदों पर सारे गांव के लोग मिलकर बैठा करते थे, मगर जब से नंबरदारी का झगड़ा छिड़ा था, तब से कोई भी मुसलमान यहां आकर नहीं बैठता था। हां, सामने की रेती में लड़के अब भी इकट्ठे खेलते थे। इस छूत की बीमारी के कीटाणु उनमें दाखिल तो हो गए थे, लेकिन अभी जोर नहीं पकड़ पाए थे।

सज्जन सिंह एक कुंदे पर बैठा सन का तार छोड़ रहा था। उसका बड़ा लड़का बख्शीश बल चढ़ा रहा था और छोटा पप्पू—जिसे अब गुरदीप, या लाड़ से दीपा कहा जाता था—सन के पुट दे रहा था।

ताश का पुराना खिलाड़ी दीपा, दाढ़ी आ जाने के कारण अब दीप सिंह बन गया था। साथ ही एक बच्चे का बाप बन जाने की वजह से अब उसे उसके आधे नाम से कोई नहीं पुकारता था। बगल के कुंदे पर बैठा वह सन निकाल रहा था। वह अकेला ही एक कुंदे पर कब्जा किए बैठा था। दाएं हाथ से तीली पकड़कर, उसका थोड़ा-सा सिरा तोड़कर, वह तीली से सन उतारता जाता। सन निकालनेवाले के बाएं हाथ बैठना खतरे से खाली नहीं होता। इसीलिए बाकी के खाली लोग उससे दूर-दूर दूसरे कुंदों पर बैठे हुए थे।

क्षितिज के पल्लू में मुंह छिपाने के लिए सूरज बड़ी तेजी से दौड़ा जा रहा था। उसकी आड़ी किरणें शरीर को बड़ी प्यारी लगती थीं। माघ का महीना खत्म होने को था। बसंत भले ही गुजर चुका था, किंतु शीत का जोर अभी काफी ज्यादा था।

"रस्सी बंट रहा है अपने पशुओं को जोतने के लिए ?" बाबा अकाली ने पास आकर अचानक सज्जन सिंह से सवाल कर दिया। वह अपने ही किसी खयाल में डूबा खेत की तरफ से आ रहा था— "अच्छी बात है। उन बेजुबानों को अच्छी तरह बांधकर रखो। अंगरेज की जंजीरें तोड़ने लायक तो हम नहीं हैं। सो, अपना बदला पशुओं से लेने के लिए, उनकी रस्सियां हम बंटते रहें।"

"बाबा अकाली। ऐसे डंडा फेंककर मारने से मजा नहीं आता। जरा बैठकर बात सुना"—सज्जन सिंह के बजाय दीप सिंह ने उत्तर दिया— "सुना है, महात्मा गांधी ने जेल में आमरण व्रत रख दिया है ?"

"हां। तू अपना काम करता रह और मैं बात सुनाता हूं। कहते हैं न—भाई, तुम लगाओ 'आसा दी वार' और मैं जरा चक्की पीस लूं।" बाबा अकाली ने व्यंग्य से कहा।

"यह बात है, तो यह लो।" दीप सिंह ने गरने पर बाएं हाथवाली सन लपेटकर रख दी। "छोड़ दे ओए सज्जन सिंहा। बाबा अकाली से कुछ दो-चार देश की बातें भी सुन लिया कर। तू तो लंबरदार बनकर बिलकुल ही सरकारिया हो गया है !"

"सरकारिया हो गया होता तो गांव के पांच-सात जवान भर्ती न करवाए होते अब तक ? हम तो बाबा अकाली के चेले हैं"—सज्जन सिंह ने दोहरी की हुई तंदूली इकट्ठी करते हुए कहा।

उसकी बात का निशाना दूसरा नंबरदार इलमदीन था, जो अब तक गांव के पांच लड़के भर्ती करवा चुका था।

"इच्छा है तुम्हारी कुछ सुनने की ?" बाबा अकाली ने सबकी तरफ झांककर सवाल किया।

"बैठ जा घड़ी-भर के लिए। सुना कोई खबर। रोज कई अफवाहें उड़ती सुनते हैं। कोई पते की बात बता। यहां आ जा मेरे पास"—टहल सिंह ने अपने दाएं हाथ से इशारा करते हुए कहा।

"लो, सुनो फिर। मैं सिर्फ दो दिन तुम्हारे पास और हूं। तीसरे दिन हम चले जाएंगे।" बाबा अकाली टहल सिंह के पास जा बैठा।

"किधर चला जाएगा, बाबा अकाली ? देखना, कहीं गांव को रंडा न कर जाना"—पास से मिलखा सिंह ने ठट्ठा करते हुए कहा।

"वाहिगुरु बोल ओए नामुराद। किस तरह की बातें निकालता है मुंह से !" दीप सिंह ने मिलखा सिंह को झिड़कते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, कौवों के कहने से कहीं ढोर मरते हैं ? हमें हिंदुस्तान को आजाद

हुआ देखकर मरना है, उससे पहले नहीं"—बाबा अकाली ने बड़े दृढ़ भरोसे के साथ कहा।

"हिंदुस्तान भी अगर अब आजाद हो गया तो हो गया, नहीं तो फिर नहीं छोड़ते ये कंजी आंखोंवाले।" टहल सिंह के विचार कुछ डावांडोल थे।

"टहल सिंहा, यह तो अब आजाद होके ही रहेगा। कोई भी ताकत अब इसे गुलाम नहीं रख सकती। हां, यह नहीं कहा जा सकता कि कांग्रेस की यह लड़ाई आखिरी होगी या अभी और भी मोर्चा लेना पड़ेगा। मगर पिछली सभी लड़ाइयों के मुकाबले यह लड़ाई सख्त है"—बाबा अकाली ने टहल सिंह की ओर देखते हुए कहा।

"ये जो रोज-रोज अफवाहें उड़ती हैं महात्मा गांधी के बारे में, इनमें से सच्ची बात कौन-सी है ?" दीप सिंह ने बाबा अकाली से सवाल किया। वह कोई सच्ची खबर सुनना चाहता था।

"देखो न, ये अंगरेज हैं तो बड़े शैतान...।"

"शैतान कहां, शैतान की टोंटी।" दीप सिंह ने बाबा की बात बीच में ही टोककर दिल की कह दी।

"शैतान की टोंटी न होते तो इतनी देर राज भी नहीं कर सकते थे"—पास से धरम सिंह छड़े की आवाज आई। बातों में बात मिलाकर वह भी अपने अस्तित्व का सबूत देना चाहता था।

"भई, अब सारे भांत-भांत की मत बोलो। बाबा अकाली से सुनने दो।" टहल सिंह ने बात को बीच में टोकनेवालों को एक तरह से हिदायत दी। "हां भई, शुरू से सुना इस मोर्चे की बात।"

"यह तो तुम देख ही रहे हो कि अंगरेज बड़े सख्त शिकंजे में फंसा हुआ है"—गला खंखारकर बाबा अकाली ने सही बिंदु से बात को उठाते हुए कहना शुरू किया— "पर फूं-फां अभी तक वहीं है। रस्सी जल गई, पर बल नहीं गया। इस मुश्किल समय में भी यह हमें कुछ देने को तैयार नहीं है। बातों-बातों में तो सब कुछ देता है, पर असली तौर पर कुछ भी नहीं। पिछले दिनों क्रिप्स आया तो यों ही दिखावा करके चला गया। कहते हैं न—पंचो ! आपका कहा सिर-माथे, लेकिन परनाला तो यहीं रहेगा। वही बात है इन दोगलों की। इधर हमारे लीडरों ने भी कच्ची गोलियां नहीं खेल रखी हैं। ये भी अंगरेजों के दाव-पेंच जानते हैं।"

"एक ही अखाड़े के पहलवान तो हैं सब !" लीक पर आई बात पर दीप सिंह चुप नहीं रह सकता था।

"हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने कहा—भई, दो टूक फैसला करो कि लड़ाई खत्म होने के बाद हमें कब आजाद करोगे। लेकिन अंगरेजों ने वही टाल-मटोलवाली पुरानी चाल न छोड़ी। आखिर कांग्रेस ने सन् चालीस में मोर्चा लगा दिया। वह मोर्चा, तुम जानते ही हो, बड़ा ठंडा-ठंडा था। महात्मा गांधी अंगरेजों को ज्यादा परेशान नहीं करना चाहते थे। और अंगरेजों ने समझ लिया कि ये हमसे डर गए हैं।"

"वही बात हुई कि लाज के मारे अंदर जा छुपा, मूरख कहे मुझसे डर गया।"

दीप सिंह की बात पर कई श्रोताओं ने सहमति में सिर हिलाया।

"तंग आकर कांग्रेस ने आठ अगस्त (1942) को बड़े मोर्चे का ऐलान कर दिया। और सभी लीडरों ने सर्वसम्मति से महात्मा गांधी को लड़ाई का सेनापति नियुक्त कर दिया।"

"भई यह आदमी तो कमजोर-सा है, पर दिल का बड़ा पक्का"— टहल सिंह श्रद्धा से सिर हिलाते हुए बोला।

"मैं कहता हूं, बड़ी ताक़त है उसमें"—दीप सिंह ने महात्मा गांधी की प्रशंसा की।

"महात्मा गांधी ने सरकार को ललकारकर कहा—अंगरेजो, भारत छोड़कर जाओ। सरकार पहले से ही समय के इंतजार में थी। अगले दिन का सूरज निकलने से पहले ही सरकार ने महात्मा गांधी समेत सारे बड़े लीडरों को गिरफ्तार कर लिया। ये गिरफ्तारियां बंबई में हुईं। बंद गाड़ियों में बिठाकर पुलिसवाले लीडरों को जाने कहां ले गए। साथ ही सरकार ने कांग्रेस की सब छोटी-बड़ी कमेटियों को गैर-कानूनी करार दे दिया। सारे देश में जलसे करने या जुलूस निकालने की मनाही कर दी गई। छापे मारकर जगह-जगह कांग्रेस के दफ्तरों पर कब्जा कर लिया गया। कई जगह पर रात साढ़े सात बजे से लेकर सुबह छह बजे तक लोगों के घरों से निकलने पर पाबंदी लगा दी गई।"

"वही मार्शला लगा दिया।" टहल सिंह की आंखों के सामने उन्नीस सौ उन्नीस वाले मार्शल लॉ का नजारा आ गया।

"इस धक्केशाही से तो लोग और भी भड़क उठे। उस दिन बंबई में कांग्रेस के वालंटियरों की परेड होनी थी। लोग सोच रहे थे कि देखें, कांग्रेसी करते हैं या सरकार से डरकर रुक जाते हैं।"

"लो। जिनके दिल में लगन होती है, वो डर के मारे रुकते थोड़े ही हैं।"

"भगत सूंह शेर तो फांसी चढ़ने से नहीं रुका था, और यहां तो...।"

"आखिर, निश्चित समय पर कांग्रेसी तिरंगे झंडे लेकर निकले। बाजारों में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। अपने आप ही जुलूस बन गए। सरकार भी पूरी तैयारी किए बैठी थी। पुलिस की मदद के लिए फौज को भी बुला लिया गया था। पुलिस ने जगह-जगह जुलूसों को रोकने की कोशिश की। अफसरों की खोखली धमकियां सुनकर भीड़ पर कोई असर न हुआ, तो पुलिस ने टिअर गैस छोड़ी और लाठी-चार्ज किया। सिपाहियों पर अफसरों की तरफ से बड़ा जोर पड़ा हुआ था। सो, सरकार के उन नमक-हलालों ने अंधाधुंध लाठियां बरसाईं। रात तक कई सौ लोग जख्मी हो गए। इससे जनता का रोष और भी ज्यादा भड़क उठा। अगले दिन शहर में हड़ताल हो गई। और भी ज्यादा लोग मैदान में आ गए। ऐसा लगता था जैसे सारी दुनिया घरबार छोड़कर बाजारों में आ गई हो। जिधर देखो, जुलूस, जिधर निगाह डालो, बस कांग्रेसी झंडे ही नजर आते थे। सरकार ने भी जुल्म करने में कोई कसर नहीं रहने दी। उस दिन (10 अगस्त) अकेले बंबई शहर में ही निहत्थे लोगों

पर दस बार गोली चली। और अगले दिन तेरह बार। यह हिसाब कौन लगाता कि पुलिस की गोली से कितने मरे और कितने जख्मी हुए। यह तो सिर्फ एक शहर की बात है। नागपुर, रांची, मद्रास, लाहौर, दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, पूना, अहमदाबाद, लखनऊ—सभी बड़े-बड़े शहरों में हत्याकांड हुए। पुलिस ने सिर्फ पिस्तौलों और राइफलों से ही काम नहीं लिया, कई जगह हवाई जहाजों से बम भी फेंके और मशीनगनों से निहत्थे-निर्दोष लोगों पर गोलियां बरसाईं। लोगों को दानों की तरह भून डाला गया। फिर, सच बात कहूं, कहीं-कहीं लोग भी गुस्से से पागल हो उठे। महात्मा गांधी का आदेश था, हर जुल्म सहना और शांत रहना, लेकिन लीडरों के बगैर लोग शांत न रह सके। कई जगह भड़के हुए जवान अपनी मर्जी पर उतर आए। उन्होंने डाकखाने जला दिए, रेलें उलट दीं, टेलिफोन के तार काट डाले, अनाज की दुकानें लूट लीं। सरकारी गोदामों में आग लगा दी, बाजार में रोककर कारें पंक्चर कर दीं और रेल की पटरियां उखाड़ दीं। इसका नतीजा—सारे देश में हड़ताल हो गई, कई जगह रेलें चलना बंद हो गईं और एक तरह से सारा कारोबार ठप हो गया। इन घटनाओं से सरकार को बहाना मिल गया और उसने जनता पर मनमाने जुल्म किए।"

"कभी शहर जाने पर जो अफवाहें सुनने को मिलती थीं, वो भी बहुत ही बुरी थीं।"

"अरे, रोंगटे खड़े हो जाते थे सुनकर।"

"अंगरेजों ने भी तो हद कर दी है। कोई भी शरीफ कौम किसी अधीन देश पर इतना अत्याचार नहीं करती। कई हजार लोग मारे गए, कई घर तबाह हो गए और कई खानदान जड़मूल से ही नष्ट हो गए।"

"इसीलिए महात्मा गांधी ने आमरण व्रत रखा है ?" दीप सिंह ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"व्रत रखने का एक कारण और भी है"—बाबा अकाली ने दीप सिंह की ओर थोड़ा-सा चेहरा घुमाते हुए कहा— "सरकार ने इल्जाम लगाया कि जुल्म की ये सारी कार्रवाइयां महात्मा गांधी के इशारे पर हुई हैं। सरकार ने देस-परदेस में ढिंढोरा पीटा कि कांग्रेस ने यह स्कीम अंदर-ही-अंदर पहले बना रखी थी। महात्मा गांधी ने इस बात का विरोध किया और रोष प्रकट करने के लिए भूख हड़ताल कर दी। इसे आमरण व्रत नहीं कहा जा सकता क्योंकि गांधीजी ने पहले ऐलान करके इक्कीस दिन का व्रत रखा है।"

"पर गांवों में तो बड़ी अफवाहें उड़ रही हैं। सुना है, महात्मा गांधी की हालत बहुत बिगड़ गई है। रब न करे, उन्हें कुछ हो गया तो...।" टहल सिंह ने आखिरी वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

"हां, एक हद तक इन अफवाहों में सच्चाई है। महात्मा गांधी को कुछ हो गया, तो ऐसी आग भड़क उठेगी, जिसे कोई भी नहीं बुझा सकेगा। सरकारी लोगों के लिए वह दिन प्रलय का होगा। उनके टैंक और तोपें भी उस गुस्से को ठंडा नहीं कर पाएंगी। वाहिगुरु के सामने अरदास किया करो कि इक्कीस दिनों का व्रत सुख-शांति से निभ जाए

और महात्माजी नए और ताजा होकर इस कर्म से उठें। नहीं तो… नहीं तो…। अभी कुछ नहीं कहा जा सकता"—बाबा अकाली ने सिर हिलाते हुए बड़ी चिंता-भरी आवाज में कहा।

"भला कितने लोग कैद हो गए होंगे अब तक ?" मिलखा सिंह ने बात जारी रखने के इरादे से सवाल किया।

"कोई सही अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। और वैसे भी अभी कौन-सा मोर्चा फतह हो गया है ? आहिस्ता-आहिस्ता लोग जा ही रहे हैं। परसों-नरसों मैं भी चला जाऊंगा।

"बाबा अकाली। मैं भी तेरे साथ चलूंगा। क्या पता, फिर कोई मोर्चा लगे या नहीं। जाती बारी का हिस्सा डाल चलें।"—टहल सिंह ने बड़े गंभीर और दृढ़ता-भरे स्वर में कहा।

"ओए छड़े ! तू भी चलेगा ?" दीप सिंह ने धरम सिंह से मजाक किया।

"क्यों नहीं। खाने-पीने को बंदरिया और डंडे खाने को रीछ। गरम बांहों की मौज लूटने के लिए तुम और जेल जाने के लिए छड़ा। आज तक मुझ पर कौन-सा एहसान किया है कि मुझे जाने के लिए ललकारते हो ?" धरम सिंह ने जवाब में फीकी-सी हंसी हंसते हुए कहा।

"बेटा दीप सिंह !" बाबा अकाली ने बड़े धीरज से कहा— "बेचारे धरम सूंह के साथ ठट्ठा मत करो। सारे लोग किसी भी आंदोलन में हिस्सा नहीं लिया करते। और न ही सब की जरूरत होती है। न ही मैं सबसे हिस्सा लेने को कहता हूं। हां, सबकी हमदर्दी जरूर होनी चाहिए। और हमदर्दी है भी। जो देसी अफसर इस वक्त सरकार का साथ दे रहे हैं, दिल से वो भी हमारे साथ हैं। तुम्हें पता होगा कि वाइसराय की कौंसिल के मेंबर एक बड़े आदमी (सर सी. पी. रामस्वामी अययर) ने इस्तीफा दे दिया है। कई और अफसरों ने भी नौकरियां छोड़ दी हैं। यह कुरबानी कम है ? दूसरी तरफ कई आगे हो-होकर नारे लगानेवाले कांग्रेसी भी डरकर चुप हो गए हैं। कई लोगों ने डर के मारे घरों में पड़ी कांग्रेस की भर्तीवाली पर्चियां तक जला डाली हैं। हरेक तो कुरबानी नहीं दे सकता न। पर मैं उनको भी बुरा नहीं कहता। उनके सामने कई मजबूरियां हैं। वैसे दिल से वो भी आजादी चाहते हैं। और फिर सबके लिए जेलों में जगह भी कहां है। देखो, हमारे गांव की आबादी मुश्किल से एक हजार होगी। और हम दो यहां से जा रहे हैं। इस तरह हर पांच सौ लोगों के पीछे एक आदमी मोर्चे में जाए तो हिसाब लगाओ कि पैंतीस करोड़ के पीछे कितने हो गए ?" बाबा अकाली ने सबकी तरफ देखा।

सुननेवाले सभी लोग धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे। इतनी जल्दी हिसाब लगा लेने की सूझबूझ किसी में नहीं थी।

"चलो उठो, चलें। हमारे पीछे मेल-जोल से रहना। कोई और गड़बड़ मत करना। पहले सज्जन सूंह और इलमदीन के झगड़े के बारे में सुनकर मेरा दिल दुखी था। मैं गांव में होता, तो इस तरह की घटना कभी न होने देता"—बाबा अकाली ने सिर हिलाते हुए कहा।

खासा अंधेरा हो चुका था। बाबा अकाली उठकर घर की ओर चल पड़ा। उसके

पीछे-पीछे बाकी सज्जन भी उठकर चल पड़े। मगर सबके दिल में हलचल मची हुई थी। उनके अंदर कांग्रेस से हमदर्दी और अंगरेजों के लिए घृणा थी। वे भी मोर्चे में भाग लेना चाहते थे। कोई सत्याग्रह करके जेल जाने और कोई सरकार के विरुद्ध हथियारबंद टकराव करने के बारे में सोच रहा था। लेकिन उन्हें अपनी मजबूरियों से छुटकारा पाने का कोई रास्ता भी नहीं मिल रहा था।

उस सारी रात बाबा अकाली अपने भीतर टहलता रहा। न चाहते हुए भी वह बहुत कुछ सोच रहा था—बस, कल का दिन और। खेम कुरे ! मैं तो कब का मोर्चे में चला गया होता, पर इस बार मैं मन को मना नहीं सका। कल का दिन⋯ तुझे याद है न⋯ लो⋯ कभी भूल सकता है ?⋯ तू भले ही इसे कमजोरी समझे, पर मैं इस मोह को त्याग नहीं सका। सो, कल का दिन मैं तेरे कमरे में गुजारना चाहता हूं। परसों जरूर चला जाऊंगा। तेरी⋯ तेरी याद⋯ हां, तू हमेशा मेरे साथ है—हमेशा।

अगली रात भी बाबा अकाली ने इसी तरह गुजारी और उससे अगले दिन वह कमर कसकर चला गया।

तरनतारन में अमावस का बड़ा भारी मेला था। सारे बाजार भीड़ से भरे हुए थे। तहसील के चौक में ऊंची जगह खड़े होकर बाबा अकाली ने ऊंचे स्वर में भाषण देना शुरू कर दिया—"ओ अंगरेजो। और अंगरेजों के चेले-चांटो ! सुनो ! कान खोलकर सुनो। हम सब महात्मा गांधी के साथ हैं। मैं आज यहां सत्याग्रह के लिए आया हूं। मैं महात्मा गांधी के ऐलान को दोहराता हूं—अंगरेजो, हिंदुस्तान से निकल जाओ, निकल जाओ।⋯ भाइयो तुम मेरी विनती सुन लो। हम देश की आजादी के लिए अंगरेजी सरकार से लड़ रहे हैं। तुम हमारी मदद करो। सरकार को कोई वार-फंड मत दो। सेना में भर्ती मत होओ। और⋯ और⋯ सरकार के साथ किसी तरह का सहयोग न करो। यहां कहीं कोई अंगरेज या सरकारी अफसर दिखाई दे तो ललकारकर कहो—अंगरेजो। यहां से निकल जाओ।"

बाबा अकाली तब तक इसी तरह बांह ऊंची करके नारे लगाता रहा, जब तक पुलिस हथकड़ियां लेकर न आ पहुंची। लाल पगड़ीवालों को देखकर उसने पूरे नारे लगाए—"अंगरेजो ! हिंदुस्तान छोड़ो ! अंगरेजो, हमारे देश से निकल जाओ।"

पुलिसवाले बाबा अकाली को हथकड़ी लगाकर चलने लगे, तो पास खड़ा टहल सिंह पूरा जोर लगाकर बोल उठा—"ओए, रुक जाओ रे, एक मिनट। मैं भी इसके साथ हूं।" हाथ के इशारे से पुलिस को रोकते हुए टहल सिंह बाबा अकालीवाली जगह पर चढ़ गया। "मुझे लचकर-वचकर देना तो नहीं आता। मैं तो सीधी बात कहूंगा। अंगरेजो ! यहां से निकल जाओ ! निकल जाओ !" उसने दोनों बांहें उठाते हुए चिल्लाकर कहा। जोश से उसका चेहरा तपकर लाल हो गया था और मुट्ठियां भिंच गई थीं। "लो अब लगा लो हथकड़ी।" उसने अपनी दोनों बांहें आगे बढ़ा दीं।

महात्मा गांधी पुणे के आगा खां महल में बंद थे। उनकी धर्मपत्नी कस्तूर बाई, मीरा बहन और सरोजिनी नायडू भी उनके पास थीं। सरकार ने खुलेआम महात्मा गांधी के सिर दोष मढ़ा कि हिंसा-भरी सारी गड़बड़ उन्हीं के हुक्म या इशारे पर हुई है। गांधीजी ने इसके विरुद्ध कड़ा विरोध-प्रकट किया और जेल में ही इक्कीस दिन का उपवास रखा। भूख-हड़ताल 9 फरवरी, 1943 को शुरू हुई। उपवास के चौथे-पांचवें दिन से ही गांधीजी की हालत बिगड़ना शुरू हो गई। दस-बारह दिन बीतने पर तो हालत बहुत ही खराब हो गई। डाक्टरों ने जांच करने के बाद गहरी चिंता व्यक्त की। उस समय देश में बड़ी घबराहट और चिंता थी। अंगरेजों के विरुद्ध रोष का प्याला लबालब भरा हुआ नजर आ रहा था। कहा नहीं जा सकता था कि कोई अनहोनी हो जाती तो क्या परिणाम होता। पंद्रहवें-सोलहवें दिन गांधीजी की हालत कुछ सुधरना शुरू हो गई। इक्कीस दिन पूरे होने पर तीन मार्च को महात्मा गांधीजी ने व्रत त्यागा तो लोगों ने कुछ चैन की सांस ली।

अगले साल (1943) अप्रैल में महात्मा गांधीजी बीमार पड़ गए। बीमारी काफी बढ़ गई। यहां तक कि डाक्टरों ने बड़ी भारी चिंता प्रकट की। इसलिए सरकार ने छह मई को गांधीजी को 'अस्वस्थता के कारण' रिहा कर दिया। उनके साथ-साथ उनके कुछ अन्य साथियों को भी छोड़ दिया गया।

सात मई (1945) को यूरोप का महायुद्ध खत्म हो गया। अंगरेजों का पक्ष युद्ध में जीत गया। सारे संसार ने सुख की सांस ली। अंगरेजी सरकार ने जल्दी ही हिंदुस्तान को कुछ देने का ऐलान किया और धीरे-धीरे सारे कांग्रेसी रिहा कर दिए गए।

उनत्तीस

धन्ने शाह अपने इच्छित लक्ष्य तक अभी तक नहीं पहुंच पाया था। यह लक्ष्य था, तूतों वाले कुएं की सोलह की सोलह बीघा जमीन हासिल करना। लेकिन पक्के तौर पर वह अभी इलमदीन के हिस्से की चार बीघे ही प्राप्त कर सका था। करमदीन वाली चार बीघे उसने रेहन करवा ली थी। उसकी उसे ज्यादा चिंता नहीं थी। उसे यकीन था कि थोड़ी-बहुत रकम और देकर वह किसी भी समय चार बीघे अपने नाम करवा सकेगा। वह दिल में सोचा करता कि मुल्क के आजाद होने तक यह सौदा लंबा होता जाए, तो ठीक है। कांग्रेसी लीडर साफ-साफ कहते हैं कि राज संभालते ही वे इस फर्क करनेवाले कानून का अंत कर देंगे। तब हर हिंदुस्तानी को जमीन खरीदने का हक होगा। और हम यह ऐलान जोर देकर सबसे पहले करवाएंगे। आए साल हम कांग्रेस को यों ही चंदे नहीं देते। बीस पापड़ बेलकर, चोरी-ठगी करके कमाए हुए पैसे इन खद्दरधारियों को पूजते हैं। सरकार के सफेदपोश

और कांग्रेस के खद्दरपोश। राज करनेवाले कितनी दूर की सोचते हैं। अपनी बननेवाली हुकूमत के स्तंभ पहले ही तैयार करते जा रहे हैं। खैर, हमें क्या ! हमारा भला तो इनके साथ मिलने में ही है। आज अंगरेज का राज है तो हम उनके साथ हैं, कल को कांग्रेस का राज हो जाएगा, तो हम भी गांधी टोपी पहन लेंगे। लो, हमें क्या फर्क पड़ जाएगा। बादशाह की तस्वीर दीवार से उतारकर वहां महात्मा गांधी की तस्वीर लगा देंगे। और उनका भला भी हमारे साथ मिलने में ही है। कोई भी सरकार व्यापारी जमात के साथ मिलकर ही सफल हो सकती है। आखिर भाई-बंधु तो हमारे ही होंगे न। मिलकर चलेंगे। वे भी खाएंगे, हम भी खाएंगे। सो पहला कानून हम यह पास करवाएंगे कि जमीन खरीदने का हक सबको है। इसे जरायतपेशा और गैर-जरायतपेशा का सवाल नहीं रहने दिया जाएगा। तब मैं करमदीन से सीधी रजिस्ट्री करवा सकूंगा। तब लक्खा सिंह वाला बिचौलियापन भी खत्म हो जाएगा। अभी तक तो लक्खा सिंह अच्छा है, लेकिन आदमी का मन बदलते कितनी देर लगती है। जाट बाबा मुंह फेर ले तो हम क्या कर लेंगे ? कर्ज के दावे करते घूमो बाद में। चलो, जिस तरह का समय आएगा, देख-बरत लेंगे। अभी सिर जितनी देर उसके नीचे है, तब तक तो झुकाकर ही रहना पड़ेगा। पंचतंत्रवाला भी लिखता है न··· छोड़ो, पंचतंत्रवाले को। ज्यादा सोचने लायक बात तो है सज्जन सिंह की। वह कैसे काबू में आए ? पीछे शिकंजे में फंसा था, मगर एक तरह से सूखा ही निकल गया। बारह साल के लिए मुस्ताजरी ही हुई न ! पलक झपकते निकल जाएंगे बारह साल। पैसे गए कमाई के खाते में और खेत फिर उसका ! मैंने क्या कमाया इस सौदे में ? कहा करते हैं, पहुंचा पकड़ने के लिए पहले उंगली पकड़ो। सो, अभी सिर्फ उंगली पकड़ में आई है। अब पहुंचा पकड़ने की कोई तरकीब सोचनी चाहिए। जब तक...जब तक वह किसी बड़े मुकदमे में न फंसे, हमारा काम नहीं बनेगा। और इसके लिए.. हां, वह आदमी काम आ सकता है। बस, ठीक है। तब कुएं पर सुअर मार कर आग लगाई तो थी, लेकिन वह सुलगकर बुझ गई, जली नहीं। अच्छा, अबके देखी जाएगी।

धन्ने शाह को ऐसा लगने लगा, जैसे वह इस नई योजना से मंजिल पर ज़रूर पहुंच जाएगा। उसने एक बार फिर चौधरी फ़जल हक़ का सहारा लिया।

मुस्लिम लीग के विषैले प्रचार के कारण हिंदू, सिख और मुसलमान परस्पर दूर होते जा रहे थे। पाकिस्तान के नारे ने हर मुसलमान के दिलो-दिमाग में एक मारक नशा भरना शुरू कर दिया था। नीतिवानों का सिद्धांत है—जिन लोगों को अपने पीछे लगाना चाहते हो, उन्हें कोई ऐसा नारा दो, जो सीधे उनके दिल पर असर करे। फिर वे बुद्धि की आवाज नहीं सुनेंगे। वे काठ की पुतलियों की तरह आपके इशारों पर नाचने लगेंगे। ऐसा ही असर पाकिस्तान के नारे ने अधिसंख्य मुसलमानों पर किया। कुछ समझदार हिंदू-सिख समझाने का प्रयास करते—देखो भई, एक ही देश में जनमे-पले होने के कारण हम सब भाई-भाई हैं। और पाकिस्तान के पुजारी मुसलमान उन्हें मुंहतोड़ जवाब देते—हम हिंदुओं-सिखों के भाई नहीं हैं। हम एक अलग कौम, मुसलमान हैं, और हमारा देश पाकिस्तान है।

नया नारा, नए सपने और नया लक्ष्य—पाकिस्तान—मुसलमानों के भीतर गहरे उतरता गया। ऊपर से फजल हक़ जैसे लोगों ने इस ढंग से प्रचार किया कि मुसलमान और गैर-मुसलमानों को कट्टर दुश्मन समझने लगे। और कोई राष्ट्रभक्त मुसलमान भी अपने मजहबी भाइयों को समझाने की कोशिश करता तो वह मुस्लिमलीगियों के लिए काफिर से आगे बढ़कर दूसरा शैतान बन जाता, जिसे अल्लाह पाक ने धक्के मारकर अपनी बहिश्त से निकाल दिया था।

फजल हक़ ने एक तीर से दो शिकार करने की सोच ली। उसने अपना अड्डा पीरूवाला में जमा लिया। इस तरह वह अपनी तय की हुई योजना भी पूरी कर सकता था, और इस्लाम की सेवा भी कर सकता था।

शहतूतोंवाले कुएं पर सुअर मारनेवाला पुराना किस्सा उसने फिर से लोगों के सामने ला खड़ा किया। एक दिन मस्जिद में उसने साफ कह दिया कि सिखों ने कभी सुअर मारा था और हम बकरीदवाले दिन उसी कुएं पर गाय की कुरबानी देंगे। इस काम के लिए उसने इलमदीन की दो-ढाई साल की सफेद गाय ही चुन ली। गाय के चांदी रंग के बदन पर मेहंदी लगाकर लाल दाग बनाए गए। उसके गले में मौली की अट्टी की कंठियां डालकर नई-नवेली दुल्हन की तरह सजा दिया गया।

गांव के सिख आए साल शहर में भेड़ों और बकरों को इसी तरह सजा देखा करते थे। वे यह भी जानते थे कि ये सजाए हुए जानवर बकरीदवाले दिन कुरबानी देने के लिए होते हैं। इलमदीन की सजी हुई गाय देखकर ही सिखों को पक्का यकीन हो गया कि यहां के मुसलमान बकरीद के दिन गाय हलाल करने पर तुले हुए हैं। ऊपर से आए दिन फजल हक़ के मस्जिद में प्रचार करने से सिखों का संदेह पक्का हो गया। जहां चार सिख मिलते, उनमें यही बातें होने लगतीं।

धीरे-धीरे यह खबर आसपास के गांवों में फैलना शुरू हो गई। समाचार पाकर जत्थेदार सुंदर सिंह की टोली भी मैदान में आ गई। आखिर पंथ पर संकट आया देखकर वे चुप कैसे रह सकते थे। गांवों में धुआंधार भाषण होने लगे। इस बार सुंदर सिंह की प्रेरणा ने सज्जन सिंह को भी आगे लगा लिया। उसके आंगन में बैठकर चाय पीते हुए बड़े ताने-भरे स्वर में जत्थेदार सुंदर सिंह ने कहा— "देख ओए सज्जन सिंहा ! सारी कलह की जड़ तू है। और अब मर्द बनकर आगे चल। यों ही कायरपना मत दिखा। गुरु साहब ने कहा था—तेल में बांह डुबोकर तिलों के ढेर में घोंप दो। जितने तिल बांह से चिपट जाएं, उतनी कसमें भी मुसलमान खाए, तब भी उस पर एतबार मत करो। तूने गुरु साहब का हुक्म भुलाकर इलमदीन के साथ सज्जनता बनाए रखी। चख लिया न दोस्ती का स्वाद। फिर, उन्होंने खुद ही सुअर मारकर नाम तेरा लगा दिया। जानता है, यह चाल क्यों चली गई ? सिर्फ इस कुएं पर गाय हलाल करके हमारा धर्म भ्रष्ट करने के लिए। अब तू आप ही सोच ले। या तो सूरमा बनकर हमारे आगे चल, या फिर सदा के लिए पंथ को तिलांजलि दे दे। और हमें तो पीछे हटना ही नहीं है, जिस धर्म के लिए हथेली पर सिर लिए घूमते

हैं।" वैसे उस वक्त सुंदर सिंह की बाईं हथेली पर चाय से भरा कटोरा ही था।

दोनों खिलाड़ियों ने दो मोहरे आगे कर लिए। फजल हक़ के आगे इलमदीन और सुंदर सिंह के आगे सज्जन सिंह। सारा दिन वे आसपास के गांवों में धर्म और दीन की दुहाई देते फिरते और रात को उनकी रसोई में आकर हाथ साफ करते। दोनों घरों में दिन के डाकू घुसकर दोनों हाथों लूटने लगे।

तीसरा चतुर खिलाड़ी बहुत पीछे बैठा हुआ था, परदे की ओट में। इसलिए वह किसी को नजर नहीं आ रहा था।

बकरीद का दिन आ गया। दोनों पक्षों ने दीन-ईमान के नाम पर बीस हजार पगड़ीधारी इकट्ठे कर लिए। आधे एक तरफ, आधे दूसरी तरफ। छुरियां, कृपाणें और बर्छियां चमकने लगीं।

खबर पाकर पुलिस भी आ गई। एस. आई. जरनैल सिंह के मातहत दो ए. एस. आई. शफी मुहम्मद और रूपचंद दस सिपाहियों की गारद लेकर आ धमके। उन्होंने शहतूतों वाले कुएं पर मोर्चा जमा लिया। तीनों थानेदारों के लिए तीन चारपाइयों पर खुंबी जैसी सफेद चादरें बिछ गईं। बिशन दास बनिए के घर से मेज-कुर्सियां भी आ गईं। पुलिस के मुसलमान कर्मचारियों के लिए इलमदीन के घर में और हिंदू-सिखों के लिए सज्जन सिंह के घर में मुर्गे पकाए जाने लगे। उनका फर्ज भी था आई हुई पुलिस की सेवा करना। साथ ही, वे नंबरदार भी थे और इस 'धर्म-युद्ध' की जड़ भी।

कुएं के पच्छिम की ओर सिख और पूरब की तरफ मुसलमान 'शहादत' प्राप्त करने के लिए झुंड बनाए खड़े थे। दोनों दलों में मुश्किल से सौ कदम का फासला था। बीच में 'शांति की रक्षक' पुलिस बड़ी बेफिक्री से बैठी हुई थी। लेकिन वह अपने काम के प्रति उदासीन नहीं थी। बड़ा थानेदार जरनैल सिंह कुर्सी पर डटा बैठा था। उसके सामने मेज पर कुछ कागज-पत्तर बिखरे पड़े थे। उसके मातहत दोनों पुरजे बड़ी तेजी से हरकत कर रहे थे। कभी रूपचंद सज्जन सिंह को इशारा करके एक तरफ ले जाता। दस-पंद्रह मिनट अलग खड़े होकर वे खुसर-पुसर करते रहते। फिर रूपचंद सारी बातचीत का निचोड़ जरनैल सिंह के कान में जा फूंकता। फिर शफी मुहम्मद इलमदीन को एकांत में ले जाता। लोगों तक उनके बीच हो रही बातें तो न पहुंचतीं, लेकिन हिलते हुए सिर जरूर नजर आते। इस तरह सलाहों में ही दोपहर ढल गई, मगर दोनों धड़ों की 'सुलह' या 'लड़ाई' की बात का कोई निबटारा न हो सका।

पेशी की नमाज का समय हो गया। मौलवी का इशारा पाकर मुसलमान आधा खेत और पीछे हटकर पंक्तियां बनाकर खड़े हो गए। जिसने उम्र भर कभी नमाज नहीं पढ़ी थी, आज वह भी मौलवी के पीछे हाथ बांधकर खड़ा हो गया। नमाज से फारिग होकर वे फिर पहलेवाले मोर्चों पर आ डटे।

दिन ढलता देख खिलाड़ियों को बड़ी चिंता होने लगी। अपनी फौज के पीछे छिप कर बैठा हुआ फजल हक़ लोगों के सामने प्रकट हुआ। आगे जाकर उसने शफी मुहम्मद

को इशारे से एक तरफ बुलाया। एक मिनट उसके कान में कुछ फूंककर वह फिर अपने सुरक्षित स्थान पर चला गया। शफी मुहम्मद ने वह दो-हरफी रिपोर्ट अपने अफसर जरनैल सिंह तक पहुंचा दी। इतने में ही कोई तय किया हुआ फैसला हो गया।

पंद्रह मिनट बीतते-न बीतते वह सजी हुई गाय मुसलमान दल के सामने भीड़ के बीच आ गई। सब समझ गए कि अब क्या होनेवाला है। पूरब की तरफ से किसी की खरखरी आवाज आई—"नारा-ए-तकबीर-अल्ला हो अकबर।" दस हजार मुसलमानों की मिली-जुली आवाज से गांव की दीवारें थरथरा उठीं।

गाजियों की ललकार सुनकर धर्म के पुजारी कैसे चुप रह सकते थे। दूसरी तरफ से भी 'सत्‌श्री अकाल' के जयकारों से धरती कांपने लगी।

गांव की स्त्रियां, जो सुबह से भूखी-प्यासी छतों की मुडेरों पर जमी बैठी थीं, उठ खड़ी हो गईं। उनकी छाती धड़क रही थी, दिल घबरा रहा था। वे सहमी हुई गाजियों और सूरमाओं के दलों की ओर देख रही थीं। उनकी अंतड़ियों में बल पड़ रहे थे। उजड़ना उन्हीं को था। किसी का सुहाग, किसी का भाई और किसी का बेटा इस 'धर्मयुद्ध' की भेंट चढ़ जानेवाला था।

"या अली।"

"नारा-ए-तकबीर।"

"बोले सो निहाल।"

"सत्‌श्री अ-का-ल।"

खून की प्यासी बर्छियां, कृपाणें और तलवारें चमकीं। कुछ बेफिक्र और कुछ सहमे हुए कदम आगे बढ़े। दोनों दलों के बीच की दूरी कम होने लगी। भूखी मौत अपनी मर्जी के शिकार ताकने लगी।

और पुलिसवाले अपनी जगह पर मस्त बैठे थे। वे थे 'शांति के रखवाले'। उन्हें क्या जरूरत थी कि वे 'जनता' के 'लड़ाई-झगड़े' में दखल देते।

ठीक इसी समय वरना की दिशा से बाबा अकाली भागता आता नजर आया। वह कंधेवाला दो गज का, पीले रंग का गमछा दाहिने हाथ में लिए बांह ऊंची किए उसे हिलाता आ रहा था। जैसे वह किसी मूरख को अपने ही घर को आग लगाने से रोक रहा हो।

दोनों दलों के बीच का फासला मुश्किल से बीस-पच्चीस कदमों का ही रह गया था कि बाबा अकाली दोनों के बीच पहुंचकर सीना तानकर खड़ा हो गया।

"ओए सज्जन !ओए इलमे !' हांफता हुआ बाबा अकाली दोनों बांहें फैलाकर गरजा। "क्या हो गया रे, तुम्हारी मति को ? क्यों अकल पर पर्दा पड़ गया ? अरे, तुम एक ही पुरखे बाबा यात्री की औलाद। एक ही लहू। फिर कौरवों-पांडवों की तरह आपस में लड़ कर कुल का नाश करने पर क्यों तुले हो ! और लड़ते किस बात पर हो ? पशुओं से चिढ़कर ? कभी गाय ने इस तरह दल जमा कर के सुअरों पर हमला किया है ? या सुअरों

की फौज ने गऊओं पर धावा बोला है ? पशु आपस में कभी नहीं लड़े। और पशुओं पर चिढ़कर लड़नेवाले तुम लोग क्या हुए ? हट जाओ पीछे" बाबा अकाली दोनों दलों को पीछे हटने के लिए हाथों से इशारे करने लगा।

"यह कौन है ओए ?" जरनैल सिंह ने कुर्सी से उठकर अपने मातहतों से पूछा। वह नया-नया कसूर के थाने में आया था। इसलिए वह बाबा अकाली को नहीं जानता था। "यह तो वही बात हुई—बेगानी बरात में अहमक नाचे। निकालो इस बुड्ढे को बाहर।" उसने थानेदाराना रौब से गरजकर बोला।

"बेगानी बरात ? मेरे लिए ये बेगाने ? मेरा तो ये लहू और मांस हैं।" बाबा अकाली ने दो कदम थानेदार की तरफ बढ़ाते हुए कहा— "और अहमक मैं नहीं, अहमक तुम लोग हो, तुम, जो इनको लड़वाकर तमाशा देखना चाहते हो।"

"पकड़ लो इस बुड्ढे को।" थानेदार दाईं बांह ऊंची करके गरजा।

पास खड़े रूपचंद ने जरनैल सिंह को समझा दिया कि बाबा अकाली कौन है ? उसके साथ उलझना पुलिस को बहुत महंगा पड़ सकता है। सो, समय की नजाकत को देखकर जरनैल सिंह सारा गुस्सा अंदर ही अंदर पी गया।

"और यह बात अहमकों से कम हैं ?" बाबा अकाली ने और भी रोष में आकर कहा। "बेगाने घर में आग लगाकर तमाशा देखना किसी अहमक का नहीं, शैतान का काम है। और सबसे बड़े अहमक हैं ये"—बाबा अकाली ने दोनों दलों की तरफ हाथ बढ़ाकर कहा। "ओ सज्जन ! ओ इलमे ! लड़ो ! पुलिस कहती है, जल्दी लड़ो। तुम्हारा लहू बहेगा, तो इनके घर में गोश्त पकेगा। तुम्हारी जमीनें बिकेंगी, घर कुर्क होंगे, इनकी कोठियां बनेंगी। तुम्हारी विधवाएं रोएंगी, इनके घर में रेडियो बजेंगे। सुन लिया ? अरे, तुम्हें शर्म नहीं आती आपस में लड़ते ? तुम साथ-साथ जनमे-पले, साथ-साथ खेले, साथ-साथ खाया-पीया, आज बर्छिया पकड़कर आमने-सामने आ खड़े हुए। क्यों, तुम्हारा खून सफेद हो गया है ? न हटना हो, तो पहले मुझे मारो। मार ओए सज्जन ! मेरी छाती में बर्छी मार ! फिर मेरी लाश पर पांव रखकर आगे बढ़। दूसरी तरफ तू मार रे इलमे ! सबसे बड़ा काफिर मैं हूं, जो तुम्हें लड़कर मरने नहीं दे रहा है। कैसे लड़ने दूं मैं ? कौन है जो अपने भाइयों, भतीजों और बच्चों का लहू बहता देख बरदाश्त कर सकेगा ? तुम सब मेरे बच्चे हो। मेरी गोद खाली मत करो, रे। मैं जीते-जी तुम्हें लड़ने नहीं दूंगा—नहीं लड़ने दूंगा।"

अथाह जोश में बोलते-बोलते बाबा अकाली हांफ गया। सांस उसकी खाल में समा नहीं रही थी। वह लंबी-लंबी सांसें लेकर अपने आपको संयत करने लगा।

दोनों पक्षों में मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। कोई ऊंची सांस तक नहीं ले रहा था। ऐसा लगता था जैसे किसी ने जलती हुई आग पर पानी डाल दिया हो। बाबा अकाली का लोगों पर बड़ा प्रभाव था।

"सज्जन सिंहा। बर्छी नीचे झुका ले। तू मेरा बेटा है। इस वक्त तुम सब मेरे बच्चे हो। मेरे प्राण हो। हट जाओ पीछे। भाई को मारकर जीत प्राप्त करने से उसके आगे झुककर

हार जाना बहुत बड़ी जीत है। जाओ, बुड्ढे बाबा की दुआएं लो।"

सज्जन सिंह ने बर्छी झुका ली। उसने आसपास झांक कर देखा, मानो साथियों की राय पूछ रहा हो।

"बाबा अकाली। यह धर्म का"—जत्थेदार सुंदर सिंह ने पहली पांत से आगे बढ़ते हुए कहा।

"चुप बैठ ओए।.. ठेकेदार धर्म का !' बाबा अकाली ने सुंदर सिंह की बात को बीच में ही टोकते हुए कहा। "मैं तो तेरे पोतड़ों का जानकार हूं। अपना गांव उजाड़कर शांति नहीं मिली कि अब मेरा गांव उजाड़ने आया है ? निकल यहां से, नहीं तो मैं तेरी सारी करतूतें बयान कर दूंगा।"

बाबा अकाली की एक फटकार सुनकर ही सुंदर सिंह पीछे भीड़ में कहीं गुम हो गया।

"बाबा अकाली ! अच्छा...।" इलमदीन वाक्य पूरा नहीं कर सका। बर्छी झुकाकर वह पीछे मुड़ गया।

"शाबाश, मेरे बच्चो। तुमने बुढ़ापे में मेरी लाज रख ली। वाहेगुरु तुम्हें सुमति बख्शे। आज मुझे मेरी सारी कुरबानी का मोल मिल गया"— बाबा अकाली ने बहुत बड़ी जीत महसूस करते हुए कहा।

एक आदमी ने इलाके को उजड़ने से बचा लिया। लोग हथियार बगल में दबाकर अपनी-अपनी राह चल दिए। पंद्रह मिनट में मैदान खाली हो गया।

धन्ने शाह का यह भरपूर वार खाली गया। फिर भी वह निराश नहीं था। सज्जन सिंह के सिर उसका नया ऋण पांच सौ के लगभग हो गया था।

तीस

"इलमदीना ! घर में ही है ?" बाबा अकाली ने दरवाजे में खड़े होकर ही आवाज दी।

"आ बाबा अकाली ! आ जा।" इलमदीन ने आवाज पहचानकर स्वागत के लिए उठते हुए कहा। "अलिए ! बाबा के लिए खटिया बिछा ओए !"

अलिए ने खाट बिछा दी। बाबा अकाली तेजी से—अपनों की तरह—खाट पर आ बैठा।

"आ बाबा अकाली।" इलमदीन ने निकट आकर रस्मी तौर पर कहा।

"ओ, मेरे पास बैठ जा।" बाबा अकाली ने इलमदीन का हाथ पकड़कर अपने पास खाट पर बिठा लिया— "बेटे इलमदीन, कल तूने मेरी सफेद दाढ़ी की लाज रख ली"—

बाबा ने बड़े प्यार से उसकी पीठ सहलाते हुए कहा— "मैं तेरा धन्यवाद करने के लिए आया हूं।... मैं पिछले चार-पांच दिन से गांव से बाहर गया हुआ था। वरना शायद यह बात यहां तक न पहुंचती।...मुझे कल वापस आते वक्त वरना में खबर मिली। मैंने वहीं से भागना शुरू किया। भला जिसके घर में आग लगी हो, वह रुक भी सकता है।... फिर भी... फिर भी परमात्मा ने मेरी पत रख ली।" बाबा अकाली सांस लेने के लिए रुक गया।

इलमदीन धरती की तरफ आंख झुकाए, पांव से भुईं पर लकीरें खींच रहा था। उसे सूझ नहीं रहा था कि वह क्या उत्तर दे।

इसी बीच जैना ने आकर बाबा अकाली का चरण-स्पर्श किया।

"सुखी रह, बेटी !रब तुझे खुश रखे"—बाबा ने उसके सिर पर प्यार देते हुए आशीर्वाद दिया।

"बावाजी !हमारे लिए तो आप ही रब हैं। कल आपने हमें उजड़ने से बचा लिया। नहीं तो, अल्ला जाने, क्या होनी हो जाती"—जैना ने घूंघट की ओट से कहा। पिछले दिन की होनी को याद करके उसका कलेजा अभी तक कांप रहा था।

"बेटे !मैं अपने बच्चों को आपस में लड़ते हुए कैसे देख सकता था ? कोई भी... हां, कोई भी पिता यह नहीं सह सकता। बेटे का लहू बहता देखने के डर से तो, कहते हैं, हजरत इब्राहिम ने भी आंखों पर पट्टी बांध ली थी। तुम सब भी मेरे बच्चे हो। नहीं तो बताओ, मेरा और कौन है ?" बाबा अकाली ने पहले जैना की तरफ और फिर पास बैठे इलमदीन की तरफ देखा— "हां, तुम्हीं मेरे बच्चे हो, सब मेरे बच्चे—" उसने बड़े धीमे स्वर में कहा, जैसे वह अपने आपसे कह रहा हो।

जैना की देखादेखी फतेह बीबी और सराज बीबी ने भी आकर बाबा अकाली के पांव छुए। बाबा ने भी दोनों का सिर सहलाते हुए आशीर्वाद दिया। गांव की सारी बहुएं बाबा अकाली का सत्कार करने के लिए उसके पांव छूती थीं।

इतनी देर में पत्ती के दो-चार और आदमी भी आ गए। उन्होंने बाबा अकाली को इलमदीन के घर में घुसते देखा था। अलिए और करमदीन ने तीन-चार और चारपाइयां बिछा दीं। आनेवाले आदमी हाथ उठाकर बाबा अकाली को सलाम करके चारपाइयों पर बैठते गए। वहीं पंचायत जुड़ गई। "बाबा अकाली !" इलमदीन ने खंखारकर गला साफ करते हुए कहना शुरू किया— "हम तुम्हारा लिहाज करके पीछे हट गए। तुम्हारी कही हमने सिर-माथे पर लगाकर मान ली। पर सज्जन सूंह ने हमारे साथ बंदों जैसी नहीं की थी। कुआं हम दोनों का साझा है। पिछले साल की याद है न ? उसे इस हद तक नहीं जाना चाहिए था"—बाबा के सामने उसने अंदर इकट्ठा हुआ सारा गुबार प्रकट कर दिया।

"इलमदीन बेटे, मुझ पर विश्वास कर। वह काम सज्जन सूंह का नहीं था। वह मेरे बदन पर हाथ रखकर कसम खा गया था। उसका गुनाह होता तो वह मेरे सामने मुकर नहीं सकता था। मेरा खयाल है, वह करतूत तुम दोनों के किसी दुश्मन की थी।

मुझे धन्ने शाह पर शक है"—बाबा अकाली ने पास बैठे लोगों की तरफ झांकते हुए कहा।

"हो सकता है, भाई"—निकट से करमदीन ने सिर हिलाते हुए कहा। बात उसे जंच रही थी।

"धन्ने शाह की आंख बड़ी देर से इस कुएं पर लगी हुई है। उसने सोची-समझी चाल के अनुसार तुम दोनों को कर्ज देना शुरू किया। आधा कुआं तो वह एक तरह से ले ही गया। बाकी का आधा वह हर कीमत पर हासिल करना चाहता है। वह इन दोनों को लड़वाकर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। ये लड़ेंगे, मुकदमे करेंगे, तो उसकी हर शर्त मानकर उससे कर्ज लेंगे। इस विचार के आधार पर मैं कहता हूं कि यह सारी शरारत धन्ने शाह की हो सकती है। बगल में बैठा दुश्मन लपट लगा देता है। और हम बिना सोचे-समझे लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं।"

"बाबा अकाली ! तेरी यह दलील तो सबके दिल लगती है"—पास बैठे पीरबख्श ने सहमति जताई।

"मुंह पर तारीफ नहीं कर रहे हैं...कल तो, बाबा अकाली, तूने बचा लिया। वरना सारा गांव उजड़ गया होता। अब तक घर-घर में विलाप हो रहा होता।"

"अरे भाई, उकसानेवालों का क्या गया होता ? मरे तो हम होते !"

"आग लगानेवालों का क्या है। कहते हैं न—आग लगाई और कुत्ता दीवार पर"—आसपास बैठे लोगों में से अनेक की आवाजें आईं। दिल से सब बाबा अकाली का एहसान मान रहे थे।

"ज्यादा हैरानी इस बात की है कि ये दोनों गहरे दोस्त होते हुए भी दुश्मन कैसे बन गए। चंदा सूंह और चरागदीन की सारी उमर भाइयों की तरह निभ गई। फिर इन दोनों के बीच भी कहीं सूई तक नहीं निकल सकती थी। प्याले के यार थे दोनों। पता नहीं किसने दोनों के बीच सेह का कांटा टांग दिया।" बाबा अकाली ने दुख में सिर धुनते हुए कहा।

"बस लंबरदारी ने मार दिया।"

उमरदीन की बात सुनकर इलमदीन ने उसकी तरफ देखा। उसके जी में आया कि वह कह दे— "धन्ने शाह ने ही उकसाकर मुझसे दरख्वास्त दिलवाई थी।" मगर वह शर्म के मारे कह न सका।

"हां, तेरी राय ठीक है, उमरदीन"—बाबा अकाली ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा— "ऊपर से धर्म और दीन की दुहाई देनेवालों ने सुलगती हुई आग को हवा दे-देकर लपटों में बदल दिया। ये इत्तिफाक के वैरी कहीं सिख और मुसलमान का, कहीं हिंदू और मुसलमान का भेद खड़ा करके लोगों को लहू से नहलवाते हैं। जरा सोचो, मजहब बदल जाने से खून तो नहीं बदल जाता। मैं वधावा सिंह का बेटा करम सिंह हूं। अगर मैं करम सिंह के बदले करमदीन या करमचंद बन जाता, तब भी बेटा तो वधावा सिंह का ही रहता। बाप तो नहीं बदल सकता था न।"

बाबा अकाली के अकाट्य तर्क के सामने सबने सिर हिलाया।

"हम सब के सब बाबा यात्री की संतान हैं। फिर हम बर्छियां-गंडासे लेकर आपस में क्यों लड़ें ?" बाबा अकाली ने आंखों में प्रश्न लिए सबकी तरफ देखते हुए पूछा— "गदर आंदोलन में हममें से कोई कहीं का था, कोई कहीं का। हम सब इकट्ठे खाते-पीते थे। हममें हिंदू, सिख, मुसलमान का कोई भेद नहीं था। फिर जलियांवाला बाग में हिंदुओं, सिखों, मुसलमानों, ईसाइयों का, सबका इकट्ठा लहू बहा था। कांग्रेस में सब इकट्ठे काम करते हैं। और यह अभी कल की बात है—आजाद हिंद फौज की। उनका तो सबका लंगर ही इकट्ठा होता था। यह अखबारों में तुम लोग कर्नल शाह नवाज, कर्नल सहगल, कर्नल ढिल्लों तीनों का इकट्ठा जिक्र पढ़ते हो न हर रोज। एक मुसलमान, एक हिंदू, एक सिख। और तीनों सगे भाइयों से बढ़कर। फिर हमें क्या रोग है ? हम क्यों आपस में लड़ते हैं ?" जोश में बाबा अकाली की आवाज जरा ऊंची हो गई।

"बाबा अकाली ! हमने आपस में लड़ना-झगड़ना छोड़ दिया"—उमरदीन ने सबकी तरफ से हामी भरते हुए कहा— "चाहे तो हमसे कसम ले ले। तू आजाद हिंद फौज की बात सुना। सुना है, सूरमाओं ने मलाया और बर्मा में हद ही कर दी थी।"

" उन लोगों की कुर्बानी लासानी है, उमरदीन।" बाबा अकाली के स्वर में अथाह श्रद्धा थी— "और अगर सच पूछो, तो उनकी कुर्बानियों के सदके ही हमारा देश आजाद हो जाएगा। अब अंगरेज हमें ज्यादा देर गुलामी में जकड़कर नहीं रख सकते।" आधा-एक मिनट दम लेकर उसने फिर बोलना शुरू किया : "आज दिल ठीक नहीं है। फिर भी मैं थोड़ी-बहुत बात सुनाता हूं तुम्हें। सुभाषचंद्र बोस का नाम तो हम सब जानते ही हैं। वह बंगाली था। उसके पिता जानकीनाथ बहुत बड़े वकील थे। उनकी कामना थी कि सुभाष पढ़-लिख कर बहुत बड़ा अफसर बने। सुभाष ने विलायत जाकर आई सी एस का इम्तहान पास किया। लेकिन वापस देश आकर वह अंगरेजी सरकार का अफसर बनने के बजाय कांग्रेस का लीडर बन गया। वह कई बार जेल गया। आखिरी बार वह सन चालीस के खत्म होने के कुछ ही दिन पहले जेल से रिहा होकर आया। तब जर्मन युद्ध काफी जोरों पर था। अगला साल लगते ही (23 जनवरी, 1941) वह घर से गायब हो गया। बाद में पता चला कि सुभाष बाबू और सोढ़ी हरमिंदर सिंह पठानों का भेस धरकर काबुल जा पहुंचे। वहां से सुभाष जर्मनी के शहर बर्निल जा पहुंचा।"

"रेल से ?" उमरदीन ने हुंकारा भरने के खयाल से सवाल कर दिया। चुप रहकर सुनने से बात ज्यादा आनंद नहीं देती।

"नहीं, काबुल और बर्निल के बीच रेल नहीं है। वहां वह हवाई जहाज से गया था। वहां हिटलर से उसकी मुलाकात हुई। हिटलर ने हिंद में आजादी की लड़ाई लड़नेवालों की मदद का भरोसा दिलाया। फिर सुभाष इटली जाकर वहां के नेताओं से मिला। इटली में ही उसने पहले-पहल आजाद लीग बनाई। कुछ समय वहां रहकर फिर जर्मनी वापस चला गया और आजाद हिंद फौज खड़ी की। बताते हैं, उसकी दस-बारह हजार फौज फ्रांस

में अंगरेजों के खिलाफ लड़ती रही। सन बयालीस की फरवरी में (15 फरवरी) सिंगापुर पर जापानियों का कब्जा हो गया। जुलाई की शुरुआत में (2 जुलाई) सुभाष सिंगापुर आ गया।"

"वह जर्मनीवाली फौज लेकर ?' उमरदीन ने उत्सुकतावश पूछा।

"नहीं, सिंगापुर में अलग आजाद हिंद लीग बनी थी (मार्च, 1942)। उसका प्रधान रासबिहारी बोस था। साथ ही आजाद हिंद फौज भी बनी जिसका सेनापति जनरल मोहन सिंह बना। अगले दिन सिंगापुर में आजाद हिंद लीग के सारे डेलीगेटों की कॉन्फरेंस हुई। रासबिहारी बोस ने कान्फरेंस में ऐलान किया कि अब उसकी जगह सुभाष चंद्र बोस लीग के प्रधान होंगे। जुलाई में आकर सुभाष ने प्रधान पद संभाल लिया।" जापानियों ने बर्मा को फतेह कर लिया, तो सुभाष आजाद हिंद फौज का हेडक्वार्टर सिंगापुर से रंगून ले आया। रंगून में उसने जो पहली तकरीर की, उसे सुनने के लिए हजारों लोग आए हुए थे। सुभाष को सब लोग नेताजी कहा करते थे। उसने लोगों को ललकारकर कहा—"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा"। इस बात का लोगों पर इतना असर पड़ा कि बस, कुछ मत पूछो। लोगों ने अपने लहू से दस्तखत करके दिए। हर जवान हिंदुस्तानी बड़े चाव से आजाद हिंद फौज में भर्ती हुआ। बताते हैं, नेताजी की फौज सत्तर-अस्सी हजार हो गई थी।"

"वाह !यह होती है आजादी की लगन।"—किसी श्रोता की मद्धिम-सी आवाज आई।

'नेताजी ने जापानियों से कहा कि तुम हमें हथियारों और राशन की मदद दो, मगर हिंदुस्तान में आगे बढ़कर लड़ेंगे सिर्फ हम। तुम्हारी फौज भारत में दाखिल नहीं हो सकेगी। इस बात पर जापानी अंदर से कुछ नाराज हो गए।"

"उनका यह इरादा होगा कि अंगरेजों की जगह हम मुल्क पर कब्जा कर लेंगे"—उमरदीन ने बात का भाव समझते हुए अपनी राय पेश की।

"भई, गरीब के फूटे हुए घर पर कब्जा जमाने के लिए हरेक का जी ललचा जाता है। जापानियों की चाल नेताजी ताड़ गए। लेकिन सुघड़ नीतिवानों की तरह उन्होंने मुंह से कुछ नहीं कहा। उन्होंने अपने जरनैलों को भारत पर हमला करने का हुक्म दे दिया। कर्नल शाहनवाज और कर्नल सहगल साठ-सत्तर हजार की फौज लेकर आगे बढ़े। उन्होंने मरते-मारते आगे बढ़कर इंफाल शहर पर घेरा डाल दिया। बताते हैं, वहां अंगरेजों की दो लाख फौज है। कई जगह डटकर लड़ाई हुई। जब नेताजी के जरनैल 'जय हिंद' का नारा लगाते थे तो जवानों की बांहें जोश से फड़कने लगती थीं। उनकी आंखों के सामने नेताजी की तस्वीर आ जाती थी। यह जय हिंद का नारा उन्होंने ही कौम को दिया था। और दूसरा नारा था फौजियों का—'चलो दिल्ली।' अंगरेजों को दिल्ली से निकालकर वो वहां देश का झंडा गाड़ना चाहते थे।" बाद में जापानियों ने राशन और हथियार भेजना बंद कर दिया।"

"ओह ! मित्रघात किया उन्होंने।"

"अरे यह कहो कि मुंडेर पर चढ़ाकर नीचे से सीढ़ी खींच ली।"

ये अफसोस-भरी आवाजें कुछ श्रोताओं की थीं।

"इसके बावजूद सूरमा साल भर लड़ते रहे। इधर अंगरेजों ने अपने मोर्चे मजबूत कर लिए। ऊपर से मौसम बड़ा खराब हो गया। पहाड़ी इलाका। आजाद हिंद फौज के पास न पूरे हथियार और न ही खाने को राशन। भूखे पेट जवान कब तक लड़ सकते थे ! साथ ही अपनी हार पास आई समझकर बर्मा से जापानियों ने भागना शुरू कर दिया। नेताजी की फौज बहुत बुरी जगह फंस गई। कोई पेश न चली, तो अंत में कर्नल सहगल की फौज ने अप्रैल (1945) में हथियार डाल दिए। भूखे-प्यासे सूरमा अंगरेजों के कैदी बन गए। उसी महीने जापानी रंगून को खाली करके भाग गए। अगले महीने (3 मई को) अंगरेज रंगून में दाखिल हो गए। वहां उन्होंने कर्नल शाहनवाज को गिरफ्तार कर लिया। रंगून छोड़कर नेताजी सिंगापुर चले गए। वहां से वे जापान के लिए उड़े, तो रास्ते में जहाज में आग लग जाने से वे उसमें जलकर शहीद हो गए (16 अगस्त 1945)। पर कई लोगों का विश्वास है कि नेताजी अभी तक जिंदा हैं और हिंदुस्तान के आजाद हो जाने के बाद वे देश में वापस आ जाएंगे। यह है अपने देश के लिए लड़ने-मरनेवाली आजाद हिंद फौज की कहानी। असल में...असल में आज मैं बातें करने की रौ में नहीं था। किसी और दिन यह कथा सुनते, तो...। सारी रात मुझे नींद नहीं आई थी। मैं एक ही बात सोचता रहा कि अगर फसाद हो जाता, तो... परमात्मा ने बचा लिया। अब भी दिल डरता है। कुछ।" आखिरी बात कहकर बाबा अकाली ने सबकी तरफ झांककर देखा।

"बाबा अकाली, तूने हमारी आंखें खोल दी हैं। अब हमें कोई चाहे कितना ही उकसा ले, हम आपस में नहीं लड़ेंगे"—उमरदीन ने सबकी तरफ से फैसला सुना दिया।

"क्यों बेटे इलमदीन !' बाबा अकाली ने इलमदीन की ओर देखते हुए कहा। उसकी स्वीकृति बाबा को बहुत जरूरी लग रही थी।

"बाबा अकाली !' इलमदीन ने खंखारते हुए कहा— "मेरी तरफ से यकीन रख। मैं अब किसी की बात में नहीं आऊंगा। सज्जन सूंह से तो मैं मिलूंगा नहीं। मैं अपनी शर्म से ही मरा जा रहा हूं। कौन-सा मुंह लेकर उसके सामने जाऊं ? बाकी सारा वैर-विरोध मैंने छोड़ा। तू गुरुओं-पीरों की जगह है। मेरी कोई बात सुनने में आए तो बेशक मुझे नीची जगह बिठा लेना। और बता ?" इलमदीन ने आखिरी वाक्य बाबा अकाली की आंखों में झांकते हुए बोला।

"रब तेरा भला करे, बेटे इलमदीन ! इस वक्त मेरी आत्मा हजारों दुआएं दे रही है। और यह जो तू सज्जन सिंह के सामने न आने की बात कह रहा है, आज न सही, वक्त बीतने पर तुम पहले की ही तरह भाइयों जैसे गलबैयां डालकर मिलोगे। तुम दोनों ज्यादा दिनों तक दूर-दूर नहीं रह सकते। अच्छा, मैं बहुत खुश होकर जा रहा हूं। मेरे आने पर तुमनें मेरा मान रखा, अल्ला तुम्हें खुश रखे"—कहते हुए बाबा अकाली चारपाई से उठ खड़ा हुआ।

इकत्तीस

उन्नीस सौ छयालीस के मार्च महीने में सारे देश में असेंबली चुनाव हुए। इन चुनावों में हर संप्रदाय को अपने-अपने हिस्से में आनेवाले मेंबरों को चुनना था। सो, चुनाव के बहाने पंथ, धर्म और दीन का बहुत प्रचार हुआ। मगर इस धर्म-प्रचार में जो सफलता मुस्लिम लीग को प्राप्त हुई, और किसी संगठन को नहीं हुई। लीगी लीडरों ने मुसलमानों को यकीन दिला दिया कि पाकिस्तान बनने का सारा दारोमदार इस चुनाव पर है। इस चुनाव-घमासान का वास्तविक नतीजा यह निकला कि मुसलमान बाकी हिंदुओं से बहुत दूर हो गए।

जिम्मेदार अंगरेज अगुआओं के बयानों से सिद्ध हो गया था कि वे बहुत जल्दी हिंदुस्तान को छोड़ जाना चाहते हैं। सवाल सिर्फ यह था कि वे राज-प्रबंध किस ढंग से किसके हवाले करके जाएं।

चुनावों के कुछ ही समय बाद वर्तानवी सरकार ने एक मंत्री-मिशन (कैबिनेट मिशन) भारत भेजा। उसके तीन सदस्य थे : लार्ड पैथिक-लॉरेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और एच. वी. अलेग्जेंडर। वे 23 मार्च, 1946 को भारत पहुंचे। उन्होंने जो राज-पद्धति भारतीय नेताओं के सामने पेश की, उसे कैबिनेट मिशन स्कीम का नाम दिया गया। उस स्कीम के द्वारा हिंदुस्तान में धर्म के आधार पर तीन फिरके माने गए : मुसलमान, सिख और बाकी सब (हिंदुओं में शामिल)। साथ ही स्कीम में भारत को भी तीन हिस्सों में बांटा गया। पहला 'ए' ग्रुप, जिसमें मद्रास, बंबई, बिहार, उड़ीसा, यू. पी. और एम. पी.—छह प्रांत थे। दूसरा 'बी' ग्रुप, जिसमें पश्चिमी भारत के चार प्रांत (पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान और सरहदी सूबा) थे। तीसरे 'सी' ग्रुप में बंगाल, असम और अन्य प्रांत शामिल किए गए। इस तरह पहला हिस्सा हिंदुओं के और दूसरा-तीसरा मुसलमानों के अधीन हो जाता था। मेंबरों की गिनती इस तरह निश्चित की गई—पहले ग्रुप में बीस मुसलमान और एक सौ सड़सठ हिंदू। दूसरे में बाईस मुसलमान, चार सिख और नौ हिंदू। तीसरे में छत्तीस मुसलमान और चौंतीस हिंदू। बयानवे मेंबर देशी रियासतों के होंगे। कुछ मेंबर दिल्ली, अजमेर, मारवाड़ आदि के और होंगे। इस तरह सारे भारत के कुल मेंबर 381 होंगे। उस बड़ी (या साझा) कौंसिल के अधीन सिर्फ तीन विभाग होंगे—सेना, डाक और यातायात के साधन। बाकी सभी महकमे अलग-अलग ग्रुपों के हाथ में होंगे। मतलब यह है कि सारे भारत का एक साझा केंद्र, जिसके अधीन केवल तीन विभाग। और उसके नीचे स्वायत्त विभाग। केंद्र में मुसलमानों को वीटो का अधिकार देकर उसमें हमेशा के लिए फूट का कारण पैदा कर दिया गया।

बीच के समय के लिए (जब तक यह नई कौंसिल राज-प्रबंध न संभाल लेती) एक कामचलाऊ सरकार बननी थी। उसमें पांच मेंबर कांग्रेस के, पांच मुस्लिम लीग के एक सिख और एक अछूत रहना था।

मुस्लिम लीग ने सारी स्कीम मान ली। कांग्रेस ने कामचलाऊ सरकार में हिस्सा लेना स्वीकार नहीं किया और बाकी सारी स्कीम मान ली। सिखों ने सारी स्कीम रद्द कर दी। कामचलाऊ सरकार में शामिल होना कांग्रेस को मंजूर नहीं था, इसलिए अंगरेजों ने स्कीम का उतना हिस्सा छोड़ दिया। इस बात से चिढ़कर मुस्लिम लीग ने सारी स्कीम नामंजूर कर दी। साथ ही मुस्लिम लीग ने सोलह अगस्त को डायरेक्ट एक्शन (सीधी टक्कर) शुरू करने की घोषणा कर दी।

सोलह अगस्त का नामुराद दिन आ पहुंचा। मुस्लिम लीग ने घातक शस्त्रों के साथ कलकत्ता में जुलूस निकाला। 'अल्ला हो अकबर' और 'या अली' के नारों के साथ मुसलमान गाजी 'ले के रहेंगे पाकिस्तान' और 'जैसे लिया था हिंदुस्तान, वैसे लेंगे पाकिस्तान' जैसे भड़काऊ नारे भी लगा रहे थे। मतलब यह कि मुस्लिम लीगी लीडर जो कुछ चाहते थे, वह हो गया। सांप्रदायिक दंगे। दस-बारह दिनों में ही कलकत्ता उजाड़ हो गया। दोनों तरफ के बीस हजार लोग मारे गए। इससे कई गुना अधिक जख्मी हो गए। दुकानें लूटी गईं। घर जलाए गए। और देश की निर्दोष बच्चियों की इज्जत लूटी गई। आर्थिक नुकसान का अंदाजा दो-सवा दो अरब का है।

कलकत्ता के बाद नोआखाली, और उसके बाद बिहार की बारी आ गई। इंसान ने शैतान का रूप धारण कर लिया। भाई, भाई का वैरी बन गया। पूरब में लगी आग प्रचार रूपी हवा से पच्छिम की ओर भी पहुंच गई। दिसंबर में हजारा (सरहदी सूबा) में फसाद शुरू हो गए। जब दोनों दिशाएं जल रही हों तो बीच का हिस्सा उसकी सेंक से कैसे बच सकता है ? मार्च 1947 में सारे पंजाब में लपटें भड़क उठीं। लाहौर, अमृतसर, रावलपिंडी, कैमलपुर, जेहलम, मुलतान, जालंधर, गुड़गांव आदि सब जगह भाइयों के लहू से होली खेली जाने लगी। खून के रिश्ते खत्म हो गए। बरसों की दोस्ती देखते ही देखते दुश्मनी में बदल गई। समूचा देश जल उठा।

अंततः इस खून-खराबे से तंग आकर सारे लीडरों ने देश-विभाजन स्वीकार कर लिया। तीन जून, 1947 को हिंदुस्तान के वाइसराय लॉर्ड माउंटबेटन ने पाकिस्तान बनाए जाने की घोषणा कर दी।

बत्तीस

पाकिस्तान बनने का ऐलान हो गया। बंगाल और पंजाब के टुकड़े करना भी मान लिया गया। पश्चिमी बंगाल पाकिस्तान में और पूर्वी पंजाब भारत में जाएगा, इस विषय में किसी को शंका नहीं थी। बाकी शक था बीच के तीन जिलों गुरदासपुर, अमृतसर और लाहौर की किस्मत के बारे में। इनका कौन-सा हिस्सा किस तरफ जाए, इसका फैसला एक हदबंदी

कमीशन को करना था।

सारा पंजाब जल रहा था। मगर कसूर शहर और उसके आसपास के इलाके में शांति थी। पीरूवाला गांव का वातावरण भी ऊपर-ऊपर से शांत प्रतीत होता था। फिर भी अंदर से दिल दूर होते जा रहे थे। मुसलमानों और सिखों को परस्पर विश्वास नहीं रह गया था। वे ऊपर से तो एक-दूसरे के साथ हंसकर बोलते और व्यावहारिक बातें करते थे, लेकिन अंदर चल रही हलचल की किसी को हवा तक नहीं लगने देते थे। कहीं चार सिख खड़े होकर विचार कर रहे होते तो एक मुसलमान के आ जाने से वे अपनी बातों का रुख बदल लेते। मुसलमान बैठकर सलाह-मशविरा कर रहे होते, तो किसी एक बेगाने के आ जाने से ही विघ्न पड़ जाता। दोनों कौमों के लोग अलग-अलग विचार-विमर्श करने लगे थे। साझा कुछ भी नहीं रह गया था।

एक दिन जत्थेदार सुंदर सिंह एक निहंग सिंह को साथ लेकर आया। उसने रात को लगभग सारे सिखों को गुरुद्वारे में बुलाकर समय की नजाकत के बारे में समझाया। कुछ उसकी बातों से प्रेरित हो गए और बाकी के देखादेखी उनके पीछे हो लिए। अगले दिन से ही गांव के पच्छिम की ओर की रेती में अखाड़ा बन गया और वह निहंग सिंह गांव के अधेड़ों और जवानों को गतका और भाला चलाना सिखाने लगा। दूसरा मसला था हथियार (टकुए, बर्छियां, कृपाणें) बनाने का। यह मसला किसी होशियार लुहार की मदद से ही हल हो सकता था। मगर गांव का लुहार मियां गहना मुसलमान था। उस पर कौन विश्वास करता ? सो, यह काम वरना के सिख लुहार गरजा सिंह को सौंपा गया। वह भी धर्म का काम समझकर पूरी ईमानदारी से इसमें जुट गया।

सिखों को देखकर भला मुसलमान कैसे पीछे रहते ? उन्होंने भी पूरब की तरफ अलग अखाड़ा बना लिया। एटम बम के जमाने में वह पड़ोसियों पर छुरे चलाने का तरीका सीखने लगे। रात को नमाजें पढ़ने के बहाने वे नियम से मस्जिद में इकट्ठा होते। अल्लाह की बंदगी के लिए नहीं, पाकिस्तान बनने के बाद अपने जिम्मे आए कामों को पूरा करने के कार्यक्रम बनाने के लिए। आधी-आधी रात तक विचार-विमर्श होता रहता।

"सुनो भाई !इसमें तो अब कोई शक ही नहीं कि पंद्रह अगस्त को पाकिस्तान बन जाएगा।"

"और अपना गांव जरूर पाकिस्तान में ही रहेगा।"

"अपना गांव ही क्या, सारी कसूर तहसील।"

"फिर जैसा लीडर कहते हैं, पूरे पाकिस्तान में एक भी हिंदू या सिख नहीं रहने दिया जाएगा।"

"उनकी जमीनों और घरों सब पर हमारी मिल्कियत होगी।"

"पर कोई घर और जमीन छोड़कर चुपचाप तो जानेवाला नहीं।"

"ओए, ये छुरे और बर्छियां किसलिए हैं !जिन्हें जायदादें संभालनी हैं, वो इतना भी नहीं करेंगे ?"

"फिर धन्ने शाह तो इलमदीन के पेटे में रहा।"

"अकेला धन्ने शाह ही क्यों ? सज्जन सूंह भी। वैसे भी ये दोनों यार-बेली हैं—अपने आप निबट लेंगे।"

"भई, पहले फैसला कर लो कि कौन-सा घर और कौन-सा खेत किसके हिस्से आना है। बाद में आपस में झगड़ा न होने लगे।"

फिर आधी रात तक सिखों की जायदाद का बंटवारा किया जाता रहता। मस्जिद में नित्य इस तरह की सलाहें होती सुनकर बेचारा खुदा भागकर गहने लुहार की झुग्गी में जा घुसा।

एक दिन इस्लाम के गाजी वहां भी जा धमके। "मियां गहने ! यह दीन-मजहब का काम है। तू मौत के कगार पर जा पहुंचा है, कोई सवाब कमा ले। लड़कों को कुछ छुरे और बर्छियां बना दे।"

गहने ने आंखें बंद करके सहमे हुए खुदा की तरफ देखा, तो उसका दिल कांप उठा। उसने बड़ी आजिजी से हाथ जोड़कर इस सेवा से इंकार कर दिया।

"ओए, यह तो मूल से ही काफिर है। कभी मस्जिद जाते देखा है इसे ? अच्छा, बन लेने दो पाकिस्तान।"

गरीब गहने के कानों में सारी-सारी रात ये धमकियां गूंजती रहतीं।

मस्जिद में ही नहीं, गुरुद्वारे में भी रौनक बढ़ गई थी। डेढ़ पहर रात तक दो ढोल-मंजीरे ही खड़कते रहते। ग्रंथी अमर सिंह के पीछे-पीछे सबके सब सिंह 'शबद' पढ़ते :

'ना कोई बैरी नाहि बेगाना...'

और फिर बंटवारों की बातें होने लगतीं। "क्यों भई, दिन तो नजदीक आ रहे हैं। पहले ही फैसला कर लो कि कौन-सा आदमी किसके जिम्मे है।"

"अकेले से अकेला तो पूरा पड़ेगा नहीं। वो हमसे दुगुने होंगे।"

"ओए, सिंह तो अकेला ही सवा लाख होता है। गुरु महाराज की फौजों के सामने कौन टिक पाएगा ?"

"गुरुमुखो ! इस तरह के संकट काल में गुरु महाराज की शहीदी फौजें सिंहों की मदद के लिए आ जाती हैं। सिख को अकालपुरुष का आसरा लेकर शुरू कर देना चाहिए।"

"अच्छा, भई उसी का आसरा है। कहा है न : जिस पत राखे साइयां...।"

और 'साईं' उस वक्त बाबा अकाली के बंद दरवाजे से कान लगाए खड़ा उसकी आहें सुन रहा होता।

बाबा अकाली सारा दिन घर-घर जाकर 'गाजियों' और 'धर्मियों' को समझाता रहता और फिर सारी रात मन-ही-मन सोचते गुजार देता। उसका सबके सामने एक ही वास्ता होता : "देखना बेटे सज्जन सिंह ! बच्चू फत्ते ! मिलखा सिंह ! इलमदीन ! पीर बख्श ! शरम सिंह ! हम सब भाई-भाई हैं। भाई बनके रहना। देखना, किसी का बुरा मत ताकना। कबीर ने कहा है—'अव्वल अल्लहि नूर उपाया, कुदरत दे सब बंदे। एक नूर ते सभु जगु

उपजिया कौन भले को मंदे !...यह कबीर की वाणी है, जो न हिंदू था, न मोमिन, न सिख, बल्कि एक नेक इंसान था, रब का भगत। उसकी सुनना। मेरी न सुनना, जत्थेदार सुंदर सिंह की न सुनना, चौधरी फजल हक की न सुनना। कबीर की सुनना, कबीर की। तुम सब एक अल्लाह—अकालपुरुष के बंदे हो। अरे, तुम औलाद भी एक ही बाबा यात्री की हो। एक ही लहू। देखना कहीं...।"

और रात को लेटे-लेटे भी वह 'कहीं...कहीं' के इस भंवर से निकल न पाता।

अंततः भारत की आजादी और पाकिस्तान के जन्म का दिन आ गया। पंद्रह अगस्त को दोनों देशों के स्वतंत्र होने की घोषणा हो गई। लेकिन पंजाब की वे हदबंदी का फैसला न हुआ। पीरूवाला के वासी अपनी किस्मत के बारे में न जान सके कि पाकिस्तान की प्रजा हैं या भारत की। सारा दिन उन्होंने बड़ी उदासी में काटा। वे कसूर की तरफ से आनेवाले हर आदमी का मुंह ताकते, मगर डरके मारे पूछते कुछ नहीं। राहगीर के चेहरे के खुशी या निराशा के भावों से वे मन-ही-मन अपने अर्थ निकालते।

अगला दिन भी उसी तरह चिंता में बीत गया। आखिर सत्रह अगस्त की शाम रेडियो पर ऐलान हुआ—कसूर की तहसील बांट दी गई है। कसूर पाकि ान में और खेमकर भारत में है। पीरूवाले की चिंता अब भी न मिटी। वहां के वासी तसल्ली से न जान सके कि उनका गांव किस तरफ है।

अगले दिन सुबह दस बजे कसूर में फसाद हो गया। हिंदू और सिख घरघाट छोड़कर भागने लगे। शाम होने तक हालत बहुत ही बिगड़ गई।

धन्ने शाह का इकलौता बेटा मारा गया। धन्ने शाह की बहू को फजल हक की टोली उठा ले गई। धन्ने शाह की बेटी ननिहाल गई हुई थी, इसलिए बच गई। धन्ने शाह और उसकी घरवाली, सिर्फ तन के कपड़ों के साथ, मिलिट्री ट्रक में बैठकर फिरोजपुर की ओर चल पड़े। धन्ने शाह पागलों की तरह सिर पीटता और बड़बड़ाता जा रहा था : "उजड़ गए, रे लोगो ! हमारे साथ तो वो हुई कि जर रहा न यारी ! जिस बेटे के लिए धोखा-फरेब करके जायदाद जोड़ी थी, वही बेटा आंखों के सामने मारा गया। और जिस, तूतोंवाले कुएं को हासिल करने के लिए बच्चों को खाने-पहनने के लिए भी तरसाता रहा, वह कुआं भी हमारा न रहा। हाय मेरा मदन ! हाय हमारा 'तूतों वाला कुआं' ?" उसकी चेतना उस समय भी शहतूतोंवाले कुएं के चारों ओर भटक रही थी।

पीरूवाला अभी भी उसी चिंता में डूबा हुआ था। उन्नीस की सुबह दो सिख खेमकरन पता लेने गए और दो मुसलमान कसूर। दोपहर तक सारे गांव को पता चल गया कि पीरूवाला पाकिस्तान में है।

शाम तक एक बहुत भयानक खबर पहुंची जिससे हिंदू-सिखों के दिल दहल गए। मालूम हुआ कि उस दिन कई हजार मुसलमान कसूर से उठकर हठाड़ के गांवों पर टूटे हैं ! उन्होंने बुगरी और भाल्हा गांवों को मूल से उखाड़कर धूल में मिला दिया है। बुगरी के तो मुश्किल से पांच-सात लोग ही बचे हैं। यह भी खबर मिली कि अगले दिन उन

बलवाई मुसलमानों का कार्यक्रम पीरूवाला, नत्थूवाला और बल्लांवाला आदि छोटे-छोटे गांव लूटने का है।

अब तो हिंदुओं-सिखों के हौसले ही पस्त हो गए। कुछ सयाने लोगों ने मिलकर विचार किया कि रातों-रात सारे हिंदू-सिख गांव छोड़कर निकल चलें। कुछ सयाने मुसलमानों ने भी आकर उन्हें यही सलाह दी—"देखो भाइयो, तुम्हारा-हमारा लहू साझा है। हमारे गांव से तुम्हारी तरफ कोई टेढ़ी आंख से भी नहीं देखेगा। लेकिन अगर अमृतसर, पट्टी जैसे शहरों से उजड़कर आए मुसलमान और कसूर के लुटेरे आ जाएं, तब हम क्या कर सकेंगे ? सो, अगर तुम ठीक समझो, तो रातों-रात हद के पार हो जाओ।"

अब और कोई चारा नहीं रह गया था। मजबूर होकर हिंदू और सिख अपना अत्यंत जरूरी सामान बांधने लगे। जिसके पास गाड़ी या किसी अन्य सवारी का प्रबंध था, उसने ज्यादा सामान लाद लिया और शेष लोगों ने सिर पर उठाने लायक ही। आधी रात तक सब चलने के लिए तैयार हो गए।

इसी समय दस-बारह लड़कों ने इलमदीन के द्वार पर आकर उसे आवाज लगा दी। उनमें से कुछ पीरूवाले के तथा कुछ पड़ोस के गांव रंगपुर के थे।

इलमदीन दाहिने हाथ में बर्छी थामे आंगन में टहल रहा था। उसके अंदर उस समय तूफान मचा हुआ था। मगर वह अभी किसी फैसले पर नहीं पहुंच सका था।

'लंबरदार ! यह निजामी खबर लाया है कि दो हजार कसूरिए मिलकर रेती के पार रास्ता रोके बैठे हैं। वो तेरे गांव का एक भी सगा जाने नहीं देंगे। खास करके सज्जन सूंह लंबरदार को तो वो कसम खाकर भी नहीं छोड़ेंगे। और तू कहे तो हम लूट लें कुछ थोड़ा-बहुत।"

एक मिनट के लिए इलमदीन चुपचाप खड़ा सोचता रहा। इतनी-सी देर में ही कई खयाल उसके दिल से गुजर गए।। अंततः उसने फैसला कर लिया।

"अच्छा, भई, तुम चलकर मस्जिद में बैठो और मैं अपने बंदे लेके आता हूं—" कहकर इलमदीन अपने भाई और बेटे को जगाने चल पड़ा।

सज्जन सिंह बैलगाड़ी में कुछ ज्यादा ही सामान लाद बैठा था। ऊपर से भजन कौर मटकी और मथनी उठाए आ गई। उसकी आंखों से झम-झम आंसू बह रहे थे। घर छोड़ना मुश्किल होता है।

"मैं। पहलेवाले में से भी कुछ सामान उतारने की सोच रहा हूं, यह और उठाए लिए आ रही है ! दो बैल इतना भार खींच लेंगे ? फेंक उधर।" सज्जन सिंह ने कुछ खीजकर कहा।

"ओ सज्जन सिंहा ! दरवाजा खोल!' आवाज के साथ ही बाहरवाले दरवाजे पर दस्तक हुई।

"कौन ? चौधरी इलमदीन ?' आवाज पहचानकर सज्जन सिंह का कलेजा धड़कने लगा।' आ भई ! बड़ा अच्छा मौका ताड़ा तूने वैर निकालने का ! सूरमाओं का यही काम

होता है ! पर हम भी...!'

"नहीं रे सज्जन !' इलमदीन बीच में ही बोल उठा—"चौधरी इलमदीन नहीं। मैं इलमा हूं, तेरी वही पुराना यार, तेरा खेलों का साथी, तेरे प्याले का साझेदार। खोल दे दरवाजा !' उसका स्वर दर्द से बहुत भीगा हुआ था।

"चाचा, दरवाजा खोल। मुझे आखिरी बार अपनी सहेली से मिल लेने दे। अरी दीपो ! मैं जंती हूं।"

"सज्जन सिंह ! डर मत। दरवाजा खोल दे। इस अभागी जैना को एक बार बहन से मिल लेने दे।" ऐसा लगता था, जैसे जैना रो रही थी।

"गुरदीप ! खोल दे दरवाजा"—सज्जन सिंह ने कुछ सोचकर अपने छोटे बेटे को हुक्म दिया।

डरते-झिझकते गुरदीप ने आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया। सबसे पहले जंतो हवेली में दाखिल हुई। वह भागकर गुरदीप के गले से जा लिपटी। उसे इतनी सुध भी न रही कि वह पंद्रह-सोलह साल की युवती है।

"वे पप्पू !' वह हिचकियां भरते हुए बोली—"हम क्यों बड़े हो गए ! रोके बिछड़ने के लिए ! हम... हम... हाय अल्ला...।"

इतने में इलमदीन भी अंदर आ गया। हाथवाली बर्छी उसने अंदर दीवार के साथ खड़ी कर दी।

"दीपो कहां है—मेरे गुड्डे-गुड़ियों की सहेली ?" गुरदीप को छोड़कर जंतो दीपो के गले से जा चिपटी।

"सज्जनां ! यह क्या हो गया ओए ! हम जीते-जी बिछुड़ गए। मार दिया हमें तो लीडरों ने !'-सज्जन सिंह के गले लगकर इलमदीन आंसू टपकाने लगा।

"हौसला रख, इलमदीन ! हमारे बस में क्या है ?" वास्तव में सज्जन सिंह अपने-आपको हौसला दे रहा था।

"इलमा कह, ओए पापी ! इलमदीन तो तेरे साथ बेवफाई कर गया था। उसका नाम मत ले।" इलमदीन ने अपने पूरे जोर से मित्र को बांहों में भींच लिया।

तीसरी तरफ भजन कौर और जैना गले लगकर रो रही थीं। वे दोनों मुंह से खामोश थीं, लेकिन उनके दिलों की धड़कन एक-दूसरे से बहुत कुछ कह रही थी।

भावुकता में सबसे ज्यादा बहे जा रही थी जंतो। इलमदीन ने सज्जन सिंह को आलिंगन मुक्त किया, तो जंतो उसके गले से लिपट गई।

"वे चाचा ! किधर जा रहा है रोती हुई बेटी को छोड़कर ? मुझे वो दिन नहीं भूलता, जिस दिन तू मुझे कंधे पर उठाकर शहर से लाया था। मां ने मुझे मारा था, और तूने मुझे उठाते हुए कहा था—चल, तुझे मैं अपनी बेटी बना लेता हूं।...और वो दिन याद है ? छुटपन में मैं और पप्पू खेल रहे थे। और तू मेरी मां से क्या कहता था ? मुझे अपने साथ ले चल। ले चल... हाय...ले चल !'

जंते के विलाप से सब की आंखों में आंसू आ गए।

"पगली न हो तो ! ये कहां जा रहे हैं ? ये दो दिन गड़बड़ के हैं। हद-पार किसी सगे-संबंधी के घर में काटकर फिर आ जाएंगे"—इलमदीन ने जंते को बांह से पकड़कर पीछे खींचते हुए कहा। "सज्जन सिंहा ! जल्दी करो। बहुत बुरी खबर सुनकर आया हूं।", और उसने सारी बात कह सुनाई। "यहां से हम सीधे वरना चलेंगे और फिर कादीविंड वाले रास्ते से बल्लांवाले को मुड़ेंगे। समझ गए ? अब जल्दी करो।"

जंते और जैना एक बार फिर सहेलियों के गले मिलीं। जैना ने आखिरी बार छोटा-सा वाक्य कहा—"भजन कुरे, कभी-कभी इस अभागिन को याद कर लिया करना।" उसके वक्ष फाड़कर निकले थे ये चार शब्द।

फिर वे दोनों मां-बेटी घर लौट गईं। वतन-छूटों का काफिला वरनावाली राह पर चल दिया। इलमदीन बर्छी तानकर सज्जन सिंह की गाड़ी के आगे-आगे चल रहा था। उसका भाई, बेटा और भतीजा तीनों पहरेदारों की तरह पीछे-पीछे चल रहे थे। बख्शीश सिंह आगे बैठा गाड़ी हांक रहा था। सज्जन सिंह, भजन कौर, दीपो और गुरदीप गाड़ी के पीछे-पीछे चल रहे थे।

शहतूतों वाले कुएं के पास से गुजरते हुए सज्जन सिंह ने मन-ही-मन बड़े गुस्से से कहा— "ले रे धन्ने शाह ! संभाल ले कुआं !" मगर वह मुंह से कुछ नहीं बोल सका।

दो खेत पार करने पर उनके कानों में गहने लुहार का उदास स्वर पड़ा—"बाबा अकाली ! तुम हिंदू-सिख हिंदुस्तान चले जाओगे। मोमिनों के लिए पाकिस्तान बन गया है। पर मेरे जैसे काफिर के लिए कौन-सी जगह है ? मुझे भी कुछ बताता जा।"

"मियां गहने ! सब्र कर। करतार के रंग देख। जो उसे भाए… अच्छा, फिर मिलेंगे… जरूर मिलेंगे।" बाबा अकाली ने उसे धीरज बंधाकर वापस लौटा दिया।

"बाबा अकाली ! ला, ट्रंक गाड़ी पर रख दे"—सज्जन सिंह ने पास जाकर कहा।

"नहीं बेटे, यह किसी की अमानत है। यह मैं नहीं दे सकता। चलो"—बाबा अकाली ने वह छोटा-सा ट्रंक बगल में दबाते हुए कहा।

काफिला चुपचाप चला जा रहा था। कहने-सुनने को किसी के पास कुछ भी तो नहीं था। हर दिल पर एक मारक सहमापन छाया हुआ था। दिल घबरा रहे थे, आंखें बरस रही थीं, मगर जबान बंद थी।

दोनों देशों की हद पर पहुंचकर गाड़ी रुक गई, जहां कागजों पर लकीर खींचकर, राजगद्दी के इच्छुकों ने धरती के सीने को ताजा-ताजा चीरा था। अब तक इलमदीन किसी-न किसी तरह अपने-आपको नियंत्रित किए जा रहा था। अब आखिरी बार बाल-सखा के गले मिलते समय उसके धीरज का बांध टूट गया। वह धाड़ मारकर जोर-जोर से रोने लगा—"ओए, सज्जनां ! क्या अब हम कभी भी नहीं मिलेंगे ? हम मरने से पहले ही बिछुड़ गए। सयाने कहा करते हैं—लड़ाई की रात हो पर बिछुड़ने की रात न हो…और हम… हम…।" इसके बाद सिर्फ दोनों की हिचकियां ही रह गईं।

"अरे पगलो ! क्यों रोते हो ?" बाबा अकाली ने दोनों को मीठी-सी झिड़की देते हुए कहा। क्या सूरमा मैदान में घायल होकर रोया करते हैं ? हमने एक बहुत बड़ी जंग लड़ी है—अंगरेज के विरुद्ध आजादी की जंग। और उसमें हम मर्दों की तरह जीते हैं। जाते-जाते अंगरेज हमारे बीच यह दरार डाल गया है। लेकिन ये दरारें हमेशा नहीं रहेंगी। तुम एक ही लहू हो, एक ही कौम हो। देख लेना, तुम फिर मिलोगे"—बाबा ने शब्दों पर जोर देते हुए कहा। तब तुम्हें कोई अलग नहीं कर सकेगा। पर . पर ऐसे बच्चों की तरह रो-रोकर अपनी बहादुरी को कमजोर न करो। अभी तो तुम्हें एक और लड़ाई लड़नी है, इस पिछली लड़ाई से भी बड़ी, बहुत बड़ी। और वह लड़ाई होगी भूख के खिलाफ, गरीबी के खिलाफ, और छोटी-बड़ी कई बीमारियों के खिलाफ जो इतने बरसों की लंबी गुलामी अपने पीछे छोड़े जा रही है। इतना ही नहीं। इतनी कुरबानियां देकर जो आजादी प्राप्त की है, उसकी रक्षा भी तुम लोगों को ही करनी होगी। सो, मेरे योद्धाओ, बली बनो, और आनेवाली नई मुहिम की तैयारी करो।"

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित